व्यावहारिक एवं संवादात्मक हिन्दी

(Practical and Interactive Hindi)

हिमांशी सक्सेना

व्यावहारिक एवं संवादात्मक हिन्दी

व्यावहारिक एवं संवादात्मक हिन्दी

(Practical and Interactive Hindi)

हिमांशी सक्सेना

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5597-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिंदी की वर्णमाला 'अ' यानी अनपढ़ से शुरू होती है और 'ज्ञ' यानी ज्ञानी बनाकर छोड़ती है। या हिंदी भाषा की सबसे बड़ी उपलब्धि है। हिंदी की वर्णमाला पूर्णत: वैज्ञानिक है और प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग लिपि चिह्न इसकी विशिष्टता है। इसके अतिरिक्त इसके उच्चारण और लेखन में एकरूपता होने के कारण ही यह कालजयी हैं और भौगोलिक सीमाओं से परे पहुँच चुकी है। हिंदी की अद्वितीय आत्मसात एवं अंगीकार करने की प्रक्रिया ने ही इसे 310 करोड़ लोगों का चहेता बना दिया है। यूरापीय भाषाओं की तुलना में उर्दू, फारसी, तुर्की, अरबी शब्द हमारे ज्यादा नजदीक हैं। अंग्रेजी के प्रचलन में आ चुके शब्दों को अपनाने में भी हिंदी आगे ही है।

बोलने और समझने वालों की संख्या की दृष्टि से हिंदी विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। परंतु सर्वेक्षण में हिंदी की अनेक बोलियों जैसे– भोजपुरी, अवधी, हरियाणवी, छत्तीसगढ़ी, मैथिली, मगही इत्यादि को स्वतंत्र भाषा मानकर सूचीबद्ध करते हुए, विश्व में सबसे अधिक बोली जानी वाली भाषाओं की सूची में इसे चौथे स्थान पर रखा गया है। इस तरीके से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी अपनी एक अलग पहचान बना ही चुकी है।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं

वरन् स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	आधुनिक हिन्दी का विकास क्रम	2
	हिन्दी के विभिन्न रूप	7
	सर्जनात्मक भाषा	8
	राजभाषा	10
2.	**व्यावसायिक एवं संवादात्मक हिंदी का मानक स्वरूप**	**26**
	वर्तनी शब्द का इतिहास	26
	मानक भाषा	28
	मानक भाषा का स्वरूप और प्रकृति	29
	संयुक्त वर्ण	39
	विदेशी ध्वनियाँ	47
	संयुक्त वर्णों का निर्माण	50
	मानकीकरण की व्यावहारिक गलतियाँ	54
	वर्तनी की गलतियाँ	57
	अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में लिखने पर होने वाली गलतियाँ	58
	उच्चारण की गलतियाँ	61
3.	**वैश्विक विस्तार एवं स्थिति**	**63**
	भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ	65

वैश्विक संदर्भ में हिंदी की सामर्थ्य 67
सूरीनाम और हिन्दी 80
देश और निवासी 81
नेपाल में हिन्दी 85
फिजी में हिन्दी 86
गुयाना में हिन्दी 88
त्रिनीडाड-टुबैगो में हिन्दी 88
दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी 89
इंग्लैण्ड में हिन्दी 90
मीडिया और वेब पर हिंदी 94
4. बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी 97
पश्चिमी हिन्दी 98
पूर्वी हिन्दी 98
खड़ी बोली 100
खड़ी बोली की उत्पत्ति तथा इसके संबंध में विभिन्न मत 101
बृजभाषा 103
मारवाड़ी भाषा 107
मालवी भाषा 108
कन्नौजी भाषा 113
बुंदेली का इतिहास 126
बुंदेली का स्वरूप 127
बोलचाल बनाम कार्यालयीन हिंदी 127
5. व्यावहारिक हिन्दी और राष्ट्रीय एकता 136
6. हिन्दी की भावी अंतर्राष्ट्रीय भूमिका एवं लिपि 150

1

विषय बोध

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसके भाषा और उसके संस्कृति से होती है और पूरे विश्व में हर देश की एक अपनी भाषा और अपनी एक संस्कृति है जिसके छाव में उस देश के लोग पले-बड़े होते हैं यदि कोई देश अपनी मूल भाषा को छोड़कर दूसरे देश की भाषा पर आश्रित होता है उसे सांस्कृतिक रूप से गुलाम माना जाता है।

क्योकि जिस भाषा को लोग अपने पैदा होने से लेकर अपने जीवन भर बोलते है, लेकिन आधिकारिक रूप से दूसरे भाषा पर निर्भर रहना पड़े तो कही न कही उस देश के विकास में उस देश की अपनाई गयी भाषा ही सबसे बड़ी बाधक बनती है क्योकि आप कल्पना कर सकते हैं जिस भाषा अपने बचपन से बोलते हैं और उसी भाषा में अपने सारे कार्य करने पढ़े तो आपको आगे बढ़ने में ज्यादा परेशानी नही होगी लेकिन यदि आप जो बोलते हैं उसे छोड़कर कोई दूसरी भाषा में आपको कार्य करना पड़े तो कही न कही यही दूसरी भाषा हमारे विकास में बाधक जरुर बनती है,

यानी हमें दूसरो की भाषा सीखने का मौका मिले तो यह अच्छी बात है, लेकिन दुसरो की भाषा के चलते अपनी मातृभाषा को छोड़ना पड़े तो कही न कही दिक्कत का सामना जरुर करना पड़ता है तो ऐसे में आज हम बात करते हैं अपने देश भारत के राजभाषा हिंदी के बारे में जो हमारी मातृभाषा भी है और हमे इसे बोलने में फक्र महसूस करना चाहिए।

हमारे देश की मूल भाषा हिंदी है, लेकिन भारत में अंग्रेंजो की गुलामी के बाद हमारे देश के भाषा पर भी अंग्रेजी भाषा का आधिपत्य हुआ, भारत देश तो

आजाद हो गया लेकिन हिंदी भाषा पर अंग्रेजी भाषा का आज भी आधिपत्य आज तक कायम है। अक्सर अपने देश के लोग के मुंह से यह कहते हुए सुना जाता है की हमारी हिंदी थोड़ी कमजोर है। ऐसा कहने का तात्पर्य यही होता है कि उनकी अंगेजी भाषा हिंदी के मुकाबले काफी अच्छी है और यदि भूल से यह कह दे कि हमारी अंग्रेजी कमजोर है तो उसे लोग कम पढ़ा-लिखा मान लेते हैं, क्या यह सही है किसी भाषा पर अगर हमारी अच्छी पकड़ न हो तो क्या इसे अनपढ़ मान लिया जा, शायद ऐसा होना हमारे देश की विडम्बना है,

आधुनिक हिन्दी का विकास क्रम

भाषा के आधार पर यदि संसार की जातियों का वर्गीकरण किया जाए तो कहा जा सकता है कि एक तो आर्य जातियाँ हैं और दूसरी अनार्य जातियाँ । आर्यों के पूर्वज पूरे यूरोप, ईरान, अफगानिस्तान और भारतीय उपमहाद्वीप (जिसके अन्तर्गत भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका) में फैल गए थे। यूरोप के 17 वीं. -18वीं. शताब्दी में , अर्थात् साम्राज्यवादी युग में, लोग कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिणी अफ्रीका में अपने उपनिवेश बनाकर रहने लगे। इन सब देशों के आदिवासियों पर यूरोपीय या आर्य परिवार की भाषाओं का इतना प्रभाव पड़ा है कि वहाँ की मूल भाषाएँ दब-सी गई हैं। अब इन देशों की सामान्य या मुख्य भाषाएँ आर्य परिवार की हैं। विद्वानों ने इस वृहत् परिवार का नाम भारत-यूरोपीय (भारोपीय) रखा है। संसार का सबसे बड़ा भाषा-परिवार यही है।भूमंडल की कुल 350 करोड़ जनसंख्या में इस भारोपीय(आर्य) परिवार की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या 150 करोड़ हैं। साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से ये भाषाएँ अत्यंत प्रगतिशील, उत्कृष्ट और समृद्ध हैं। अत: आर्य भाषा के दो वर्ग हैं--(1) यूरोपीय आर्य भाषाएँ (2) भारत-ईरानी आर्य भाषाएँ। भारत-ईरानी वर्ग की तीन शाखाएँ हैं--(1)ईरानी(ईरान और अफगानिस्तान की भाषाएँ), (2) दरद (कश्मीर और पामीर के पूर्व-दक्षिण की भाषाएँ), (3) भारतीय आर्य भाषाएँ । भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों का है अर्थात् इनका इतिहास ईसा से लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है। धर्म, समाज, साहित्य, कला और संस्कृतिक की दृष्टि से तथा प्राचीनता, गंभीरता और वैज्ञानिकता के विचार से भारतीय आर्यभाषा बहुत महत्वपूर्ण है। संसार का प्राचीनतम ग्रंथ-ऋग्वेद इसी भाषा में है। विकास क्रम के अनुसार भारतीय आर्यभाषा को तीन कालों में बाँटा जाता है--- (1)

प्राचिन काल (1500 ई.पू.- 500), (2) मध्य काल (500 ई.पू.- 1000) (3) आधुनिक काल(1000 ई.....।

(1) प्राचीन काल:- प्राचीन आर्यभाषा को दो भागों में बाँटा जाता हैं--(1) वैदिक संस्कृत (1500 ई.पू. 1000) (2) लौकिक संस्कृत (1000ई. पू.- 500) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में वैदिक तथा संस्कृत्य प्रमुख मानी जाती है। ऋग्वेद से वैदिक भाषा का, वाल्मिकी रामायण से लौकिक संस्कृत का कवि माना गया है। इसका रूप ऋग्वेद में देखने को मिलता है। पाणिनी ने 500 ई.पू. इस भाषा में व्याकरणिक रूप 'अष्टाध्यायी' की रचना की थी।

(2) मध्य काल:- मध्यकालीन आर्यभाषा को तीन भागों में बाटाँ गया हैं-(1) पालि (500 ई.पू.- 1000) (2) प्राकृत (1000 ई.-500 ई.) (3) अपभ्रंश या अवहट्ट (500-1000 ई.)

(1) पालि:- मध्यकालीन आर्यभाषाओं का युग पालि भाषा के उदय से आरंभ होता है। पालि शब्द की व्युत्पति 'पल्लि' (ग्रामीण भाषा के शब्द), 'पाटलि' (पाटलिपुत्र अर्थात् मगध की भाषा), पंक्ति, पालि को पालनेवाली (अर्थात् बौद्ध साहित्य की रक्षा करनेवाली) आदि शब्द से माना गया है। लेकिन नाम से यह स्पष्ट नहीं होता कि यह किस प्रदेश की मूल भाषा थी। मगध सम्राट अशोक के पु त्र महाराजकुमार महेंद्र पालि साहित्य को तीन पिटारों (त्रिपिटक) में भरकर सिंहल(श्रीलंका) ले गए थे, अत: वहाँ के बौद्ध मानते रहे हैं कि पालि मगध की भाषा है। परन्तु मगधी के जो लक्षण प्राकृत वैयाकरणों ने बताए हैं और अशोक के अभिलेखों में मिलते हैं, वे पालि से भिन्न हैं। यह पूर्व की भाषा नहीं जान पड़ती। विद्वानों ने मथुरा और उज्जैन के बीच के प्रदेश को इसका क्षेत्र माना है। यह भाषा इतनी व्यापक हो गई थीं कि अपना धर्म प्रचार करने के लिए भगवान बुद्ध ने इसें अपना माध्यम बनायाय भले ही इस पर मागधी बोली का प्रभाव अवश्य पड़ा है। कोई बोली जब साहित्य में स्थान पाती है तो उसमें अपने साथ कई बोलियों के तत्त्व आ ही जाते हैं। पालि भाषा के अध्ययन के प्रमुख आधार है- त्रिपिटक (बुद्ध वचन), टीका (अट्ठकथा), साहित्य,और वंश (ऐतिहासिक) साहित्य जो 11वीं शती तक बराबर लिखा जाता रहा है। अपने समय में पालि का प्रचार न केवल उत्तरी भारत में था अपितु बर्मा, लंका, तिब्बत, चीन की भाषाओं पर उसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। प्राचीन आर्यभाषा से आधुनिक आर्य भाषाओं के क्रमिक विकास की बीच की स्थितियों को समक्षने के लिए पालि का महत्व बहुत अधिक है। संस्कृत ध्वनियों का जनसाधारण में

कैसा उच्चारण होता था, उसकी व्याकरणिक जटिलताओं को सुलझाने के लिए लोक में क्या प्रयत्न हो रहा था, इस सब की जानकारी पहले-पहल पालि में प्राप्त होती है।

(2) प्राकृतः- 'प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्' अर्थात् जो भाषा मूल से चली आ रही है उसका नाम 'प्राकृत' है। उस समय मूल भाषा कौन थी, इसके बारे में मतभेद है। हेमचंद्र, मार्कंडेय, सिंहदेव, आदि आचार्यों ने मूल भाषा संस्कृत और उनसे उत्पन्न प्राकृत माने हैं। संस्कृत उस समय जन भाषा थी, वही विकसित-विकृत होते-होते प्राकृत प्रसिद्ध हुई। दूसरा विचार यह है कि प्रकृति का अर्थ स्वभाव होता है, तो जो भाषा स्वभाव से सिद्ध है, वह प्राकृत है। प्रकृति का एक अर्थ 'प्रजा' भी है। 'राजा' शब्द का निर्वचन करते हुए कालिदास ने लिखा है- राजा प्रकृतिरञ्जनात् अर्थात् 'राजा' इसलिए कहलाता है कि वह प्रकृति (प्रजा) का रंजन करता है, अपनी प्रजा को प्रसन्न रखता है। प्राच्य भाषाओं के एक विद्वान, पिशल भी मानते हैं कि प्राकृत की जड़ जनता की बोलियों के भीतर है। जनसाधारण की बोलियाँ तो युग-युग से चली आ रही हैं। वेस (वेष), दूलभ (दुर्लभ), दूडम (दुर्दम), सुवर्ग (स्वर्ग) आदि वेद के ये शब्द प्राकृत के ही तो हैं। कोई भी भाषा पहले जनभाषा होती है, साहित्य में पड़कर और समाज तथा शासन से मान्यता पाकर भाषा हो जाती है। व्रजभाषा या खड़ी बोली कौरवी एक क्षेत्रीय बोली ही थी, साहित्य में आकर भाषा बन गई। जनभाषा ही मूल है, वही प्राकृत है। प्राकृत में प्रचुर साहित्य मिलता है- धार्मिक भी, लौकिक भी। बौद्ध और जैन साहित्य प्रमुख रूप से मागधी और अर्धमागधी में, और लौकिक साहित्य शौरसेनी(गद्य) और महाराष्ट्री(पद्य) में प्राप्त है। गौडवहो और सेतुबंध जैसे महाकाव्य तथा गाथासप्तशती और वज्जालग्ग जैसे खंडकाव्य प्राकृत की बहुमूल्य संपत्ति हैं। एक समय कहा जाता था कि संस्कृत काव्य इसकी होड़ में पिछड़ गया है। इस साहित्य के आधार पर व्याकरण ग्रंथ लिखे गए जिनमें वररूचि कृत 'प्राकृत प्रकाश' और आचार्य हेमचंद्र का 'प्राकृत व्याकरण' प्रसिद्ध हैं। व्याकरणों ने प्राकृत भाषा में वैसी ही जकड़न ला दी जैसी पाणिनि, कात्यायन आदि वैयाकरणों ने संस्कृत में। तब यह भाषा लोकभाषा नहीं रह गई, शिक्षित वर्ग की भाषा बन गई, तो इसका स्थान अपभ्रंश और अवहट्ट ने ले लिया। वररूचि ने चार प्राकृतों का नाम लिया है- शौरसेनी, माहाराष्ट्री, मागधी और पैशाची। परन्तु, इनमें अर्द्ध मागधी का नाम जोड़ देना आवश्यक है- इसमें भी भरपूर साहित्य मिलता है।

(3) अपभ्रंश:- अपभ्रंश मध्यकालीन आर्यभाषा की तीसरी अवस्था का नाम है। व्याधि और महाभाष्यकार पंतजलि ने संस्कृत के मानक शब्दों से भिन्न संस्कारच्युत, भ्रष्ट और अशुद्ध शब्दों को अपभ्रंश की संज्ञा दी। वाग्भट्ट और आचार्य हेमचन्द्र ने अपभ्रंश को ग्रामभाषा कहा है। कुछ विद्वानों ने इसे देशी भाषा कहा है। दण्डी ने इसे आभीरादि की भाषा कहा है। गुर्जर, आभीर, जाट आदि अनेक जातियाँ जो बाहर से आकर पश्चिमी भारत में बस गई थीं, आरम्भ में भारतीय संस्कृति में दीक्षित नहीं हो पाई थीं, इसलिए उनकी भाषा को अपभ्रष्ट समझा जाता था। धीरे-धीरे उन पर शौरसेनी प्राकृत का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उनकी भाषा को मान्यता दी जानी लगी। राजसत्ता पाने के पर ये लोग 'राजपुत्र' कहलाने लगे। राजसत्ता के साथ अपभ्रंश का विस्तार भी हुआ और यह भाषा राजभाषा ही नहीं, साहित्य-भाषा और देशभाषा बन गई। सातवीं शती से लेकर ग्यारहवीं शती के अंत तक इसकी विशेष उन्नति हुई। मार्कण्डेय और इतर आचार्यों ने अपभ्रंश के कुल तीन भेद बताये हैं– नागर (गुजरात की बोली), उपनागर (राजस्थान की बोली), व्राचड (सिंध की बोली)। इस प्रसंग में यह भी बताया गया है कि राजस्थानी अपभ्रंश की जेठी बेटी हैं। अपभ्रंश को आभीर-गुर्जर आदि की भाषा कहते आ रहे हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि यह उत्तर-पश्चिमी भूखंड की भाषा थी। यह सही है कि साहित्यिक भाषा बनने पर इसने विस्तार पाया और धीरे-धीरे आस-पास की प्राकृतों को प्रभावित किया, सबसे अधिक शौरसेनी को। इसी से माना जा सकता है कि हिन्दी के विकास में इसका विशेष योगदान है। कालिदास के नाटकों में कुछ पात्रों के कथन अपभ्रंश में है। आठवीं शती में सिद्धों के चर्यापदों में पूर्वी प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश मिलती है। इसी समय के आस-पास चरित काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, रासो काव्य, खण्डकाव्य और स्फुट कविताएँ मिलती हैं। इनमें महापुरण, जसहर चरिउ, णायकुमार चरिउ, पाहुड़ दोहा आदि रचनाएँ हैं।

(4) अवहट्ट:- भाषा परिवर्तनशील है। कोई भाषा जब साहित्य का माध्यम होकर एक प्रतिष्ठित रूप ग्रहण करती है और व्याकरण के नियमों में बँध जाती है, तब वह जनभाषा से दूर हो जाती है। अपभ्रंश की भी यही गति हुई। अपभ्रंश के ही परिवर्तित रूप को अवहट्ट कहा गया है। ग्यारहवीं से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवियों ने अपनी भाषा को अवहट्ट कहा है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने अपने 'वर्ण रत्नाकर' में किया। 'प्राकृत पैंगलम' की भाषा को उसके टीकाकार वंशीधर ने अवहट्ट माना है।

संदेशरासक के रचियता अब्दुररहमान ने भी अवहट्ट भाषा का उल्लेख किया है। मिथिला के विद्यापति ने अपनी कृति 'कीर्तिलता' की भाषा को अवहट्ट कहा है। इन सबने जिन भारतीय भाषाओं के नाम गिनाये हैं- सांस्कृत, प्राकृत, मागधी, 'शौरसेनी, पिशाची उनमें या तो अपभ्रंश नाम लिया या अवहट्ट। दोनों को एक साथ नहीं रखा। इससे लगता है कि अपभ्रंश और अवहट्ट में कोई भेद नहीं समझा गया। आधुनिक भाषाविज्ञानियों ने तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर अवहट्ट को उत्तरकालीन या परवर्ती अपभ्रंश माना है और बताया गया है कि निश्चय रूप से अवहट्ट में ध्वनिगत, रूपगत और शब्द संबंधी बहुत से तत्त्व ऐसे हैं जो इसे पूर्ववर्ती अपभ्रंश से अलग करते हैं। संनेहरासय और कीर्तिलता के अतिरिक्त वर्णरत्नाकर और प्राकृतपैंगलम के कुछ अंश, नाथ और सिद्ध साहित्य, नेमिनाथ चौपाई, बहुबलि रास, आदि अवहट्ट की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

(3)आधुनिक काल:- आधुनिक भारतीय भाषाओं के काल का प्रारम्भ दसवीं शताब्दी से माना जाता है। इन भाषाओं की उत्पत्ति प्राकृत से मानी जाती है तथा इनका सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में अपभ्रंश से जोड़ा जाता है, यथा- सांस्कृत प्राकृत अपभ्रंश, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ । आधुनिक काल की भाषाएँ अनेक हैं, हिन्दी, बंगला, उड़िया, असमी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, सिंधी।भाषाविदों के मत में उस समय के शौरसेनी, पेशाची, ब्राचड़, खस, महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा मागधी अपभ्रंशों से ही आधुनिक आर्य भाषाएँ विकसित हुई हैं। हिन्दी उनमें एक है जो सब भारतीय आर्य भाषाओं की बड़ी बहन है, और सबसे अधिक जनसमूह द्वारा बोली-समझी जाती है। हिन्दी की तीन कालक्रमिक स्थितियाँ हैं-- (1) आदिकाल (सन् 1000 से 1500 ई.) (2) मध्यकाल (सन् 1500 से 1800 ई.) (3) आधुनिक काल सन् 1800 से आज तक)

(1) आदिकाल:- आधुनिक आर्यभाषा हिन्दी का आदिकाल अपभ्रंश तथा प्राकृत से अत्यधिक प्रभावित थी। आदिकालीन नाथों और सिद्धों ने इसी भाषा में धर्म प्रचार किया था। इस काल में हिन्दी में मुख्य रूप से वही ध्वनियाँ मिलती हैं, जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थीं। अपभ्रंश के अलावा आदिकालीन हिन्दी में 'ड़' , 'ढ़' आदि ध्वनियाँ आई हैं। मुसलमान शासकों के प्रभाव से अरबी तथा फारसी के कुछ शब्दों के कारण भी कुछ नये व्यंजन- ख,ज, फ, आदि आ गये। ये व्यंजन अपभ्रंश में नहीं मिलते थे। अपभ्रंश के तीन लिंग थे।

किन्तु प्राचीन हिन्दी में नपुंसक लिंग समाप्त हो गया । प्राचीन काल में चारण भाटों ने इसी भाषा में डिंगल साहित्य अर्थात् 'रासों' ग्रंथों का निर्माण किया।

(2) मध्यकालः- इस काल में अपभ्रंश का प्रभाव लगभग समाप्त हो गया और हिन्दी की तीन प्रमुख बोलियाँ विशेषकर अवधी, ब्रज तथा खड़ी बोली स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में आने लगी । साहित्यिक दृष्टि से इस युग में मुख्यतः ब्रज और अवधी में साहित्य निर्माण हुआ। कृष्णभक्ति शाखा के संत कवियों ने ब्रज भाषा में अपने ग्रन्थों का निर्माण किया तथा रामभक्ति शाखा के कवियों ने अवधी भाषा में अपनी रचनाओं का निर्माण किया। इसके साथ ही प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी कवियों ने भी अवधी में अपनी रचनाएँ लिखीं। ब्रज तथा अवधी के साथ-साथ खड़ी बोली का भी प्रयोग इस युग में काफी पनपा। मुसलमान शासकों के प्रभाव से खड़ी बोली में अरबी तथा फारसी शब्द प्रचलित हुए और उसके विकास का श्रीगणेश हुआ।

(3) आधुनिक कालः- अठारहवीं शती में ब्रज तथा अवधी भाषा की शक्ति तथा प्रभाव क्षीण होता गया और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ से ही खड़ी बोली का मध्यप्रदेश की हिन्दी पर भारी प्रभाव पड़ा। बोलचाल, राजकाज तथा साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी का व्यापक पैमाने पर प्रयोग होने लगा था। भाषाविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी भाषा के पाँच उपभाषा वर्ग माने गये हैं-

(1) पश्चिमी हिन्दी–इसके अन्तर्गत कौरवी(खड़ी बोली), बागः (हरियाणवी),ब्रज, कन्नौजी एवं बुंदेली।

(2) पूर्वी हिन्दी–इसके अन्तर्गत भोजपुरी,मैथिली,मगही आदि बोलियाँ।

(3) बिहारी हिन्दी–इसके अन्तर्गत भोजपुरी, मैथिली, मगही बोलियाँ।

(4) राजस्थानी हिन्दी–इसके अन्तर्गत मारवाड़ी, जयपुरी (हाड़ोती), मेवाड़ी, और मालवी आदि बोलियाँ आती हैं।

(5) पहाड़ी हिन्दी–इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से गढ़वाली तथा कुमाउँनी बोलियाँ आती हैं।

हिन्दी के विभिन्न रूप

हिन्दी देश में सर्वाधिक लोगों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यह भारत की अन्य भाषाओं में प्रमुख है। हिन्दी का प्रयोग सामान्य बोल-चाल, साहित्य-लेखन, जन-संचार एवं सरकारी कामकाज में समुचित रूप से हो रहा है। हिन्दी को भारत

की राष्ट्रभाषा तथा अस्मिता की परिचायक भाषा के रूप में देखा जाता है। भाषाओं में निरंतर परिवर्तन होने के कारण शब्द कभी घट जाते हैं तो कभी बढ़ जाते हैं। इस घटा-बढ़ी के पीछे अनेक कारण कार्य करते हैं, जैसे हिन्दी में बहुतायत शब्द ऐसे हैं जिनका रूप संस्कृत जैसा ही है। कुछ शब्द संस्कृत पर आधारित हैं, लेकिन उनका रूप बदल गया है। अन्य भाषाओं के शब्द भी हिन्दी में प्रचुर मात्रा में आ गये हैं। किसी विशाल देश में जहां कई भाषाई प्रांत हैं वहां कोई अन्य भाषा जब बोली जाती है तो इसका एक क्षेत्रीय रूप विकसित हो जाता है। जैसे–मराठी हिन्दी, पंजाबी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

सर्जनात्मक भाषा

सर्जनात्मक भाषा से हमारा तात्पर्य भाषा के उस स्वरूप से है जिसमें भाषा अपनी अभिव्यक्ति में किसी निर्धारित शैली या शिल्प से परे लेखक के द्वारा ऐसे रूप में लिखी जाये जिसमें प्रयोग और नवीनता का समावेश हो। प्राय: किसी भाषा का साहित्य इस प्रकार की भाषा से हमारा परिचय कराता है। भाषा में प्रतीकों की व्यवस्था है जिसके अंगों-उपांगों से नियमबद्ध सम्बन्ध है। भाषा का प्रयोजन संप्रेषण व विचारों का आदान-प्रदान होता है। जो व्यक्ति सम्प्रेषण के प्रयोजन से भाषा का प्रयोग कारता है, उसे भाषा के सभी नियमों का पालन करना होता है। वक्ता भाषा का प्रयोग कर अपनी बात कहता है, तो उसे भाषा के सभी नियमों का पालन करना होता है। लेकिन, लेखक लिखकर पाठक को पहुंचाता है। इसके लिए आवश्यकता है कि वक्ता और लेखक तथा श्रोता और पाठक को भाषा के नियमों का ज्ञान हो। ये प्रयोग सामान्य भाषा का प्रयोग कहे जाते हैं। इसके विपरीत जब भाषा के नियमों का प्रयोग नहीं किया जाता तो उसे हम असामान्य प्रयोग कहते हैं। असामान्य प्रयोग में लेखक जो बात, जिस प्रकार से जितनी मात्रा में प्रेषित करता है, वह बात उसी प्रकार से श्रोता तक नहीं पहुंचती है। नियमों का ज्ञान न होने से संदेश का गुणात्मक ह्रास हो जाता है, क्योंकि श्रोता को बात समझने में बाधा आती हैं दूसरी ओर यदि लेखक को नियमों का पूर्ण ज्ञान है, लेकिन वह किसी विशेष कारण से नियमों का उल्लंघन कर अपनी बात इस प्रकार कहता है कि श्रोता कही गई बात से अधिक प्राप्त करता है। इस बात को अतिरिक्त सर्जना कहा जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सर्जनात्मकता का आशय लेखन में प्रचलित परिपाटी की जगह मौलिक शैली में संदेश के संदर्भ में किसी अर्थवत्ता का उद्‌घाटन है। इसे सर्जनात्मकता के रूप में

देखा जा सकता है। इसके लिए उपलब्ध शब्द से हटकर नये शब्दों का निर्माण, शब्दों में नये अर्थों को भरना, शब्दों का नया प्रयोग करना तथा शब्दों का नये ढंग से प्रस्तुत करना आदि सम्मिलित है। लेखन जितना प्रयास संदेश में अतिरिक्त अर्थ भरने में लगाता है, पाठक उतना या उससे अधिक अर्थ निकालने में करेगा। ऐसे संदेश में सर्जनात्मक तत्त्वों को समझकर अतिरिक्त अर्थ निकालना प्रत्येक भाषा प्रयोक्ता के वश की बात नहीं। कई पाठक ऐसे अर्थ भी निकाल लेते हैं जो लेखक ने सोचा भी नहीं होता। जिस संदेश में ऐसे अतिरिक्त अर्थ निकलने की संभावना जितनी अधिक होगी, उनमें सर्जनात्मकता का स्वर उतना ही अधिक ऊंचा होगा। सर्जनात्मक भाषा में लिखे संदेशों के रचयिता अपनी रचनाओं को बार-बार परिष्कृत करते हैं। यह अर्थ भाषा के नियमों के उल्लंघन से ही किया जाता है, विशेषकर व्याकरण के नियमों का। यह प्रत्येक सर्जनात्मक प्रयास में नहीं होता। भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग कई रूपों में होता है। कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण, निबंध आदि सर्जनात्मक प्रयोग के उदाहरण हैं। इस प्रकार की विधाओं में साहित्य को लिखते हुए यह देखना महत्त्वपूर्ण रहता है कि अभिव्यक्ति में किस तरह से कोई बात समाहित हो रही है। अपनी सर्जनात्मक भाषा में किसी कविता की पंक्तियां सामान्य प्रतीत हो सकती हैं, लेकिन संभव है सांकेतिक रूप में उसमें जटिल अर्थ संदर्भों की प्रस्तुति हो।

संचार भाषा में संप्रेषणीयता का तत्त्व समाहित होता है। वर्तमान समय में दुनिया संचार क्रांति के दौर से गुजर रही है। शक्तिशाली देशों ने अंतरिक्ष में अपनी-अपनी प्रयोगशालाएं स्थापित कर रखी हैं। कृत्रिम उपग्रहों के द्वारा वे भूगोल और खगोल की जानकारी का तेजी से संग्रहण कर रहे हैं। परिणामस्वरूप सूचनाओं का विस्फोट हो रहा है। इस सबने हिन्दी के समक्ष चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। भारत भी पीछे नहीं है। इसने भी अंतरिक्ष युग में प्रवेश कर लिया है। इसलिए हिन्दी को दूरसंचार की सक्षम भाषा के रूप में गठित करना इस समय बड़ी प्राथमिकता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने एक नई संचार भाषा को पैदा किया है। जिसमें संकेताक्षरों, लिपि चिह्नों और कूट पदों की बहुलता है। सर्वोत्तम संचार भाषा उसे माना जाता है जिसमें कम-से-कम वर्णाक्षरों का प्रयोग किया जाए। ऐसी ही भाषा को कम्प्यूटर में सुविधापूर्वक भरा जा सकता है। इस दृष्टि से अंग्रेजी अधिक सुचारु है क्योंकि उसमें वर्णों की संख्या कम है इसलिए वह दूरसंचार में छा रही है। इसका कारण है कि अंग्रेजी का बोलबाला है। वह वर्तनी और वाक्य संरचना में इंग्लैंड की अंग्रेजी से भिन्न है। **डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित**

ने इसे 'कम्यूनिकेटिव इंगलिश' कहा है। वे आगे लिखते हैं कि–''इस शती में अमेरिकी जनजीवन ने साहित्यिक अंग्रेजी को प्रश्रय नहीं दिया, उसने वरीयता दी कामकाजी अंग्रेजी को। इस कम्प्यूटर युग में अमेरिकावासियों ने अपनी भाषा को प्रयत्न लाघव से जोड़कर हजारों लाखों कोड बना डाले। आज वे सीधे 'सैटलाइट' से समाचार-पत्र का मुद्रण और प्रसारण कर लेते हैं। सम्प्रति कम्प्यूटर समस्त विश्व-ज्ञान को अपने अंदर समाहित कर लेने की स्थिति में है। इस प्रकार जन माध्यमों के द्वारा संचार के स्वरूप और उसकी संभावना में निरंतर परिवर्तन होता रहा है।

भारत अभी 'मैनुअल मुद्रण' के युग में ही है। केबल टी.वी. के आगमन से अब दूरदर्शन को ग्लोबल टी. वी. बनाने की बाध्यता अनुभव हो रही है। यही स्थिति आकाशवाणी और पत्रकारिता की भी है। संचार माध्यमों के अनुकूल हिन्दी की एक नयी छवि उभर रही है। समाचार पत्रों की हिन्दी तो वर्षों पूर्व साहित्यिक हिन्दी से कुछ भिन्न हो गयी थी। फिल्मों में प्रयुक्त हिन्दी भी अपने रूप रंग को फिल्मी कहानी या उसके परिवेश के अनुरूप गढ़ती रही है। रेडियो और टी. वी. की हिन्दी भी धीरे-धीरे अपनी अलग पहचान बनाती हुई दिखाई दे रही है। इस समय इस रूपांतर को योजनाबद्ध ढंग से करने की आवश्यकता है। संचार भाषा के रूप में हिन्दी नये कीर्तिमान स्थापित कर रही है। अभी तक हिन्दी के समाचार पत्र विदेशी समाचार समितियों से भेजे गये बासी समाचारों को प्रकाशित करते थे। 'भाषा समाचार एजेंसी' की स्थापना से इस स्थिति से काफी परिवर्तन आया है। यही स्थिति 'समाचार' की है। इससे हिन्दी समाचार-पत्रों की पठनीयता बढ़ी है। आकाशवाणी और दूरदर्शन की समाचार पत्रकारिता ने भी जनजीवन को पर्याप्त प्रभावित किया है। वर्तमान समय में दूरदर्शन के कई सरकारी गैर-सरकारी चैनल समाचार सूचना, मनोरंजन के कार्यक्रमों के प्रसारण में लगे हैं। इनकी भूमिका भी हिन्दी को संचार भाषा के रूप में स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण है।

राजभाषा

राजभाषा का आशय उस भाषा से है, जो सरकारी कामकाज में प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रकार राजभाषा का सामान्य अर्थ है–राजकाज चलाने की भाषा अर्थात् भाषा का वह रूप जिसके द्वारा राजकीय कार्य चलाने में सुविधा हो। राजभाषा से राजा (शासक) की भाषा अथवा राज्य की भाषा दोनों अर्थ लिये जा सकते हैं। केन्द्र की राजभाषा को संघभाषा भी कहा जाता है। प्रशासन तथा न्याय

की भाषा होने के कारण सरकारी दृष्टि से राजभाषा का बहुत महत्त्व होता है। राजभाषा का प्रयोग प्रमुख रूप से चार क्षेत्रों में किया जाता है–शासन, विधान, न्यायपालिका एवं विधानपालिका। स्वतंत्र भारत में नये संविधान की रचना तथा भारत के गणराज्य बन जाने पर भारतीय संविधान के लागू होने से पूर्व 'राष्ट्रभाषा' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में होता था, जिस अर्थ में आज 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग होता है अर्थात् संविधान में स्वीकृति के बाद इसका प्रयोग आरम्भ हुआ।

हिन्दी भाषा का विकास ग्यारहवीं शताब्दी में उत्तर-अपभ्रंशकालीन युग में शुरू हुआ। प्राचीन काल के सिक्कों से यह ज्ञात होता है कि देवनागरी का प्रयोग मुहम्मद गोरी ने किया था। इस सम्पर्क भाषा का और अधिक विकास हुआ, जब 13 वीं, शताब्दी में अलाउद्दीन तथा तुगलक के कारण उत्तर भारत के लोग बड़ी संख्या में दक्षिण चले गये। बाद में प्रशासनिक दृष्टि से अकबर ने मालवा, बरार, खानदेश एवं गुजरात को निकालकर दक्खिन प्रदेश बनाया। उस समय कुछ मुस्लिम परिवारों के अतिरिक्त शेष सभी व्यापारी एवं श्रमिक घर-बाहर सभी जगह खड़ी बोली का प्रयोग करते थे। सिकंदर लोदी के शासनकाल में भी राज्य का हिसाब-किताब हिन्दी में होता था। शेरशाह सूरी के सिक्कों में नागरी तथा फारसी दोनों का उल्लेख मिला है। मुगलों की भाषा फारसी भले ही ऊपरी तौर पर हो, पर चूंकि यह बोलचाल की भाषा नहीं थी, इसीलिए उस समय भी पंजाब, कश्मीर, उत्तर-प्रदेश, बिहार मध्य भारत आदि में हिन्दी सह-राजभाषा के रूप में विकसित हो रही थी। हिन्दी भाषी राज्यों में जिला स्तर पर जो कामकाज की सरकारी भाषा है उस पर आज भी मुगलकाल का भाषाई प्रभाव देखा जा सकता है। औरंगजेब के शासन काल तक तो हिन्दी की विविध शैलियां प्रयुक्त होने लगी थीं। मराठी प्रशासन में हिंदी का प्रयोग व्यापक रूप में मिलता है। मराठा प्रशासन में ताम्रपत्र लिखने, मराठा से हिन्दी भाषा में अनुवाद, राजनीतिक समझौते, सेना प्रशासन में हिंदी का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। राजस्थान की विभिन्न रियासतों में तो पूरा पत्राचार हिन्दी में होता था। ग्वालियर नरेश महाराज सयाजी राव सिंधिया ने दीवान शेख गुलाम हुसैन की 27.नवम्बर, सन् 1853 को यह आज्ञा प्रचारित की कि फारसी शब्दों का प्रयोग करने पर दण्ड की व्यवस्था की गयी है। हिन्दी क्षेत्र से इतर देशी राज्यों में भी हिन्दी का प्रश्रय था। बड़ौदा नरेश की आज्ञा से 'सयाजी शासन शब्द कल्पत:' शीर्षक से प्रशासन शब्दकोश तैयार किया गया, उसमें गुजराती, बंगला, मराठी, फारसी के अतिरिक्त हिन्दी एवं हिंदुस्तानी भी दिए गये हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब भारतीय संविधान लागू हुआ तब उसमें भली-भांति राजभाषा को और राष्ट्रभाषा के अंतर को स्पष्ट किया गया। यद्यपि व्यावहारिक स्तर पर आज संयोगवश हिन्दी राष्ट्रभाषा होने के साथ-साथ राजभाषा के रूप में भी मान्य है, पर सैद्धान्तिक तौर पर दोनों की अवधारणाएं पृथक्-पृथक् हैं। दोनों के स्वरूप में कुछ मूलभूत अंतर हैं जो इस प्रकार हैं–

1. राष्ट्रभाषा सदैव लोकभाषा होती है, पर राजभाषा कभी-कभी विदेशी भी हो सकती है। जब भारत में हिन्दी साम्राज्य का पतन हुआ तो धर्मांध इस्लाम की विजय पताका के अधीन सारा भारत आ गया तो यहां का सारा कामकाज फारसी भाषा में चलने लगा। इसी प्रकार जब मुगल-साम्राज्य का पतन हुआ और अंग्रेजों के पांव भारत में जम गए, तब भारत का सारा राजकाज अंग्रेजी भाषा में चलने लगा। ब्रिटिश भारत में अंग्रेजी राजभाषा थी, निजाम के हैदराबाद में उर्दू, फ्रांसीसी उपनिवेश पाण्डिचेरी और चंदन नगर में फ्रांसीसी तथा गोआ दमन में पोर्तुगीज भाषा के पद पर बैठायी गयी। राष्ट्रभाषा सर्वसाधारण व्यापिनी होती है, जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र झलकता है एवं राष्ट्रभाषा शासन सूत्र में सीमित होती है। इस प्रकार ऐतिहासिक स्तर पर राजभाषा का स्वरूप भारत में परिवर्तित होता रहा है। आजादी के बाद भारत में हिन्दी को यहां की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया।
2. राष्ट्रभाषा का शब्द भंडार देश की विविध बोलियों, उपभाषाओं आदि से समृद्ध होता है। इसमें लोक प्रयोग के अनुसार नयी शब्दावली जुड़ती चली जाती है, परंतु राजभाषा का शब्द भण्डार एक सुनिश्चित सांचे में ढला हुआ प्रयोजनामूलक प्रयुक्तियों तक सीमित होता है।
3. राष्ट्र की आत्मा वहां की राष्ट्रभाषा में ही ध्वनित होती है। सम्पूर्ण देश की जनता का चिन्तन, उसकी संस्कृति, विश्वास, धर्म, सामाजिक अवधारणाएं, जीवन के वैविध्यपूर्ण व्यावहारिक पहलू, लौकिक-आध्यात्मिक प्रवृत्तियां, लोक-नीति सम्बन्धी विविध विचार एवं दृष्टिकोण राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही मुखर होते हैं, पर राजभाषा वैधानिक अवधारणा से आवृत होता है। उसमें अधिकांश कानूनी और संवैधानिक आवरण से आवृत होता है। उसमें नियम विधान एवं उनसे सम्बन्धित विवेचन-विश्लेषण किया जाता है।
4. देश के सभी सार्वजनिक स्थलों, सांस्कृतिक केन्द्रों, तीर्थों, सभास्थलों, गली-मुहल्लों, हाट-बाजारों, मेलों, उत्सवों आदि में इस्तेमाल होती है, पर राजभाषा का प्रयोग कार्यालय की चारदीवारी तक ही सीमित होता है।

5. देश के ज्यादातर हिस्सों में आम जनता जिस भाषा में आपसी वार्तालाप, विचाराभिव्यक्ति एवं लोक-व्यवहार करती है, वह राष्ट्रभाषा होती है। अखिल भारतीय स्तर पर राजकीय कामकाज के लिए माध्यम के रूप में प्रयुक्त होने वाली भाषा राजभाषा कहलाती है। सरकारी कार्यालयों में कामकाज की भाषा के रूप में राजभाषा को देखा जाता है। भारत में सरकारी अर्द्धसरकारी कार्यालयों में राजभाषा में कामकाज को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

हिन्दी भाषाओं का स्वरूप अखिल भारतीय है। देश की तमाम भाषाओं की अपेक्षा उसकी अंत: प्रांतीय प्रेषण क्षमता भी ज्यादा है इसीलिए संविधान सभा के नियमों से पूर्व हिंदी को राष्ट्रीय एकता एवं भावनात्मक एकीकरण के निमित्त में राष्ट्रभाषा विश्लेषण से सम्बोधित किया था, पर संविधान सभा के राजभाषा सम्बन्धी निर्णय के पश्चात् यह संदर्भ और प्रसंग पूरी तरह खत्म हो गया। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में हिन्दी के साथ-साथ चौदह भारतीय भाषाओं का उल्लेख किया गया है। ये सारी भाषाएं भारतीय संविधान निर्माण के समय चौदह राज्यों की अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाएं हैं और अनुच्छेद 345 के अनुसार राज्यों को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा। ऐसी स्थिति में संवैधानिक स्थिति यह होती है कि हिन्दी भारतीय संविधान में उल्लिखित पन्द्रह प्रादेशिक भाषाओं में से एक प्रादेशिक भाषा है जो भारतीय संघ की राजभाषा स्वीकार की गयी है। संविधान में राष्ट्रभाषा शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है। भारतीय संविधान में 5, 6, और 17 में राजभाषा सम्बन्धी उपबंध हैं। भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। इस भाग में चार अध्याय हैं, जो क्रमश: संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषाएं, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों आदि की भाषा तथा विशेष निर्देश से सम्बन्धित है। भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी उपबंध-343 से 351 में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 120 में संसद एवं विधान मंडलों की भाषा के सम्बन्ध में विवरण दिया गया है। भारतीय संविधान में कहीं भी राजभाषा शब्द की कोई परिभाषा या व्याख्या नहीं दी गयी है। राजभाषा का प्रारम्भिक उल्लेख अनुच्छेद 343 (i) में इस प्रकार किया गया है–''संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।'' इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँ 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग एक सीमित अर्थ में प्रशासकीय प्रयोजन के लिए हुआ है, परन्तु अनुच्छेद 351 में

हिन्दी के प्रसार और विकास के सम्बन्ध में अनेक निर्देश दिये गए हैं। इसका अभिप्राय यह है कि संविधान निर्माताओं के मन में राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के विकास की संकल्पना निहित थी। अनुच्छेद 351 में प्रयुक्त 'हिन्दी भाषा' का अर्थ केवल राजभाषा हिन्दी तक ही न सीमित होकर राष्ट्रभाषा और सार्वदेशिक भाषा तक व्याप्त है। इसी अनुच्छेद में हिन्दी भाषा के विकास का लक्ष्य भारत का समासिक कर लेना बताया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि संविधान में 'राजभाषा' शब्द के प्रयोग के अंतर्गत हिन्दी सम्पर्क भाषा और भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यंजना कर सकते वाली भाषा के रूप में हिन्दी का अभिप्राय विद्यमान है।

14 सितंबर, 1949 को जब संविधान सभा में 'राजभाषा' सम्बन्धी भाग स्वीकृत हुआ तब संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा–''आज पहली बार हम अपने संविधान में एक भाषा स्वीकार कर रहे हैं जो भारत संघ के प्रशासन की भाषा होगी। हमने अपने देश का राजनीतिक एकीकरण सम्पन्न किया है। राजभाषा हिन्दी देश की एकता को कश्मीर से कन्याकुमारी तक अधिक सुदृढ़ बना सकेगी।'' अंग्रेजी की जगह भारतीय भाषा को स्थापित करने से हम निश्चय ही और भी एक-दूसरे के निकट आयेंगे। भारतीय संविधान में राजभाषा सम्बन्धी प्रमुख प्रावधानों एवं उपबंधों को चार वर्गों में बांटा जा सकता है–(अ) संसद में प्रयुक्त होने वाली भाषा (भाग 5, अनु. 120), (ब) विधान मण्डल में प्रयुक्त होने वाली भाषा (भाग 6, अनु.210), (स) संघ की राजभाषा (भाग 17, अनु. 343)(द) विधि-निर्माण एवं न्यायालयों में प्रयुक्त होने वाली भाषा (भाग 17, अनु. 348)।

वर्तमान समय में सरकारी कामकाज में अभी भी अंग्रेजी का वर्चस्व ज्यादा है, लेकिन 5 फीसदी लोगों के द्वारा बरती जाने वाली अंग्रेजी के मार्फत भारत में शासन एवं सरकार का प्रत्यक्ष रिश्ता शासन एवं सरकार के साथ स्थापित नहीं हो सकता है।

माध्यम भाषा

माध्यम भाषा से हमारा आशय उस भाषा से है, जो किसी कार्य प्रयोजन या प्रक्रिया में सम्यक् भाषा के रूप में अपनाई गई हो। शैक्षिक संदर्भ में जिस भाषा के द्वारा शिक्षण-प्रशिक्षण और पठन-पाठन की व्यवस्था की जाती है उसे भाषा माध्यम कहते हैं। माध्यम भाषा को अंग्रेजी में मीडियम लैंग्वेज भी कहा

जाता है। भारत में उच्च स्तर पर ज्ञान विज्ञान और तकनीकी का पठन-पाठन प्रायः अंग्रेजी माध्यम से ही होता है। इसके परिणामस्वरूप देश की युवा पीढ़ी को भारी क्षति उठानी पड़ती है। यह एक राष्ट्रीय क्षति है, जिसका एकमात्र उपाय है, प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग की तो अनेक घोषणाएं कीं, परंतु उनका अनेक ज्ञात-अज्ञात कारणों से पालन नहीं हो पाया। विश्व में ज्ञान क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। जिसके अनुरूप स्तरीय पुस्तकें नहीं आ पा रही हैं। दूसरी ओर अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर आये हुए अध्यापक अंग्रेजी को ही अध्यापन के लिए सुविधाजनक समझते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा में अंग्रेजी मिथ्या दम्भ की प्रतीक बनी हुई है। यह भ्रम भी फैलाया गया है कि विज्ञान और तकनीकी का ज्ञान, अंग्रेजी तकनीकी ज्ञान अंग्रेजी भाषा द्वारा ही संभव है। इस बात में संदेह नहीं है कि प्रौद्योगिकी जिस भाषा-क्षेत्र में आती है, वह अपने साथ अपनी शब्दावली भी लाती है। कम्प्यूटर का हिन्दीकरण तो हो गया और इन्हें देवनागरी लिपि में लिखा जायेगा। ऐसी परिस्थिति में उधार के शब्दों को लेना ही होगा तो हिन्दी को 'अप-टू-डेट' नहीं किया जा सकेगा। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार वर्तमान में अंग्रेजी की दिनोंदिन बढ़ती लोकप्रियता का कारण उसमें समुचित सर्वसंकलन की क्षमताओं का होना है।

हिन्दी को माध्यम भाषा बनाने के लिए जरूरी है कि उसके रूप में बदलाव लाया जाये। अभी तक हिन्दी के पास कुछ ही द्विभाषी, त्रिभाषी, शब्दकोष हैं। इसी प्रकार विभिन्न विषयों के कोष, पर्याय, कोश, व्युत्पत्ति कोश, संदर्भ कोश आदि भी बहुत कम हैं। इन्हें बनाना, प्रकाश में लाना, अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस आवश्यकता की पूर्ति तभी संभव हो सकती है जब कोश विज्ञान का प्रशिक्षण देकर विभिन्न बोलियों और विषयों के शब्दकोश बनाये जायें। अब रचनाकारों को साहित्य को छोड़कार इस क्षेत्र में आना होगा। सर्जनात्मक लेखन हिन्दी में बहुत हो चुका है। अब आवश्यकता है उपयोगी साहित्य की या उपयोगी पाठ्य-सामग्री को प्रकाश में लाने की। पारिभाषिकों, संकेताक्षरों को इस समय हिन्दी की आवश्यकता है। विदेशी भाषा के प्रत्येक शब्द का धात्वार्थ के अनुकूल हिन्दी नामान्तर गढ़ना होगा और हिन्दी के शब्दाभाव को दूर करना होगा। इस प्रकार के प्रयास विश्वविद्यालय के स्तर पर जब होंगे, शिक्षक और शोधार्थी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे और नवीनतम ज्ञान को हिन्दी में रूपांतरित करेंगे, तभी हिन्दी का माध्यम भाषा के रूप में विकास होगा। हिन्दी को माध्यम भाषा न तो दण्ड प्रावधानों के द्वारा बनाया जा सकता है और न ही तुष्टिकरण

की नीति के द्वारा। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि हिन्दी के माध्यम के स्कूलों को भी अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की तरह ही बेहतर और समृद्ध बनाया जाये।

मातृभाषा

भारतीय मातृ-प्रधान संस्कृति के ही समान भाषा को विशेष महत्त्व देने के लिए मातृभाषा नाम दिया गया है। भाषा मानव की उन्नति का सर्वप्रथम और महत्त्वपूर्ण माध्यम है। भाषा के आधार पर समाज का विकास हुआ है और समाज के आधार पर भाषा का विकसित रूप सामने आया है। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी भाषा से आत्मीय रूप से जुड़ा होता है। इस भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति का व्यक्तित्त्व विकसित होता है और उसके जीवन को गतिशीलता मिलती है। व्यक्ति ऐसी ही भाषा के माध्यम से परिवार और समाज में अपना स्थान बनाता है। मनुष्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक भाव, विचार ऐसी भाषा के ही आधार पर विकसित होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि जन्म के बाद बालक जिस भाषायी परिवेश में रहकर बाल्यपन में विचारों का आदान-प्रदान करता है, उसे भाषा की संज्ञा देनी चाहिए। माना एक बालक अवधी क्षेत्र में रहकर बड़ा होता है तो उसकी प्रारम्भिक अभिव्यक्ति की भाषा अवधी होगी। यह सच है कि अवधी देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण बोली है। इसे ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि उस बालक की मातृभाषा अवधी नहीं, हिंदी है।

मनोवैज्ञानिक रूप में इसके बारे में जब विचार करते हैं तो यह सहजता से समझ में आ जाता है कि अवधी भाषा क्षेत्र में जन्म लेने वाला बालक जैसे-जैसे बड़ा होता है, वैसे-वैसे इस भाषा में भावाभिव्यक्ति कराने लगता है। इसका प्रयोग बोलचाल या सामान्य व्यवहार में प्रभावी रूप में होता है। जब वह विद्यालय जाने के योग्य होता है तो मुख्यत: हिंदी भाषा सीखता है। अवधी अवध प्रांत में प्रयुक्त जनपदीय भाषा है। पश्चिमी हिंदी की एक संरचना को वह सरलता से ग्रहण कर लेता है। वह समाज, शिक्षा, राजनीति और धर्म आदि के क्षेत्रों में गतिशील रहने के लिए हिंदी भाषा को ही अपनाता है। ऐसी प्रक्रिया भाषा और बोली के सहज सम्बन्धों के कारण होती है, इसी प्रकार की बातें हिंदी या इसकी किसी भाषा की विभिन्न बोलियों के बारे में भी कही जा सकती है।

मातृभाषा से हमारा आशय इस भाषा से है जिससे मनुष्य जन्म के बाद परिवार या अपने घर के आसपास के बोलचाल में धीरे-धीरे सीखता है मातृभाषा को मनुष्य की मूल या प्रारंभिक भाषा के रूप में देखा जाता है।

यहां यह भी ध्यातव्य है कि यदि कोई हिन्दी भाषा-भाषी परवर्ती समय में जर्मन या अंग्रेजी भाषा सीखकर अपने जीवन में विशेष उन्नति कर ले तो उसकी मातृभाषा अंग्रेजी या जर्मन न होकर हिंदी ही होगी। यह भी निर्विवाद सत्य है कि मातृभाषा में भावाभिव्यक्ति सरल है और अधिक प्रभावी होती है। मातृभाषा से भली भांति अवगत होने के पश्चात् किसी भी अन्य भाषा का शिक्षण सरल होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी को मातृभाषा के रूप में याद करते हुए इसे 'निजभाषा' की संज्ञा दी है।

मातृभाषा के रूप में हिन्दी की उपादेयता

1. शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम–किसी बच्चे को उसकी मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना काफी सहज होता है, क्योंकि बच्चा उस भाषा को पूर्णरूपेण बोलता, लिखता और समझता है। यही वजह है कि बालक किसी अन्य भाषा को आसानी से नहीं रख सकता। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्रभावकारी एवं स्थायी भी होती है। शिक्षक जितने सरल तथा प्रभावकारी रूप से अपने विचारों को प्रकट करता है। छात्र भी उतनी आसानी तथा रुचि से उन्हें ग्रहण करता है। समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित आदि सभी विषय मातृभाषा के माध्यम से सिर्फ सरल बनाए जा सकते हैं, बल्कि उनका शिक्षण लाभकारी एवं स्थायी भी होगा। अपरिपक्व मस्तिष्क वाले छात्र विदेशी भाषा में अधूरा ज्ञान रखने के कारण उसके माध्यम से किसी भी विषय को सुंदर तरीके से समझने एवं ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। अपनी मातृभाषा में अनुसंधान करने के कारण ही आज अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, जर्मनी, फ्रांस, जापान और चीन इतनी प्रगति कर सके हैं जिससे इनकी गिनती विश्व के विकसित देशों में की जाती है। इन सभी देशों में सम्पूर्ण विषयों की शिक्षा मातृभाषा अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, जापानी और चीनी भाषा में दी जाती है। परिणामस्वरूप उन देशों में टेक्नोलॉजी, विज्ञान, साहित्य तथा अन्य विषय अपनी सर्वोच्चता पर हैं। इसके प्रतिकूल हमारे देश में विदेशी भाषा का माध्यम रहने के कारण आज भी इन विषयों का अपेक्षित विकास नहीं हुआ है। शिक्षा-क्षेत्र में मातृभाषा की उपेक्षा न सिर्फ व्यक्ति को कमजोर बनाती है, बल्कि इससे देश का प्रगति भी काफी धीमी पड़ जाती है। यहां यह भी ज्ञातव्य है कि

छात्रों का अधिकांश समय हमारे देश में अंग्रेजी सीखने में ही चला जाता है। अन्य विषयों में वे स्वभावत: पिछड़ जाते हैं। साथ ही विदेशी भाषा में पूर्ण निपुण न होने के कारण विषयों को पूर्ण रूप से समझ भी नहीं पाते। अतएव निर्विवाद रूप से शिक्षा का सरलतम एवं सर्वोत्तम साधन मातृभाषा है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी कहा है–'अंग्रेजी भाषा के घूंघट में छिपी हुई विद्या, स्वभाव से हमारे मन की सहवर्तनी होकर नहीं चल सकती। यही वजह है कि हममें से अधिकांश लोगों को जितनी शिक्षा मिलती है, उतनी विद्या नहीं मिलती।' इसी तरह गांधीजी के शब्द भी इस महत्व को उजागर करते हैं–'बालक पहला पाठ अपनी माता से ही पढ़ता है, इसलिए उसके मानसिक विकास के लिए उसके ऊपर मातृभाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा लादना मैं मातृभूमि के विरुद्ध पाप समझता हूं।' इन कथनों से भी इस महत्व की पुष्टि होती है।

2. विचार संप्रेषण का सरलतम साधन–विचार प्रकट करने का मातृभाषा सरलतम साधन है, वस्तुत: शिशु जन्म के कुछ ही दिनों बाद भाषा सीखने लगता है। यह उसकी अनुकरण की स्थिति होती है। प्रारंभ में वह अपने मां-बाप तथा परिवार के अन्य सदस्यों का अनुकरण करके भाषा सीखता है। तत्कालीन जीवन से संबंधित तथा रुचि की वस्तुओं के नाम का उच्चारण करता है। मां, दूध, पानी, खाना, कौआ, बिल्ली, कुत्ता, खिलौना, आदि ऐसी वस्तुएं एवं प्राणी हैं जिनसे उसका नजदीक का संबंध होता है अथवा जिनके प्रति उनकी रुचि होती है। इनके नाम वह बार-बार लेना पसंद करता है। बच्चों में सामान्य रूप से आवृत्ति की यह मनोवृत्ति पाई जाती है। इस प्रकार प्रारंभिक जीवन, आवश्यकताओं तथा रुचि से संबंधित शब्दोंवाली भाषा से शिशु का संबंध अत्यंत निकट का हो जाता है। आगे चलकर इस भाषा से वह बड़ी सुगमता से अपने विचारों को प्रकट कर सकता है। इतना ही नहीं उसके विचार तथा भाव भी इसी भाषा में उठते तथा स्वरूप ग्रहण करते हैं। जन्म और जीवन के संबंध रहने के कारण मातृभाषा मानव के जीवन एवं विकास का आवश्यक अभिन्न अंग बन जाती है। फलस्वरूप जितनी सुगमता से मानव अपनी मातृभाषा में भाव एवं विचार अभिव्यक्त कर सकता है, उतनी सुगमता से किसी भी अन्य भाषा में नहीं। सत्य तो यह है कि मातृभाषा का हमारे जीवन से अन्योन्याश्रित संबंध है। मातृभाषा मानव के अचेतन मन के तल तक पहुंच जाता है। जब अत्यधिक विपत्ति अथवा संकट में वह पड़ जाता है, तब अनायास ही उसके मुंह से त्राण के शब्द मातृभाषा में ही निकल जाते हैं। स्पष्ट है कि मातृभाषा के समान निपुणता किसी भी अन्य

भाषा में नहीं प्राप्त हो सकती। अत: 'अभिव्यक्ति के सरलतम साधन' के रूप में मातृभाषा का महत्व निर्विवाद है।

3. सांस्कृतिक विकास में सहायक–मातृभाषा का महत्व उसके बोलनेवाले समाज की संस्कृति के विकास में है। वस्तुत: किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक एवं मानवीय उपलब्धियां उसकी मातृभाषा के साहित्य में प्रधान रूप से संग्रहीत होती हैं। अत: अपनी संस्कृति का समुचित ज्ञान प्राप्त करने तथा उसके साथ आंतरिक संबंध स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि अपनी मातृभाषा में उपलब्ध साहित्य का अध्ययन एवं मनन-चिंतन किया जाए। इस कार्य को पूर्ण दक्षता तथा निपुणता से करने के लिए मातृभाषा में निष्णात होना आवश्यक है। इस प्रकार अपनी सामाजिक संस्कृति को समझने तथा उसके साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि मातृभाषा के ज्ञान में पूर्ण दक्ष हुआ जाए। 'रामचरितमानस', 'महाभारत', 'कबीर-काव्य' आदि का ज्ञान मातृभाषा के माध्यम से ही पूर्णरूप से हो सकता है। सूर, तुलसी, कबीर, प्रसाद, दिनकर, पंत, निराला आदि महान् कवियों की कविताओं का वास्तविक आनंद हिन्दी का पूर्ण ज्ञाता ही उठा सकता है। अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से इनकी आत्मा में प्रवेश पाना सर्वथा असंभव है। इस प्रकार हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, वे अपनी मातृभाषा में निष्णात होकर ही अपनी संस्कृति से परिचित हो सकते हैं। इतना ही नहीं, वे अपनी मातृभाषा में प्रवीणता प्राप्त कर ही अपनी संस्कृति का उत्थान कर सकते हैं। मातृभाषा का अमृत डालकर ही अपनी संस्कृति को पल्लवित और पुष्पित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि मातृभाषा किसी भी राष्ट्र अथवा समुदाय की संस्कृति की संरक्षिका तो होती ही है, संवाहिका और उद्भाषक भी होती है।

4. सामाजिक विकास में सहायक–यह निर्विवाद है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अंदर वह विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान करता है और यह भाषा मुख्य रूप से मातृभाषा होती है। अतएव मानव सामाजिक जीवन में अपने विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान मातृभाषा द्वारा ही प्रभावपूर्ण ढंग से कर पाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मातृभाषा मानव के सामाजिक विकास में बहुत ही मूल्यवान रूप से सहायक है। नागरिकता तथा मानसिक विकास का भी सामाजिक जीवन से बहुत गहरा संबंध है। मानसिक विकास का आधार विचार-शक्ति है। दूसरी ओर विचार भाषा को जन्म देते हैं। इस प्रकार भाषा और विचार का बहुत अधिक संबंध है। हम यह भी सोचते हैं कि हमारा विचार केवल मातृभाषा ही में उत्पन्न होना चाहिये। नैतिकता तथा भाव-प्रकाशन शक्ति

मातृभाषा ही प्रदान करती है। सामाजिक तथा नागरिक के गुणों के विकास में मातृभाषा का योग सर्वोच्च है। रायबर्न के विचार भी इस मान्यता को पुष्ट करते हैं–'वे समस्त गुण जो एक अच्छे नागरिक के लिए आवश्यक हैं–स्पष्ट विचार-क्षमता, स्पष्ट अभिव्यक्ति, भावना, विचार एवं क्रिया की सत्यता, भावात्मक एवं सृजनात्मक जीवन की पूर्णता–इन सभी गुणों का विकास तभी संभव है जब केवल भावात्मक तथा बौद्धिक जीवन के आधार मातृभाषा पर पूर्ण ध्यान दिया जाए।' अत: मातृभाषा का सामाजिक महत्व भी सिद्ध ही है।

5. व्यक्तित्त्व के विकास में सहायक–मातृभाषा का बच्चे के जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। वस्तुत: मातृभाषा के अध्ययन से बच्चों के व्यक्तित्त्व का विकास होता है। मातृभाषा की शिक्षा के द्वारा बच्चों में आत्मप्रकाशन की क्षमता का आश्चर्यजनक रूप से विकास होता है। साथ ही दूसरे के प्रकाशित भावों और विचारों को समझने की क्षमता भी प्राप्त होती है। यह भी सत्य है कि मातृभाषा के माध्यम से आत्म प्रकाशन सर्वोत्तम ढंग से हो सकता है। आत्मप्रकाशन में सक्षम तथा विचार-ग्रहण में प्रवीण बच्चों के अंदर आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। यह आत्मविश्वास का गुण व्यक्तित्त्व को प्रशस्त बनाने एवं विकसित करने के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस गुण से संपन्न बच्चे अपने विचारों को निर्भीक होकर प्रकट करते हैं तथा उनके अंदर के सुषुप्त नैसर्गिक गुणों का सुंदर ढंग से विकास होता है। इतना ही नहीं, अपनी तथा अन्य जातियों की सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान तो भाषा के माध्यम से ही होता है। मातृभाषा इस दिशा में सहायक तो होती ही है, साथ-साथ समाज-सम्मत आचरण को समझने में भी सहायक होती है। इसके फलस्वरूप बच्चों का सामाजिक व्यक्तित्त्व भी स्वाभाविक रूप से विकसित होता चलता है। अत: मातृभाषा की शिक्षा का महत्व स्वयंसिद्ध है।

6. मानसिक एवं बौद्धिक विकास का साधन–मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानसिक एवं बौद्धिक विकास का आधार विचार-शक्ति है। विचार और विवेक के सहारे ही मानव की बुद्धि विकसित होती है। विचार के द्वारा ही मानव-बुद्धि को निश्चित दिशा एवं गति प्राप्त होती है। इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि विचार तथा भाषा का अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। विचार के गर्भ से भाषा का जन्म होता है तथा भाषा के शरीर में विचार प्रकट होता है। मातृभाषा का संबंध व्यक्ति के जन्म से ही होता है, अत: उसके विचार सामान्यत: मातृभाषा में ही उद्‌भूत होते हैं। जिसकी भाषा जितनी ही प्रसशक्त होगी, विचार भी उसके

उतने ही सुदृढ़ एवं प्रखर होंगे। महात्मा गांधी के विचार के अनुसार, 'मानसिक शक्ति के लिए भाषा उतनी ही आवश्यक है, जितना शिशु के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध। मातृभाषा ही ऐसी भाषा हो सकती है।' मातृभाषा के माध्यम से बच्चे ज्ञान-विज्ञान, साहित्य एवं अन्य विषयों का अध्ययन करने और समझने में समर्थ होते हैं। इससे उनका मानसिक एवं बौद्धिक विकास होता है।

7. आंतरिक गुणवत्ता में सहायक—मातृभाषा का संबंध मानव के शैशवावस्था से होता है। इसी भाषा में वह बचपन में अपनी आवश्यकता तथा रुचि की वस्तुएं मांगता है। इसी भाषा के साथ जीवन का विकास, सामाजिक, पारिवारिक संबंध तथा कड़वे-मीठे अनुभव जुड़े हुए हैं। मां की प्रथम बोली इसी भाषा में फूटती है। मां-बाप तथा परिजन-समाज का स्नेह, दुलार-प्यार इसी भाषा के माध्यम से प्रकट होता है। अत: स्वाभाविक ही है कि इस भाषा के बोलनेवालों में सद्भाव एवं अपनापन का विकास हो। ऐसा देखा भी जाता है कि अपनी मातृभाषा में बोलनेवाले के प्रति हम अधिक आकर्षित होते हैं, अधिक अपनापन का अनुभव करते हैं। इस प्रकार मातृभाषा के सहारे हम समाज के सदस्यों के बीच सद्भावना एवं भावात्मक एकता का अनुभव करते हैं। वस्तुत: मातृभाषा भावात्मक सद्भावना एवं एकता के विकास में सक्रिय रूप से सहायक होती है। इसके अतिरिक्त अपनी मातृभाषा के साहित्य एवं कला-उपलब्धियों के प्रति भी आंतरिक एवं भावात्मक अनुराग उत्पन्न होता है। इससे मातृभाषा के साहित्य एवं कला के विकास की दिशा में भी हम प्रवृत्त होते हैं। स्पष्ट है कि मातृभाषा की शिक्षा न केवल बच्चों के भावात्मक विकास में सहायक है, बल्कि उन्हें साहित्य एवं कला के क्षेत्र में सृजनात्मकता की ओर भी अग्रसर करती है।

अंत में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि मातृभाषा का महत्व मनुष्य के व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास के लिए सर्वोपरि है। वस्तुत: मातृभाषा मात्र एक विषय नहीं है, बल्कि वह तो सभी विषयों में प्रवेश का साधन है। उसके आधार पर ही तो अन्य सभी विषयों के महल खड़े होते हैं। अतएव मातृभाषा की शिक्षा का महत्व सर्वमान्य एवं सर्वोपरि है। इसी भाषा में तो शिशु विचार करता तथा स्वप्न देखता है। यह मानवीय संस्कृति एवं शिक्षा की प्राण-धारा है।

8. राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायक—विश्व में हिन्दी तीसरी सबसे ज्यादा बोली और समझी जाने वाली भाषा है। भारत के अतिरिक्त फिजी, मॉरिशस, गुयाना, त्रिनीदाद, बारबाडोस, सूरीनाम, इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा और

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी बोली और समझी जाती है। भारत में हिन्दी सर्वाधिक लोगों द्वारा व्यवहृत की जाने वाली भाषा है। हिन्दी भारत के बड़े शहरों और राज्यों की मातृभाषा है, यथा–उत्तर प्रदेश उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली। साथ ही संविधान के अनुसार यह भारत की राष्ट्रभाषा भी है। अत: राष्ट्रभाषा के रूप में इसके क्षेत्र तथा उत्तरदायित्व दोनों बहुत ही विस्तृत हो जाते हैं। यह समस्त देश के विभिन्न भाषा–भाषी क्षेत्रों एवं राज्यों के बीच संपर्क–भाषा का भी रूप ले लेती है। प्रशासन में तथा अन्य राज्यों में पत्र–व्यवहार में भी इसको प्रश्रय प्राप्त है। किंतु, खेद का विषय है कि संविधान सम्मत अवधि (1965 ई.) समाप्त होने पर भी हिन्दी को पूर्ण रूप से राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं दिया गया। केंद्रीय सरकार के एक परिपत्र के द्वारा अंग्रेजी को असीमित काल तक अंतर्राज्यीय संपर्क की भाषा बने रहने की छूट दे दी गई। फिर भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान तो संविधानत: प्राप्त है ही। इसे टाला जा सकता है, बिल्कुल इसको खत्म नहीं किया जा सकता। हां, तो राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का दायित्व और भी गुरुतर हो जाता है। इसे विभिन्न भाषा–भाषी राज्यों के बीच एकसूत्रता स्थापित करने की पवित्र संकल्पना पूरी करनी है। हिन्दी मातृभाषा वाले क्षेत्रों के लोगों का भी यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने अंदर सहिष्णुता, उदारता और सहृदयता के गुणों का विकास करें। इन्हीं गुणों के द्वारा वे अन्य भाषाभाषी क्षेत्रों की जनता का हृदय जीत सकेंगे तथा उनके हृदय से हिन्दी साम्राज्यवाद का भ्रम दूर कर सकेंगे। इस प्रकार मातृभाषा हिन्दी राष्ट्रीय एकता, सद्भावना, एकात्मकता तथा सहृदयता के संकल्प को भी पूर्ण करके राष्ट्रभाषा के सच्चे गौरव को प्राप्त कर सकेगी। हिन्दी मातृभाषा के शिक्षण को इस दिशा की ओर अग्रसर करना हिन्दीभाषी के लिए लाभप्रद होगा।

9. व्यक्तित्त्व के विकास में अमूल्य वस्तु है–हम सभी इस सामान्य सत्य से परिचित हैं कि शारीरिक विकास के लिए संतुलित भोजन अत्यावश्यक है। वस्तुत: भोजन स्थूल शारीरिक विकास का आधार है। इसके बिना शारीरिक विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती। किंतु, मात्र भोजन ही शारीरिक विकास के लिए पर्याप्त नहीं है। सम्यक् शारीरिक विकास के लिए तो निद्रा एवं आंतरिक प्रसन्नता की भी उतनी ही आवश्यकता होती है। एक पागल मनुष्य भोजन तो करता ही है, फिर भी उसकी शारीरिक शक्ति का न तो सदुपयोग किया जा सकता है और न उसे क्षीण होने से रोका जा सकता है। 'अत: मातृभाषा द्वारा वह क्षमता प्राप्त होती है जिससे साहित्य, कहानी, कविता, मनोरंजक

साहित्य, विज्ञान आदि का अध्ययन एवं मनन-चिंतन करके प्रसन्न चित्तता एवं निश्चिंत निद्रा के वरदान प्राप्त किए जा सकते हैं। मातृभाषा आनंद, प्रसन्नता एवं ज्ञान का एक स्रोत है, मातृभाषा दक्ष बच्चों को उसके साहित्य की ओर प्रवृत्त करती है तथा साहित्य का अध्ययन उन्हें प्रसन्नता तथा ज्ञान का वरदान देता है। इस प्रकार मातृभाषा का ज्ञान उनके शारीरिक एवं मानसिक दोनों पक्षों का विकास करने में सक्षम है।

मातृभाषा के रूप में मानक हिन्दी का प्रयोजन

यह मानवीय एवं सर्वविदित तथ्य है कि कोई भी भाषा अनुकरण से सीखी जाती है। लेकिन इसका निष्कर्ष यह बिल्कुल नहीं कि भाषा को सीखने की जरूरत ही नहीं। घरेलू वातावरण में सीखी गई पारिवारिक भाषा पूर्ण रूप से शुद्ध, परिमार्जित व व्याकरण-सम्मत हो यह आवश्यक नहीं। भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा को शुद्ध, व्याकरण-सम्मत व परिमार्जित होना आवश्यक है। अतः बच्चे के विकास के लिए भाषा की शिक्षा आवश्यक है। भाषा की शिक्षा से आवश्यक है उसका मौखिक तथा लिखित ज्ञान। बालक के सुनने, बोलने, पढ़ने एवं लिखने के कौशल को विकसित करना भाषा-शिक्षण के मुख्य उद्देश्य हैं। फिर भी हम निम्न रूप से भाषा शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं–

1. ग्राह्ययात्मक उद्देश्य–ग्राह्य शब्द का अर्थ है ग्रहण करना, अर्थात् बच्चों में उन कौशलों का विकास करना जो किसी के द्वारा व्यक्त, बोले अथवा लिखे भावों को ग्रहण कर सकें। इजना उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(क) छात्रों को इस योग्य बनाना कि सुनकर विचारों को ग्रहण कर सकें। इसमें उन्हें ध्वनि, शब्द, स्वराघात, बलाघात, एकाग्रता आदि के प्रति जागरूक किया जाएगा।

(ख) पढ़कर विचारों को ग्रहण करना सिखाना, इसमें छात्रों के शब्द-भंडार में वृद्धि करना, शब्दों को पढ़कर अर्थ ग्रहण करना, क्षमता का विकास करना, भाषा का शुद्ध उच्चारण करना, मुहावरे व लोकोक्तियों व पाठ का केन्द्रीय भाव ग्रहण करना आदि है। इससे छात्रों की चिंतन-मनन की शक्ति का भी विकास होता है।

2. अभिव्यंजनात्मक उद्देश्य–विद्यार्थियों को इस लायक बनाना कि वह अपनी बात दूसरों तक पहुंचा सकें ही, राष्ट्रभाषा का प्रधान प्रयोजन है। इसमें इस प्रकार अभिव्यक्ति के स्तर पर दो उद्देश्य हैं–

(क) बोलकर विचारों की अभिव्यक्ति का विकास करना, विचारों का आदान-प्रदान ही सामाजिकता है। अतः छात्र को इस योग्य बनाना कि वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति में शुद्ध बोले। शब्दों का सही चयन करे तथा बोलने के शिष्टाचार का पालन करते हुए उचित गति व हाव-भाव के साथ बोले। अपनी भाषा को प्रभावशाली बनाने हेतु मुहावरे-लोकोक्तियां व सूक्तियों का प्रयोग करे। इसमें क्रमबद्धता का ध्यान रखना भी नितांत आवश्यक है।

(ख) लिखित रूप से विचाराभिव्यक्ति की क्षमता का विकास करना। भाषा का लिखित रूप उसे स्थायित्व प्रदान करता है। बच्चों में इस क्षमता का विकास करना कि वे शुद्ध व स्पष्ट अक्षरों को लिख सकें। लेखन में क्रमबद्धता का ध्यान रखना तथा प्रसंगानुकूल शब्द, मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग करना मुख्य उद्देश्य है।

3. समालोचनात्मक उद्देश्य–समालोचना का तात्पर्य है साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात उसके गुण-दोषों के विवेचन की क्षमता। उच्च प्राथमिक स्तर पर इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

4. साहित्य की ओर छात्रों को आकर्षित करना–साहित्य ही वह माध्यम है जिसके द्वारा विद्यार्थियों की रुचि की दिशा तय की जाती है। इसके लिए छात्रों में अतिरिक्त पठन, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने की आदतों का विकास करना है। इससे छात्र विद्यालय में होने वाली अन्य गतिविधियों में भाग लेने के प्रति अभिप्रेरित होते हैं। कविता-वाचन, वाद-विवाद, भाषण, नाटक आदि से इस उद्देश्य की प्राप्ति होती है।

5. सराहना करने की क्षमता का विकास करना–इससे छात्रों की साहित्यिक रुचि विकसित की जाती है। छात्र किसी भी साहित्यकार की कृति का अध्ययन करके इस योग्य बने जिससे उसके शब्द चुनाव, कला-भाव व शैली की प्रशंसा कर सके। इसमें छात्र कविता का हाव-भाव सहित वाचन कर सकें तथा घटना के आधार पर कहानी को समझ सकें।

6. सृजनात्मक उद्देश्य–सृजन का आशय है नई मौलिक रचना करना। अध्यापक का कर्तव्य है कि बच्चों में इस क्षमता का विकास करे जिससे वे चिंतन-मनन करके मौलिक रूप से लिख सकें। यही वजह है कि इस क्षमता के अभाव में दसवीं कक्षा तक के छात्र निबंध रट तो लेते हैं, परन्तु अपने आप किसी भी विषय पर मौलिक रूप से लिखने में पंगु हैं। इससे छात्रों में आत्मविश्वास

तथा लेखन के प्रति रुझान उत्पन्न होता है। इसके लिए अध्यापक छात्रों से कहानी, कविता, पत्र, निबंध, अनुच्छेद, भावपल्लवन इत्यादि कार्य करवा सकता है। आज के भाषा शिक्षण में इस उद्देश्य का ध्यान नहीं रखा जाता है।

7. सद्‌वृत्तियों का विकास करना–शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों में सद्‌गुणों व सद्‌वृत्तियों का विकास करना ही है। साहित्य में अभिरुचि के पश्चात् उनमें देश–प्रेम, राष्ट्रीय भावना, दया, प्रेम एवं संवेदनशीलता का विकास होता है।

उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही भाषा की पाठ्य–पुस्तक की रचना की जाती है। अध्यापक का यह प्रयास होना चाहिए कि वह शिक्षण के समय छात्रों को इन उद्देश्यों की सम्प्राप्ति में मदद करें। इसके लिए छात्रों को सस्वर वाचन करवाना, प्रश्नोत्तर करना, चित्र का वर्णन करवाना, प्रश्न पूछने के लिए छात्रों को प्रेरित कर सकते हैं। लिखित के लिए सुंदर से सुंदर अक्षर लिखना, लिखित रूप से उल्लेख करना, प्रश्नों का लिखित उत्तर देना, व्याख्यान, भावपल्लवन, संक्षिप्तीकरण व अनुच्छेद लेखन का अभ्यास करवाना चाहिए। वास्तव में अध्यापक को शिक्षण कार्य करवाते समय उद्देश्यों का ध्यान रखना परम आवश्यक है।

2

व्यावसायिक एवं संवादात्मक हिंदी का मानक स्वरूप

मानक हिन्दी हिन्दी का मानक स्वरूप है जिसका शिक्षा, कार्यालयीन कार्यों आदि में प्रयोग किया जाता है। भाषा का क्षेत्र देश, काल और पात्र की दृष्टि से व्यापक है। इसलिये सभी भाषाओं के विविध रूप मिलते हैं। इन विविध रूपों में एकता की कोशिश की जाती है और उसे मानक भाषा कहा जाता है।

हिन्दी में 'मानक भाषा' के अर्थ में पहले 'साधु भाषा', 'टकसाली भाषा', 'शुद्ध भाषा', 'आदर्श भाषा' तथा 'परिनिष्ठित भाषा' आदि का प्रयोग होता था। अंग्रेजी शब्द 'स्टैंडर्ड' के प्रतिशब्द के रूप में 'मान' शब्द के स्थिरीकरण के बाद 'स्टैंडर्ड लैंग्विज' के अनुवाद के रूप में 'मानक भाषा' शब्द चल पड़ा। अंग्रेजी के 'स्टैंडर्ड' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग इसे 'स्टैंड' (खड़ा होना) से जोड़ते हैं तो कुछ लोग एक्सटैंड (बढ़ाना) से। मेरे विचार में यह 'स्टैंड' से संबद्ध है। वह जो कड़ा होकर, स्पष्टत: औरों से अलग प्रतिमान का काम करे। 'मानक भाषा' भी अमानक भाषा-रूपों से अलग एक प्रतिमान का काम करती है। उसी के आधार पर किसी के द्वारा प्रयुक्त भाषा की मानकता अमानकता का निर्णय किया जाता है।

वर्तनी शब्द का इतिहास

हिंदी शब्दसागर तथा संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के प्रारंभिक संस्करणों के साथ ही सन् 1950 में प्रकाशित प्रामाणिक हिंदी कोश (आचार्य रामचंद्र वर्मा)

में इसका प्रयोग न होना यह संकेत करता है कि इस शताब्दी के मध्य तक इस शब्द की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई। छठे दशक में वर्तनी शब्द को स्थान मिला, जिसका सन्दर्भ तब प्रकाशित हुई दो पुस्तकों में मिलता है–

1. शुद्ध अक्षरी कैसे सीखें –प्रो. मुरलीधर श्रीवास्तव, एवं
2. हिन्दी की वर्तनी–प्रो. रमापति शुक्ल।

प्रो. श्रीवास्तव के अनुसार, हिन्दी की वर्णमाला पूर्णत: ध्वन्यात्मक होने के कारण हिन्दी की वर्तनी की समस्या उतनी गंभीर नहीं जितनी अंग्रेजी कीय क्योंकि हिन्दी में आज भी लिखित रूप से शब्द अपने उच्चरित रूप से अधिक भिन्न नहीं।

इन्होंने अक्षरी शब्द का प्रयोग किया, जो प्रचलन में नहीं आ सका, क्योंकि उसी समय लेखक ने सिलेबिल के लिए अक्षर का प्रयोग अपने डॉक्टरेट के ग्रंथ हिन्दी भाषा में 'अक्षर' तथा शब्द की सीमा' में स्थिर कर दिया। उस समय तक बिहार में 'विवरण' बंगाल में 'बनान' शब्द हिज्जे स्पेलिंग के लिए चल रहे थे। इसके अलावा प्रचलन में कुछ अन्य शब्द थे –अक्षरन्यास, अक्षर विन्यास, वर्णन्यास, वर्ण विन्यास, आदि। शिक्षा के प्रोफेसर कृष्ण गोपाल रस्तोगी ने अक्षर विन्यास शब्द का प्रयोग बहुत समय तक किया। यही वर्ण विन्यास है। अमरकोश में लिपि के लिए अक्षर विन्यास: तथा लिखितम् का प्रयोग भी पर्याय के रूप में मिलता है।

उपर्युक्त सभी शब्दों के होते हुए भी अब इस अर्थ में 'वर्तनी' ही मान्य हो गया और भारत सरकार के केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली ने न केवल इस शब्द को मान्यता दी, वरन् एकरूपता की दृष्टि से कुछ नियम भी स्थिर किए हैं। वर्तनी शब्द भी संस्कृत भाषा का है, जिसकी व्युत्पत्तियाँ देते हुए आचार्य निशांतकेतु ने 'वर्तनी' शब्द के कोशगत अर्थ बताए हैं:– मार्ग, पथ, जीना, जीवन और दूसरा अर्थ है– पीसना, चूर्ण बनाना, तकुआ । ज्ञानमंडल, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'बृहद् हिन्दी कोश' में पहली बार वर्तनी का अर्थ हिज्जे दिया गया। काफी विवेचन के बाद वर्तनी की बड़ी व्यापक परिभाषा स्थिर की गई–

भाषा–साम्राज्य के अंतर्गत भी शब्दों की सीमा में अक्षरों की जो आचार संहिता अथवा उनका अनुशासनगत संविधान है, उसे ही हम वर्तनी की संज्ञा दे सकते हैं।....वर्तनी भाषा का वर्तमान है। वर्तनी भाषा का अनुशासित आवर्तन है, वर्तनी शब्दों का संस्कारिता पद विन्यास है। वर्तनी अतीत और भविष्य के मध्य का सेतु सूत्र है। यह अक्षर संस्थान और वर्ण क्रम विन्यास है।

आचार्य रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने संस्कृत व्याकरण के वार्तिक से इसका संबंध स्थापित करते हुए व्यक्त किया। वार्तिक एवं वर्तनी दोनों शब्दों के ध्वनिसाम्य एवं अर्थसाम्य में समानता है। सूत्र के द्वारा शब्द साधना का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है तथा वार्तिक में सूत्रों द्वारा त्रुटिपूर्ण कथन पर पूर्ण विचार किया जाता है। वर्तनी भी इसी समानांतर प्रक्रिया से गुजरती है। वर्तनी का भी सामूहिक विशुद्ध स्वरूप ही भाषा की समृद्धि के लिए ग्राह्य है। वर्तनी शब्द के विरोधी होते हुए भी आचार्य वाजपेयी इस शब्द के उत्थान हेतु इनका योगदान तथा हिन्दी की वर्तनी तथा शब्द विश्लेषण उल्लेखनीय हैं।

मानक भाषा

मानक का अभिप्राय है-आदर्श, श्रेष्ठ अथवा परिनिष्ठित। भाषा का जो रूप उस भाषा के प्रयोक्ताओं के अलावा अन्य भाषा-भाषियों के लिए आदर्श होता है, जिसके माध्यम से वे उस भाषा को सीखते हैं, जिस भाषा-रूप का व्यवहार पत्राचार, शिक्षा, सरकारी काम-काज एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में समान स्तर पर होता है, वह उस भाषा का मानक रूप कहलाता है।

मानक भाषा किसी देश अथवा राज्य की वह प्रतिनिधि तथा आदर्श भाषा होती है, जिसका प्रयोग वहाँ के शिक्षित वर्ग के द्वारा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक व वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है।

किसी भाषा का बोलचाल के स्तर से ऊपर उठकर मानक रूप ग्रहण कर लेना, उसका मानकीकरण कहलाता है। मानकीकरण (मानक भाषा के विकास) के तीन सोपान निम्नलिखित हैं-

प्रथम सोपान- 'बोली'

पहले स्तर पर भाषा का मूल रूप एक सीमित क्षेत्र में आपसी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होने वाली बोली का होता है, जिसे स्थानीय, आंचलिक अथवा क्षेत्रीय बोली कहा जा सकता है। इसका शब्द भंडार सीमित होता है। कोई नियमित व्याकरण नहीं होता। इसे शिक्षा, आधिकारिक कार्य-व्यवहार अथवा साहित्य का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

द्वितीय सोपान- 'भाषा'

वही बोली कुछ भौगोलिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक व प्रशासनिक कारणों से अपना क्षेत्र विस्तार कर लेती है, उसका लिखित रूप विकसित होने लगता है और इसी कारण से वह व्याकरणिक साँचे में ढलने लगती है, उसका पत्राचार, शिक्षा, व्यापार, प्रशासन आदि में प्रयोग होने लगता है, तब वह बोली न रहकर 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है।

तृतीय सोपान- 'मानक भाषा'

यह वह स्तर है जब भाषा के प्रयोग का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। वह एक आदर्श रूप ग्रहण कर लेती है। उसका परिनिष्ठित रूप होता है। उसकी अपनी शैक्षणिक, वाणिज्यिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, तकनीकी एवं कानूनी शब्दावली होती है। इसी स्थिति में पहुँचकर भाषा 'मानक भाषा' बन जाती है। उसी को 'शुद्ध', 'उच्च-स्तरीय', 'परिमार्जित' आदि भी कहा जाता है।

मानक भाषा का स्वरूप और प्रकृति

मानक भाषा संरचनात्म दृष्टि से अपनी भाषा के विभिन्न रूपों में से किसी एक रूप या एक बोली पर आधारित होती है। इसके मानक बनते ही इसकी बोलीगत विशेषताएं लुप्त होने लगती हैं और वह क्षेत्रीय से अक्षेत्रीय हो जाती है। इसका कोई निर्धारित सीमा क्षेत्र नहीं होता और न ही वह किसी भाषाभाषी समुदाय की मातृभाषा कहलाती है। हमारे सामने हिन्दी का मानक रूप है। यह मानक रूप हिन्दी की खड़ी बोली से विकसित हुआ है। इस रूप में खड़ी बोली की बोलीगत विशेषताएं लुप्त हो गई हैं और यह रूप खड़ी बोली से उतना ही अलग जान पड़ता है जितना वह भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि अन्य बोलियों से। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली, भोजपुरी ब्रज, अवधी आदि के अपने भाषाभाषी समुदाय हैं और इनका अपना सीमा क्षेत्र है और इनके बोलने वाले इन्हें अपनी मातृ भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं किंतु हिन्दी के मानक रूप के संबंध में इस प्रकार की संकल्पनाएं कुछ अलग सी हैं। हिन्दी क्षेत्र में विभिन्न बोलियों के बोलने वाले उसे उसी प्रकार की मातृभाषात् अवश्य मानते हैं अर्थात वे उसे 'सहमातृभाषा या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं।

संरचना की दृष्टि से मानक भाषा में आंतरिक संशक्ति होती है और वह प्रयोग की दृष्टि से काफी व्यापक होती है। इन दोनों अभिलक्षणाों से मानक भाषा

का स्वरूप स्पष्ट होने लगता है। वास्तव में मानक भाषा का प्रयोग क्षेत्र जितना विस्तृत होता जाएगा उसकी संरचना में अधिकतम समरूपता बनी रहेगी। इसीलिए व्यापक क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसकी आंतरिक संशक्ति की अपेक्षा रहती है। शब्दोच्चारण, शब्दरूपों और वाक्य विन्यास को स्थिरता देने का प्रयास रहता है। इसमें एक शब्द का एक ही उच्चारण और एक ही वर्तनी की अपेक्षा रहती है। इसका एक ही व्याकरणिक ढांचा होता है। इस आंतरिक संशक्ति या भाषिक एकरूपता से संप्रेषणीयता में व्याघात उत्पन्न नहीं होता और इसीलिए वह सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करती है। किंतु यह एकरूपता तभी संभव होती है जब भाषा के रूप में स्थिरिता पाई जाए और उसमें भाषायी परिवर्तन कम से कम हों। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो जीवंत भाषा का अपरिवर्तनशील रहना संभव नहीं है।

वास्तव में संरचनात्मक एकरूपता और प्रयोगात्मक बहुरूपता एक दूसरे की विपरीत स्थितियां हैं और वे दोनों एक दूसरे के लिए बाधा उत्पन्न करतीं हैं। संरचनात्मक एकरूपता या स्थिरता भाषा के व्यवहार क्षेत्र को सीमित करने का प्रयास करती है और विस्तृत व्यवहार क्षेत्र संरचना की एकरूपता को खंडित करने में अग्रसर रहता है, हमारे सामने उदाहरण है संस्कृत का। संस्कृत की संरचनात्मक एकरूपता को लाने से उसकी जीवंतता समाप्त हो गई और उसका व्यवहार क्षेत्र सीमित हो गया। इधर हिन्दी का व्यवहार क्षेत्र व्यापक हो जाने से इसके कई रूप उभरने लगे हैं। कहीं बंबईया हिन्दी के दर्शन होते हैं, तो कही कलकतिया हिन्दी के। कहीं पंजाबी से प्रभावित हिन्दी दिखाई देती है तो कहीं भोजपुरी से। इसी दृष्टि में ये दोनों स्थितियां भाषा को मानक रूप देने में बाधा उत्पन्न करती हैं। अत: मानकीकरण की प्रक्रिया में संरचनात्मक एकरूपता और प्रयोगात्मक बहुरूपता में संतुलन बानए रखना महत्वपूर्ण है। यह तभी संभव है यदि मानक भाषा सतत लचीलेपन और तार्किकता के गुण से युक्त है । इससे वह सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के अनुरूप ढलती चलती है। इस लचीलेपन का आधार बोलचाल की भाषा है बोलचाल की भाषा पर आधारित मानक भाषा क्षेत्रीय बोली से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाती। इसके अतिरिक्त वह औद्योगिक, बहुधर्मी, बहुभाषिक समाज के भीतर विषय एवं शैली की दृष्टि से आदान प्रदान करती है जिससे उसकी स्थिरता का टिक पाना संभव नहीं है। इसलिए इसकी इसकी स्थापना में लचीलेपन की अपेक्षा रहती है ताकि वह 'परस्पर अनुवादकता' की स्थिति में आ जाए ।

उपर्युक्त चर्चा से हम देखते हैं कि भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया में चार बातें मुख्य रूप से रहती हैं–

(1) चयन,
(2) संसक्ति,
(3) प्रयोग और
(4) स्वीकृति।

विभिन्न भाषा रूपों और बोलियों में किसी एक का चयन किया जाता है। इस चयन के कई कारण होते हैं – शासन का बल, धर्म का आश्रय, साहित्य की श्रेष्ठता आदि। इस चयन में किसी बात का आग्रह या आधार नहीं होता कि किस-किस भाषा रूप का चयन किया जाए। फिनलैंड में मानक भाषा का आधार वहां की बोलचाल की बाली को अपनाया गया तो इजरायल में क्लासिकल भाषा हिब्रू को। हिन्दी क्षेत्र में मध्यकाल में ब्रज अवधी धर्म और साहित्य की भाषा थी किंतु आधुनिक काल में खड़ी बोली का चयन किया गया। इसी खड़ी बोली में साहित्य रचना होने से उसके रूप स्थिर होने लगे और वह मानक भाषा के रूप में प्रस्फुटित होकर अपने क्षेत्र से आगे बढ़कर अक्षेत्रीय होने लगी। बाद में इसे शासन का बल मिला और आज की मानक भाषा जनसाधरण की भाषा बन गई। इस चयन में अन्य बोलियों को अपना बलिदान करना पड़ता है और वे बेचारी अपने क्षेत्र तक सीमित रह जाती हैं। किंतु मानक भाषा को उनका सहयोग लेकर चलना पड़ता है ताकि उसका शब्द भंडार समृद्ध हो जाए और वह अक्षेत्रीय होकर राष्ट्रभाषा के पद तक पहुंच पाने की स्थिति में आ जाए।

संरचनात्मक संसक्ति में लेखन का महत्वपूर्ण कार्य होता है। यह न केवल भाषा में स्थायित्व लाता है वरन् व्याकरणिक रूपों में एकरूपता बनाए रखने में सहायता भी करता है। विभिन्न प्रदेशों एवं क्षेत्रों में बोलियों के प्रभाव से भाषा का उच्चरित रूप समान नहीं हो पाता, अत: लिखित रूप उस विविधता को मिटाने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त लिखित रूप व्याकरण से अनुशासित होने के कारण भाषा की संरचना में एकरूपता बनाए रखता है। इंग्लैंड, अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, भारत आदि देशों में अंग्रेजी के उच्चरण और व्याकरणिक रूपों में भिन्नता मिल सकती है, किंतु उसके लिखित रूप में एकरूपता काफी हद तक दिखाई देती है।

जब भाषा का मानक रूप विकास की स्थिति में आ जाता है तो उसके प्रयोग का व्यवहार क्षेत्र में विस्तार होने लगता है। वह विज्ञान, साहित्य, शिक्षा,

शासन आदि विभिन्न प्रयोजनों में प्रयुक्त होने लगता है। वह लोक साहित्य के ऊपर उठकर वैज्ञानिक एवं तकनीकि साहित्य का भी उसमें सृजन होने लगता है और यहां तक कि मौलिक साहित्य का भी उसमें सृजन होने लगता है। अन्य भाषाओं के साहित्य का अनुवाद होना भी शुरू हो जाता है। हिन्दी का मानक रूप इस समय इसी स्थिति में आ गया है।

मानक भाषा के विभिन्न प्रयोजनों एवं व्यवहार क्षेत्रों में प्रयुक्त होने से समाज उस रूप को स्वीकार कर लेता है। इस भाषा की विभिन्न बोलियां बोलने वाले अन्य भाषाभाषियों के साथ इसी रूप का प्रयोग करते हैं और आपस में इस रूप का प्रयोग करते हुए प्रतिष्ठा का अनुभव करते हैं। साहित्य, कार्यालय, विधि, विज्ञान, चिकित्सा, पत्रकारिता, वाणिज्य आदि विभिन्न प्रयोजनों में समाज उसका प्रयोग करने लगता है इससे उसकी अभिव्यंजना शक्ति में भी वृद्धि होती है। इसके स्वीकार हो जाने से इसे शिक्षा के माध्यम रूप में अपना लिया जाता है।

मानक भाषा में मानकीकरण की प्रक्रिया केवल कार्य नहीं करती वरन् उसमें ऐतिहासिकता, जीवंतता और स्वायत्ता के लक्षण भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ऐतिहासिकता से अभिप्राय है कि यह भाषा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा से अर्जित संस्कार के रूप में आती है। इसके निर्माण और विकास में कोई व्यक्ति विशेष नहीं होता वरन् पीढ़ी दर पीढ़ी यह सहज और स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती आती है। इसमें इसकी अपनी लिखित परंपरा, अपनाजातीय इतिहास और अर्जित संस्कर होता है। भाषा तभी जीवंत होती है जब उसके प्रयोग करने वाले हों और अपनी भाषा के रूप में ग्रहण करते हों। जिस भाषा का अपना समाज नहीं होता और समाज उसे अपनी भाषा स्वीकार नहीं करता तो वह भाषा जीवित नहीं रह पाती। उसका समाज ही उसे जीवित रख सकता है और उसके जीवित रहने में उसका विकास सहज रूप से होता है। इसलिए मानक भाषा में जीवंतता का होना आवश्यक है। यदि भाषा में मानकता, ऐतिहासिकता और जीवंतता होती है तो वह अपने आप विशिष्ट और स्वतंत्र हो जाती है। वह किसी अन्य भाषा व्यवस्था पर आधारित नहीं रहती वरन् अपनी स्वायत्त सत्ता बनाये रखती है। हम देखते हैं कि यदि हिन्दी का मानक रूप मूलतः खड़ी बोली पर आधारित है, किंतु वह अपनी भाषिक व्यवस्था और प्रकार्य के संदर्भ में अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व बनाए हुए हैं। वास्तव में बोली में ऐतिहासिकता और जीवंतता तो होती है, किंतु मानकता और स्वायत्ता नहीं होती और क्लासिकल भाषा में मानकता, ऐतिहासिकता और स्वायत्ता होती है, किंतु जीवंतता नहीं होती है। बोलचाल की भाषा में ऐतिहासिकता, जीवंतता

और स्वायत्ता होती है और जब उसका मानकीकरण हो जाता है तो वह मानक भाषा के पद पर अभिषिक्त हो जाती है।

मानक भाषा के तत्त्व

1. ऐतिहासिकता,
2. स्वायत्तता,
3. केन्द्रोन्मुखता,
4. बहुसंख्यक प्रयोगशीलता,
5. सहजताध्बोधगम्यता,
6. व्याकरणिक साम्यता,
7. सर्वविध एकरूपता।

मानकीकरण का एक प्रमुख दोष यह है कि मानकीकरण करने से भाषा में स्थिरता आने लगती है जिससे भाषा की गति अवरुद्ध हो जाती है।

ऐतिहासिकता

'ऐतिहासिकता' का अर्थ है, भाषा की प्राचीन परम्परा और काल की दृष्टि से उसका विकास। अधिकांश भाषाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक फिर दूसरी से तीसरी तक और ऐसे ही आगे पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती हैं। यही उनकी ऐतिहासिकता है। यह उल्लेख है कि एस्पिरैंतो, इदो, लौंग्लन जैसी कृतिम भाषाओं में इस ऐतिहासिकता का अभाव होता है।

मानकीकरण

अर्थात भाषा को एक मानक रूप देना। ऐसा रूप जिसमें प्राप्त सभी विकल्पों में एक को मानक मान लिया गया हो तथा जिस भाषा रूप को उस भाषा के सारे बोलने वाले मानक स्वीकार करते हों। यह बात ध्यान देने की है कि सारे विश्व की अधिकांश समुन्नत भाषाओं का मानक रूप होता है, जबकि अवभाषा (वर्नाक्यूलर), बोली क्रियोल आदि का मानक रूप नहीं होता। मानकीकरण के कारण ही कोई भाषा अपने पूरे क्षेत्र में शब्दावली तथा व्याकरण की दृष्टि से समरुप होती है, इसीलिए वह सभी लोगों के लिए बोधगम्य भी होती है। साथ ही वह सभी लोगों द्वारा मान्य होती है अत: अन्य भाषा रूपों की तुलना में वह अधिक प्रतिष्ठित भी होती है।

जीवंतता

अर्थात भाषा का प्रयोक्ता कोई समाज हो जिसमें बोलचाल तथा लेखन आदि में उस भाषा का प्रयोग होता हो। जीवंत भाषा में निरंतर विकास होता रहता है। विश्व में बोली जाने वाली सभी भाषाओं और बोलियों में जीवंतता मिलती है। हाँ, संस्कृत, लैटिन, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश जैसी पुरानी या क्लासिक भाषाएँ आज सामान्य प्रयोग में नहीं हैं, इसीलिए उनमें जीवंतता नहीं मानी जा सकती।

स्वायत्तता

स्वायत्तता से आशय है अपने अस्तित्त्व के लिए किसी भाषा का किसी अन्य भाषा पर निर्भर न होना। सामान्यत: भाषाएँ स्वायत्त होती हैं, किंतु बोलियाँ स्वायत्त नहीं होतीं, वे अपने अस्तित्त्व के लिए भाषा पर निर्भर करती हैं। इसीलिए हमें प्रत्येक बोली के लिए यह कहना पड़ता है कि वह बोली अमुक भाषा की है, किंतु भाषा के संबंध में ऐसी कोई बाध्यता नहीं है।

इन आधारों को लेकर हम विचार करें तो क्लासिक भाषा में ऐतिहासिकता होती है, मानकता होती है, किंतु जीवंतता नहीं होती, बोली में मानकता तथा स्वायत्तता नहीं होती, अवभाषा (वर्नाक्यूलर) में मानकता नहीं होती कृतिम भाषा में केवल मानकता होती है, पिजिन में मात्र ऐतिहासिकता होती है, क्रियोल में अन्य सभी होती है, किंतु मानकता नहीं होती। मानक भाषा में ये चारो ही विशेषताएँ होती हैं। वस्तुत: स्टिवर्ट की ये बातें यह तो बतलाती हैं कि मानक भाषा में उपर्युक्त चार विशेषताएँ होती हैं, 'किंतु मानक भाषा में मानकता भी होती है' का तब तक कोई अर्थ नहीं, जब तक कि हम यह न बताएँ कि मानकता क्या है।

मानकता में निम्नांकित बातें आती हैं–

(1) मानकता का आधार कोई व्याकरणिक या भाषावैज्ञानिक तथ्य अथवा नियम नहीं होते। इसका आधार मूलत: सामाजिक स्वीकृति है। समाज विशेष के लोग भाषा के जिस रूप को अपनी मानक भाषा मान लें, उनके लिए वही मानक हो जाती है।

(2) इस तरह भाषा की मानकता का प्रश्न तत्त्वत: भाषाविज्ञान का न होकर समाज-भाषाविज्ञान का है। भाषाविज्ञान भाषा की संरचना का अध्ययन करता है और संरचना मानक भाषा की भी होती है और अमानक भाषा की भी। उसका इससे कोई संबंध नहीं कि समाज किसे शुद्ध मानता है

और किसे नहीं। इस तरह मानक भाषा की संकल्पना को संरचनात्मक न कहकर सामाजिक कहना उपयुक्त होगा।

(3) जब हम समाज विशेष से किसी भाषा-रूप के मानक माने जाने की बात करते हैं, तो समाज से आशय होता है सुशिक्षित और शिष्ट लोगों का वह समाज जो पूरे भाषा-भाषी क्षेत्र में प्रभावशाली एवं महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वस्तुत: उस भाषा-रूप की प्रतिष्ठा उसके उन महत्त्वपूर्ण प्रयोक्ताओं पर ही आधारित होती है। दूसरे शब्दों में उस भाषा के बोलने वालों में यही वर्ग एक प्रकार से मानक वर्ग होता है।

(4) समाज द्वारा मान्य होने के कारण भाषा के अन्य प्रकारों की तुलना में मानक भाषा की प्रतिष्ठा होती है। इस तरह मानक भाषा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है।

(5) सामान्यत: मानक भाषा मूलत: किसी देश की राजधानी या अन्य दृष्टियों से किसी महत्त्वपूर्ण केन्द्र की बोली होती है, जिसे राजनीतिक अथवा धार्मिक अथवा सामाजिक कारणों से प्रतिष्ठा और स्वीकृति प्राप्त हो जाती है।

(6) बोली का प्रयोग अपने क्षेत्र तक सीमित रहता है, किंतु मानक भाषा का क्षेत्र अपने मूल क्षेत्र के भी बाहर अन्य बोली-क्षेत्रों में होता है।

(7) यदि किसी भाषा का मानक रूप है तो साहित्य में, शिक्षा के माध्यम के रूप में, अंत:क्षेत्रीय प्रयोग में तथा सभी औपरचारिक परिस्थितियों में उस मानक रूप का ही प्रयोग होता है, अमानक रूप या बोली आदि का नहीं।

(8) किसी भाषा के बोलने वाले अन्य भाषा-भाषियों के साथ प्राय: उस भाषा के मानक रूप का ही प्रयोग करते हैं, किसी बोली का अथवा अमानक रूप का नहीं।

मानक हिंदी भाषा की उपयोगिता तथा महत्व

भारत एक बहुभाषी देश है जहां न केवल कई भाषाएं बोली जाती हैं वरन एक ही भाषाओं की भी कई उपभाषाएं भी प्रचलन में हैं। उसी प्रकार हिन्दी के भी अनेक रूप प्रचलन में है जैसे - भोजपुरी हिन्दी, बघेली हिन्दी, अवधी, हिन्दी, निमाड़ी, मालवी आदि। ऐसे में यदि कोई अहिन्दी भाषी व्यक्ति हिन्दी सीखना चाहे तो उसके समक्ष यह समस्या आती है कि वह कौन सी हिन्दी सीखें? ताकि व्यवहार में उसका काम आसान हो सके, उसी के साथ, सरकारी

कामकाज, आकाशवाणी, दूरदर्शन राष्ट्रीय स्तर पर समाचार पत्र, महत्वपूर्ण सूचनाओं का आदान-प्रदान फिल्में, साहित्य आदि के लिए भी विकट समस्या उपस्थित होती है कि आखिर कौन सी हिन्दी को अपनाया जाय? जिसके निराकरण का एक मात्र हल है (निवारण) कि हिन्दी के इन विभिन्न रूपों के बीच कोई ऐसा रूप होना चाहिए जो सर्व व्यापक, सर्व मान्य हो, हिन्दी के सभी विद्वानों द्वारा प्रयुक्त, व्याकरण दोषों से मुक्त, अधिकांश लोगों द्वारा समझी, लिखी व पढ़ी जाने वाली भाषा हो ताकि ज्यादा से ज्यादा व्यावहारिक रूप में उसका प्रयोग किया जा सकेा वास्तव में शिक्षित वर्ग अपने, सामाजिक, साहित्यिक, व्यावहारिक वैज्ञान तथा प्रशासकीय कार्यों में जिस भाषा का प्रयोग करता है। भाषा मानक भाषा कहलाती है। मानक भाषा अपने राज्य/राष्ट्र का सम्पर्क भाषा भी होती है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि -

मानक हिंदी भाषा उपयोगिता और महत्व, हिन्दी का मानक स्वरूप, मानक भाषा की उपयोगिता, हिंदी शिक्षण, सीटीईटी हिंदी नोट्स, Best Free CTET Exam Notes, Teaching Of HINDI Notes, CTET 2015 Exam Notes, TEACHING OF HINDI Study Material in hindi medium] CTET PDF NOTES DOWNLOAD] HINDI PEDAGOGY Note,

हिन्दी का सर्वमान्य, सर्वस्वीकृति, सर्वप्रतिष्ठित रूप ही मानक हिंदी भाषा है। विद्वानों ने मानक भाषा के चार प्रमुख तत्त्व बताएँ हैं:-

1. **ऐतिहासिकता** - मानक भाषा का गौरवमय इतिहास तथा विपुल साहित्य होना चाहिए।

2. **मानकीकरण** - भाषा का कोई सुनिश्चित और सुनिर्धारित रूप होना चाहिए।

3. **जीवतंता** - भाषा साहित्य के साथ साथ विज्ञान, दर्शन आदि क्षेत्रों में प्रयुक्त की गई हो तथा नवाचार में पूर्ण रूप से सक्षम हो।

4. **स्वायतता** - भाषा किसी अन्य भाषा पर आश्रित न होकर अपनी स्वतंत्र लिपि, शब्दावली व व्याकरण परखती है।

वर्तमान में मेरठ, सहारनपुर तथा दिल्ली के पास बोली जाने वाली बोली भाषा का परिनिष्ठित रूप है जिसे खड़ी बोली कहा जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी को मानक भाषा बनाने हेतु काफी प्रयास किया गया और आज हिन्दी का यही रूप प्रचलन में है।

1. राज-काज की भाषा - अनेक रूप में मानक भाषा, बेहद कारगर सिद्ध होती है विभिन्न कार्यालयों, स्कूलों, महाविद्यालयों में यह भाषा संप्रेषण की दृष्टि से काफी सुविधा जनक होती है।

2. ज्ञान-विज्ञान की भाषा - धर्म, दर्शन और विज्ञान आदि के क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग, भाषा की उपयोगिता को बढ़ाता है।

3. साहित्य व संस्कृति की भाषा - साहित्य लेखन तथा विभिन्न औपचारिक अवसरों पर इसी भाषा पर प्रयोग किया जाता है।

4. मनोरंजन के क्षेत्र में - आकाशवाणी, दूरदर्शन, सिनेमा, चलचित्र समाचारपत्र व पत्रिकाओं में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है।

5. शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता - विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अध्यापन, परियोजना कार्य तथा शोध और अनुसंधान हेतु इस भाषा का प्रयोग किया जाता है।

6. अनुवाद की भाषा के रूप में - अच्छे साहित्य के अनुवाद हेतु हिन्दी मानक भाषा का प्रयोग किया जाता है ताकि अधिक से भाषा के उत्कृष्ट साहित्य को जन जन तक पहुंचाया जा सके।

7. कानून व चिकित्सा तकनीकी के क्षेत्र में - प्रत्येक क्षेत्र की अपनी शब्दावली होती है जैसे विज्ञान, कानून, तकनीकी आदि इन शब्दावलियों के मानक रूप तैयार किए जाते हैं, जिससे इस भाषा को बोधगम्य बनाया जा सकता है।

8. सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक - मानक होने के कारण सभी इसका प्रयोग करते हैं।

9. एकता के सूत्र में बाँधती हैं - राजकाज, शिक्षा, संपर्क की एक मानक भाषा होने से ये लोगों को एक सूत्र में बांधती है।

10. शिष्ट समाज की भाषा - क्षेत्र से बाहर प्रयुक्त होने वाली भाषा में मानक भाषा का अपना महत्व है। इसके माध्यम से पूरे जनसमुदाय से संपर्क स्थापित हो सकता है।

महत्व - मानक हिन्दी भाषा में मानक शब्दों का प्रयोग होने तथा व्याकरण सम्मत भाषा होने से यह भाषा उच्चारण व लेखन दोनों में ही अशुद्धियों से मुक्त होती है तथा समस्त प्रतिष्ठित व औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग किया जाता है, शासन की अधिकृत भाषा होने से संपूर्ण प्रशासन प्रक्रिया में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसका गौरवशाली इतिहास होने से इसमें विपुल

साहित्य उपलब्ध होता है। भाषा का स्वरूप सुनिश्चित और सुनिर्धारित होने से इस भाषा को बोलने, सीखने व समझने में काफी सुविधा होती है। मानक भाषा का एक गुण है कि इसमें गतिशीलता बनी रहती है। शिक्षा कानून, विज्ञान, चिकित्सा, अनुसंधान के क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग न केवल प्रक्रिया को सरस बनाता है वरन उसे सीखने, में भी सहायक होता है। आज विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद मानक भाषा का उपलब्ध कराया जा रहा है ताकि अधिक से अधिक लोग उस साहित्य से अवगत हो सकें। इसके साथ ही अपनी स्वतंत्र लिपि व शब्दावली तथा व्याकरण होने से इसमें संदेह की संभावना भी नहीं रहती। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि –

किसी भी क्षेत्र प्रदेश में शिक्षा, तकनीकी, कानून, औपचारिक स्थितियों, लेखन, प्रशासन, संबंधी गतिविधियों तथा शिष्ट समाज में प्रयुक्त करने हेतु मानक भाषा का महत्वपूर्ण स्थान हैं। यह न केवल सुसंस्कृत व साधुभाषा है बल्कि हमारी संप्रेषण क्षमता को भी बढ़ाती है।

महत्त्वपूर्ण कदम

राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' ने क, ख, ग, ज, फ इन पाँच अरबी–फारसी ध्वनियों के लिए चिह्नों के नीचे नुक्ता लगाने का रिवाज आरम्भ किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'हरिश्चन्द्र मैंगजीन' के जरिये खड़ी बोली को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने प्रचलित हिन्दी को 'ठेठ हिन्दी' की संज्ञा दी और ठेठ हिन्दी का प्रचार किया। उन्होंने खड़ी बोली को पद्य की भाषा बनाने के लिए आंदोलन चलाया।

हिन्दी भाषा के मानकीकरण की दृष्टि से द्विवेदी युग (1900–20) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण युग था। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली के मानकीकरण का सवाल सक्रिय रूप से और एक आंदोलन के रूप में उठाया। युग निर्माता द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' पत्रिका के जरिये खड़ी बोली हिन्दी के प्रत्येक अंग को गढ़ने–सँवारने का कार्य खुद तो बहुत लगन से किया ही, साथ ही अन्य भाषादृसाधकों को भी इस कार्य की ओर प्रवृत्त किया। द्विवेदीजी की प्रेरणा से कामता प्रसाद गुरु ने 'हिन्दी व्याकरण' के नाम से एक वृहद व्याकरण लिखा।

छायावादी युग (1918-1937) व छायावादोत्तर युग (1936 के बाद) में हिन्दी के मानकीकरण की दिशा में कोई आंदोलनात्मक प्रयास तो नहीं हुआ, किन्तु भाषा का मानक रूप अपने आप स्पष्ट होता चला गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद (1947 के बाद) हिन्दी के मानकीकरण पर नये सिरे से विचार-विमर्श शुरू हुआ, क्योंकि संविधान ने इसे राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया, जिससे हिन्दी पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ा। इस दिशा में दो संस्थाओं का विशेष योगदान रहा-इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के माध्यम से 'भारतीय हिन्दी परिषद' का तथा शिक्षा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का।

संयुक्त वर्ण

खड़ी पाई वाले व्यंजन

खड़ी पाई वाले व्यंजनों के संयुक्त रूप परंपरागत तरीके से खड़ी पाई को हटाकर ही बनाए जाएँ। यथा:-

ख्याति, लग्न, विन
कच्चा, छज्जा
नगण्य
कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास
प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य
शय्या
उल्लेख
व्यास
श्लोक
राष्ट्रीय
स्वीकृति
यक्ष्मा
त्र्यंबक

अन्य व्यंजन

1. क और फफ के संयुक्ताक्षर संयुक्त, पक्का, दफ्तर आदि की तरह बनाए जाएँ, न कि संयुक्त, (पक्का लिखने में क के नीचे क नहीं) की तरह।

2. छ, ट, ड, ढ, द और ह के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। यथा1

   वांग्मय, लट्ट्, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा आदि। (वांग्मय, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा नहीं)
3. संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रूप यथावत् रहेंगे। यथा-प्रकार, धर्म, राष्ट्र।
4. श्र का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। इसे ... (इसे मैं टाइप नहीं कर पा रहा हूँ। क्र में क के बदले 'ा लिखा मान लें) के रूप में नहीं लिखा जाएगा। त्र के संयुक्त रूप के लिए पहले त्र और ... (इसे मैं टाइप नहीं कर पा रहा हूँ। क्र में क के बदले त लिखा मान लें) दोनों रूपों में से किसी एक के प्रयोग की छूट दी गई थी। परंतु अब इसका परंपरागत रूप त्र ही मानक माना जाए। श्र और त्र के अतिरिक्त अन्य व्यंजन्र के संयुक्ताक्षर तीन के नियमानुसार बनेंगे। जैसे – क्र, प्र, ब्र, स्र, ह्र आदि।
5. हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ इ की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व। यथा– कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित आदि (कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित नहीं)।

टिप्पणी : संस्कृत भाषा के मूल 'लोकों को उद्धृत करते समय संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे। जैसे:- संयुक्त, चिह्न, विद्या, विद्वान, वृद्ध, द्वितीय, बुद्धि आदि। किंतु यदि इन्हें भी उपर्युक्त नियमों के अनुसार ही लिखा जाए तो कोई आपत्ति नहीं होगी।

कारक चिह्न

1. हिंदी के कारक चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रतिपादिक से पृथक् लिखे जाएँ। जैसे– राम ने, राम को, राम से, स्त्री का, स्त्री से, सेवा में आदि। सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रतिपादिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ। जैस– तूने, आपने, तुमसे, उसने, उसको, उससे, उसपर आदि (मेरे को, मेरे से आदि रूप व्याकरण सम्मत नहीं हैं)।
2. सर्वनाम के साथ यदि दो कारक चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक् लिखा जाए। जैसे– उसके लिए, इसमें से।

3. सर्वनाम और कारक चिह्न के बीच 'ही', 'तक' आदि का निपात हो तो कारक चिह्न को पृथक् लिखा जाए। जैसे– आप ही के लिए, मुझ तक को।

क्रिया पद

संयुक्त क्रिया पदों में सभी अंगीभूत क्रियाएँ पृथक्-पृथक् लिखी जाएँ। जैसे– पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, कर सकता है, किया करता था, पढ़ा करता था, खेला करेगा, घूमता रहेगा, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि।

हाइफन (योजक चिह्न)

1. हाइफन का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है।
2. द्वन्द्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए। जैसे– राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती संवाद, देख-रेख, चाल-चलन, हँसी-मजाक, लेन-देन, पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, खेलना-कूदना आदि।
3. सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफन रखा जाए। जैसे– तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे।
4. तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं। जैसे– भू-तत्त्व। सामान्यतः तत्पुरुष समास में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे– रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

   इसी तरह यदि 'अ-निख' (बिना नख का) समस्त पद में हाइफन न लगाया जाए तो उसे 'अनख' पढ़े जाने से 'क्रोध' का अर्थ भी निकल सकता है। अ-नति (नम्रता का अभाव) : अनति (थोड़ा), अ-परस (जिसे किसी ने न छुआ हो) : अपरस (एक चर्म रोग), भू-तत्त्व (पृथ्वी-तत्त्व) : भूतत्त्व (भूत होने का भाव) आदि समस्त पदों की भी यही स्थिति है। ये सभी युग्म वर्तनी और अर्थ दोनों दृष्टियों से भिन्न-भिन्न 'शब्द हैं।
5. कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे– द्वि-अक्षर (द्व्यक्षर), द्वि-अर्थक (द्व्यर्थक) आदि।

अव्यय

1. 'तक', 'साथ' आदि अव्यय सदा पृथक् लिखे जाएँ। जैसे– यहाँ तक, आपके साथ।
2. आह, ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, जब, तब, कब, यहाँ, वहाँ, कहाँ, सदा, क्या, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, मगर, लेकिन, चाहे, या, अथवा, तथा, यथा और आदि अनेक प्रकार के भावों का बोध कराने वाले अव्यय हैं। कुछ अव्ययों के आगे कारक चिह्न भी आते हैं। जैसे– अब से, तब से, यहाँ से, वहाँ से, सदा से आदि। नियम के अनुसार अव्यय सदा पृथक् लिखे जाने चाहिए। जैसे– आप ही के लिए, मुझ तक को, आपके साथ, गज भर कपड़ा, देश भर, रात भर, दिन भर, वह इतना भर कर दे, मुझे जाने तो दो, काम भी नहीं बना, पचास रुपए मात्रा आदि।
3. सम्मानार्थक 'श्री' और 'जी' अव्यय भी पृथक् लिखे जाएँ। जैसे श्री श्रीराम, कन्हैयालाल जी, महात्मा जी आदि (यदि श्री, जी आदि व्यक्तिवाची संज्ञा के ही भाग हों तो मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे– श्रीराम, रामजी लाल, सोमयाजी आदि)।
4. समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय जोड़कर लिखे जाएँ (यानी पृथक् नहीं लिखे जाएँ)। जैसे - प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। यह सर्वविदित नियम है कि समास न होने पर समस्त पद एक माना जाता है। अतः उसे व्यस्त रूप में न लिखकर एक साथ लिखना ही संगत है। 'दस रुपए मात्र', 'मात्र दो व्यक्ति' में पदबंध की रचना है। यहाँ मात्र अलग से लिखा जाए (यानी मिलाकर नहीं लिखें)।

अनुस्वार (शिरोबिंदु/बिंदी) तथा अनुनासिकता चिह्न (चंद्रबिंदु)

अनुस्वार व्यंजन है और अनुनासिकता स्वर का नासिक्य विकार। हिंदी में ये दोनों अर्थभेदक भी हैं। अतः हिंदी में अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता चिह्न (ँ) दोनों ही प्रचलित रहेंगे।

अनुस्वार

संस्कृत शब्दों का अनुस्वार अन्यवर्गीय वर्णों से पहले यथावत् रहेगा। जैसे - संयोग, संरक्षण, संलग्न, संवाद, कंस, हिंस्र आदि।

संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण (पंचमाक्षर) के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे - पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कंठ, ठंडा, संत, संध्या, मंदिर, संपादक, संबंध आदि (पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कण्ठ, ठण्डा, सन्त, मन्दिर, सन्ध्या, सम्पादक, सम्बन्ध वाले रूप नहीं)। बंधनी में रखे हुए रूप संस्कृत के उद्धरणों में ही मान्य होंगे। हिंदी में बिंदी (अनुस्वार) का प्रयोग करना ही उचित होगा।

3. यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे– वांग्मय, अन्य, चिन्मय, उन्मुख आदि (वांग्मय, अंय, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राह्य नहीं होंगे)।

पंचम वर्ण यदि द्वित्व रूप में (दुबारा) आए तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे - अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि (अंन, संमेलन, संमति रूप ग्राह्य नहीं होंगे)।

अंग्रेजी, उर्दू से गृहीत शब्दों में आधे वर्ण या अनुस्वार के भ्रम को दूर करने के लिए नासिक्य व्यंजन को पूरा लिखना अच्छा रहेगा। जैसे– लिमका, तनखाह, तिनका, तमगा, कमसिन आदि।

संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म् का सूचक है। जैसे - अहं (अहम्), एवं (एवम्), परं (परम्), शिवं (शिवम्)।

अनुनासिकता (चंद्रबिंदु)

हिंदी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।

अनुनासिकता व्यंजन नहीं है, स्वरों का ध्वनिगुण है। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में नाक से भी हवा निकलती है। जैसे– आँ, ऊँ, एँ, माँ, हूँ, आएँ।

चंद्रबिंदु के बिना प्रायः अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है। जैसे– हंस : हँस, अंगना : अँगना, स्वांग (स्व़ंग) स्वाँग आदि में। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। किंतु जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का (अनुस्वार चिहन का) प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट रहेगी। जैसे– नहीं, में, मैं आदि। कविता आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का यथास्थान अवश्य प्रयोग किया

जाए। इसी प्रकार छोटे बच्चों की प्रवेशिकाओं में जहाँ चंद्रबिंदु का उच्चारण अभीष्ट हो, वहाँ मोटे अक्षरों में उसका यथास्थान सर्वत्र प्रयोग किया जाए। जैसे– कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, में, में, नही आदि।

विसर्ग (:)

1. संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए। जैसे– 'दु:खानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे– 'दुख-सुख के साथी'।
2. तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। यथा रूदृ अत:, पुन:, स्वत:, प्राय:, पूर्णत:, मूलत:, अंतत:, वस्तुत:, क्रमश: आदि।
3. 'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है, अत: उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी हालत में न किया जाए (अत:, पुन: आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिखना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा)।
4. दु:साहस/दुस्साहस, नि:शब्द/निश्शब्द के उभय रूप मान्य होंगे। इनमें द्वित्व वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।
   निस्तेज, निर्वचन, नि:चल आदि शब्दों में विसर्ग वाला रूप (नि:तेज, नि:वचन, नि:चल) न लिखा जाए।
   अंत:करण, अंत:पुर, प्रात:काल आदि शब्द विसर्ग के साथ ही लिखे जाएँ।
5. तद्भव/देशी शब्दों में विसर्ग का प्रयोग न किया जाए। इस आधार पर छ: लिखना गलत होगा। छह लिखना ही ठीक होगा।
6. प्रायद्वीप, समाप्तप्राय आदि शब्दों में तत्सम रूप में भी विसर्ग नहीं है।
7. विसर्ग को वर्ण के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम:) शब्द से कुछ दूरी पर हो। जैसे– अत:, यों है:

हल् चिह्न (्)

1. (्) को हल् चिह्न कहा जाए न कि हलंत। व्यंजन के नीचे लगा हल् चिह्न उस व्यंजन के स्वर रहित होने की सूचना देता है, यानी वह व्यंजन विशुद्ध रूप से व्यंजन है। इस तरह से 'जगत्' हलंत शब्द कहा जाएगा क्योंकि यह शब्द व्यंजनांत है, स्वरांत नहीं।

2. संयुक्ताक्षर बनाने के नियम 2.1.2.2 के अनुसार ङ्, छ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, द्, ह्, में हल् चिह्न का ही प्रयोग होगा। जैसे – चिह्न, बुड्ढा, विद्वान आदि में।
3. तत्सम शब्दों का प्रयोग वांछनीय हो तब हलंत रूपों का ही प्रयोग किया जाए, विशेष रूप से तब जब उनसे समस्त पद या व्युत्पन्न शब्द बनते हों। यथा प्राक्– (प्रागैतिहासिक), वाक्-(वाग्देवी), सत्-(सत्साहित्य), भगवन्-(भगवद्भक्ति), साक्षात्-(साक्षात्कार), जगत्-(जगन्नाथ), तेजस्-(तेजस्वी), विद्युत्-(विद्युल्लता) आदि। तत्सम संबोधन में हे राजन्, हे भगवन् रूप ही स्वीकृत होंगे। हिंदी शैली में हे राजा, हे भगवान लिखे जाएँ। जिन शब्दों में हल् चिह्न लुप्त हो चुका हो, उनमें उसे फिर से लगाने का प्रयत्न न किया जाए। जैसे - महान, विद्वान आदि, क्योंकि हिंदी में अब 'महान' से 'महानता' और 'विद्वानों' जैसे –प प्रचलित हो चुके हैं।
4. व्याकरण ग्रंथों में व्यंजन संधि समझाते हुए केवल उतने ही शब्द दिए जाएँ, जो शब्द रचना को समझने के लिए आवश्यक हों (उत्. नयन = उन्नयन, उत्. लास = उल्लास) या अर्थ की दृष्टि से उपयोगी हों (जगदीश, जगन्माता, जगज्जननी)।
5. हिंदी में हृदयंगम (हृदयम्. गम), उद्धरण (उत्द्. हरण), संचित (सम्. चित्) आदि शब्दों का संधि-विच्छेद समझाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इसी तरह 'साक्षात्कार', 'जगदीश', 'षट्कोश' जैसे शब्दों के अर्थ को समझाने की आवश्यकता हो तभी उनकी संधि का हवाला दिया जाए। हिंदी में इन्हें स्वतंत्र शब्दों के रूप में ग्रहण करना ही अच्छा होगा।

स्वन परिवर्तन

1. संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए। अतः 'ब्रह्मा' को 'ब्रम्हा', 'चिह्न' को 'चिन्ह', 'उऋण' को 'उरिण' में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राह्य नहीं हैं। इनके स्थान पर क्रमशः गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए।
2. जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है। जैसे – अर्द्य-अर्घ, तत्त्व-तत्त्व आदि।

'ऐ', 'औ' का प्रयोग

1. हिंदी में ऐ (ै), औ (ौ) का प्रयोग दो प्रकार के उच्चारण को व्यक्त करने के लिए होता है। पहले प्रकार का उच्चारण 'है', 'और' आदि में मूल स्वरों की तरह होने लगा है, जबकि दूसरे प्रकार का उच्चारण 'गवैया', 'कौवा' आदि शब्दों में संध्यक्षरों के रूप में आज भी सुरक्षित है। दोनों ही प्रकार के उच्चारणों को व्यक्त करने के लिए इन्हीं चिह्नों (ऐ,ै, औ, ौ) का प्रयोग किया जाए। 'गवय्या', 'कव्वा' आदि संशोधनों की आवश्यकता नहीं है। अन्य उदाहरण हैं– भैया, सैयद, तैयार, हौवा आदि।
2. दक्षिण के अय्यर, नय्यर, रामय्या आदि व्यक्तिनामों को हिंदी उच्चारण के अनुसार ऐयर, नैयर, रामैया आदि न लिखा जाए, क्योंकि मूलभाषा में इसका उच्चारण भिन्न है।
3. अव्वल, कव्वाल, कव्वाली जैसे शब्द प्रचलित हैं। इन्हें लेखन में यथावत् रखा जाए।
4. संस्कृत के तत्सम शब्द 'शय्या' को 'शैया' न लिखा जाए।

पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर'

1. पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे – मिलाकर, खा-पीकर, रो-रोकर आदि।
2. कर + कर से 'करके' और करा + कर से 'कराके' बनेगा।

वाला

1. क्रिया रूपों में 'करने वाला', 'आने वाला', 'बोलने वाला' आदि को अलग लिखा जाए। जैसे – मैं घर जाने वाला हूँ, जाने वाले लोग।
2. योजक प्रत्यय के रूप में 'घरवाला', 'टोपीवाला' (टोपी बेचने वाला), दिलवाला, दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएँगे।
3. 'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब तो 2.12.2 के अनुसार मिलाकर लिखा जाएगा, अन्यथा अलग से। यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली बात आदि में वाला निर्देशक शब्द है। अतः इसे अलग ही लिखा जाए। इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की, दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी वाला अलग लिखा जाएगा। इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे – गाँववाला - गाँव वाला मकान - village house

श्रुतिमूलक 'य', 'व'

1. जहाँ श्रुतिमूलक य, व का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ न किया जाए, अर्थात् किए : किये, नई : नयी, हुआ : हुवा आदि में से पहले (स्वरात्मक) रूपों का प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए। जैसे– दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिए हुए, नई दिल्ली आदि।
2. जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्त्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे– स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि (अर्थात् यहाँ स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा)।

विदेशी ध्वनियाँ

1. उर्दू शब्द

उर्दू से आए अरबी-फारसी मूलक वे शब्द जो हिंदी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिंदी ध्वनियों में रूपांतर हो चुका है, हिंदी रूप में ही स्वीकार किए जा सकते हैं। जैसे– कलम, किला, दाग आदि (कलम, कफिला, दाग नहीं)। पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो, वहाँ उनके हिंदी में प्रचलित रूपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएँ। जैसे– खाना : ख़ाना, राज : राज़, फन : फ़न आदि।

2. अंग्रेजी शब्द

अंग्रेजी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए (ऑ, ॅ)। जहाँ तक अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से नए शब्द ग्रहण करने और उनके देवनागरी लिप्यंतरण का संबंध है, अगस्त-सितंबर, 1962 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली पर आयोजित भाषाविदों की संगोष्ठी में अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के देवनागरी लिप्यांतरण के संबंध में की गई सिफारिश उल्लेखनीय है। उसमें यह कहा गया है कि अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यांतरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि

उसके वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत-चिह्न लगाने पड़े। अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यांतरण मानक अंग्रेजी उच्चारण के अधिक-से-अधिक निकट होना चाहिए।

3. द्विधा रूप वर्तनी

हिंदी में कुछ प्रचलित शब्द ऐसे हैं जिनकी वर्तनी के दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं। विद्वत्समाज में दोनों रूपों की एक-सी मान्यता है। कुछ उदाहरण हैं रूदृ गरदन/गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ/बर्फ, बिलकुल/बिल्कुल, सरदी/सर्दी, कुरसी/कुर्सी, भरती/भर्ती, फुरसत/फुर्सत, बरदाश्त/बर्दाश्त, वापस/वापिस, आखिरकार/आखीरकार, बरतन/बर्तन, दुबारा/दोबारा, दुकान/दूकान, बीमारी/बिमारी आदि। इन वैकल्पिक रूपों में से पहले वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

अन्य नियम

1. शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।
2. फुलस्टॉप (पूर्ण विराम) को छोड़कर शेष विरामादि चिह्न वही ग्रहण कर लिए गए हैं, जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं। यथा रूदृ - (हाइफन/योजक चिह्न), – (डैश/निर्देशक चिह्न), (कोलन एंड डेश/विवरण चिह्न), (कोमा/अल्पविराम), , (सेमीकोलन/अर्धविराम), : (कोलन/उपविराम), ? (क्वश्चनमार्क/प्रश्न चिह्न), ! (साइन ऑफ इंटेरोगेशन/विस्मयसूचक चिह्न), ‘ (अपोस्ट्राफी/ऊर्ध्व अल्प विराम), ‘ ‘ (डबल इन्वर्टेड कोमाज/उद्धरण चिह्न), ‘ ‘ (सिंगल इन्वर्टेड कोमा/शब्द चिह्न). ( ), ऽ श, ख , (तीनों कोष्ठक), ... (लोप चिह्न), (संक्षेपसूचक चिह्न)(हंसपद)।
3. विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न मान लिया गया है। पर दोनों में यह अंतर रखा गया है कि विसर्ग वर्ण से सटाकर और कोलन शब्द से कुछ दूरी पर रहे।
4. पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का ही प्रयोग किया जाए। वाक्य के अंत में बिंदु (अंग्रेजी फुलस्टॉप) का नहीं।

मानकीकरण संस्थाएं एवं प्रयास

मानक हिन्दी वर्तनी का कार्यक्षेत्र केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का है। इस दिशा में कई दिग्गजों ने अपना योगदान दिया, जिनमें से आचार्य किशोरीदास

वाजपेयी तथा आचार्य रामचंद्र वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी भाषा के संघ और कुछ राज्यों की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप देश के भीतर और बाहर हिन्दी सीखने वालों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो जाने से हिन्दी वर्तनी की मानक पद्धति निर्धारित करना आवश्यक और कालोचित लगा, ताकि हिन्दी शब्दों की वर्तनियों में अधिकाधिक एकरूपता लाई जा सके। तदनुसार, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने 1961 में हिन्दी वर्तनी की मानक पद्धति निर्धारित करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की। इस समिति ने अप्रैल 1962 में अंतिम रिपोर्ट दी। समिति की चार बैठकें हुईं जिनमें गंभीर विचार-विमर्श के बाद वर्तनी के संबंध में एक नियमावली निर्धारित की गई। समिति ने तदनुसार, 1962 में अपनी अंतिम सिफारिशें प्रस्तुत कीं जो सरकार द्वारा अनुमोदित की गईं और अंततः हिन्दी भाषा के मानकीकरण की सरकारी प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ। यह प्रक्रिया तो सतत है, किंतु मुख्य निर्देश तय हो चुके हैं। ये केन्द्रीय हिन्दी संस्थान से एवं भारत के सभी सरकारी कार्यालयों में प्रसारित किए गए हैं। इनका अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु भी संस्थान कार्यरत है।

भारतीय हिन्दी परिषद

भाषा के सर्वांगीण मानकीकरण का प्रश्न सबसे पहले 1950 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने ही उठाया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई, जिसमें डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. ब्रजेश्वर शर्मा, डॉ. माता प्रसाद गुप्त आदि सदस्य थे। धीरेन्द्र वर्मा ने 'देवनागरी लिपि चिह्नों में एकरूपता', हरदेव बाहरी ने 'वर्ण विन्यास की समस्या', ब्रजेश्वर शर्मा ने 'हिन्दी व्याकरण' तथा माता प्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी 'शब्द-भंडार का स्थिरीकरण' विषय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए।

हिंदी वर्तनी एवं ध्वनियों का मानकीकरण

भारत संघ की राजभाषा घोषित होने के बाद हिंदी ने अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ यथासंभव सामंजस्य रखते हुए एक अखिल भारतीय स्वरूप विकसित किया है। हालांकि एक विस्तृत भूखंड में और बहुभाषी समाज के बीच व्यवहृत होने के कारण कई बार उसमें अनेकरूपता दिखाई पड़ती है जो भाषा के विकास में कई बार बाधक प्रतीत होती है। अतः अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी के प्रयोग, लेखन, टंकण और मुद्रण की जरूरतों तथा कंप्यूटर आदि आधुनिक सूचना

प्रौद्योगिकी के साधनों में हिंदी के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए उसके मानकीकृत रूप की अनिवार्यता स्वाभाविक है। दूसरी ओर हिंदी को गतिशील, जीवंत और समयानुकूल बनाने हेतु भी वर्णमाला का मानकीकरण आवश्यक है। उक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने शीर्षस्थ विद्वानों के साथ व्यापक विचार-विमर्श के बाद हिंदी वर्णमाला और अंकों का मानक रूप निर्धारित किया है। इसके साथ ही भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1961 में हिंदी वर्तनी में एकरूपता लाने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की थी और उसकी सिफारिशों को स्वीकृत कर 1967 में हिंदी वर्तनी का मानकीकरण नामक पुस्तिका प्रकाशित की थी। इनके अनुसार हिंदी की मानक वर्णमाला और वर्तनी का मानक रूप निम्न प्रकार से है –

मानक हिंदी वर्णमाला

स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ,

अनुस्वार – ं (अं) विसर्ग –ः (अः)

व्यंजन – क, ख, ग, घ, ङ., च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़।

त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, स, ष, ह।

विशेष संयुक्त व्यंजन – क्ष, त्र, ज्ञ एवं श्र

भारत के संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाले अंकों का रूप निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है, जिसे भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप कहा जाता है –

भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप – 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0

संयुक्त वर्णों का निर्माण

हिंदी में उच्चारण को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए कहीं अक्षरों को पूरा बोला जाता है और कहीं आधा। इसके अतिरिक्त दो अक्षरों को मिलाकर भी बोला और लिखा जाता है। इस वैशिष्ट्य के कारण हिंदी भाषा उच्चारण की दृष्टि से अधिक वैज्ञानिक मानी जाती है।

हिंदी में दो तरह के व्यंजन हैं – एक वे जिनके अंत में खड़ी पाई होती है, उदाहरण के लिए – ख, ग, घ, च, ज, ञ, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स, और दूसरे वे जिनके अंत में खड़ी पाई नहीं होती है, जैसे क, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, फ, र, ह।

खड़ी पाई वाले अक्षरों को आधा करने के लिए उनकी खड़ी पाई को हटा दिया जाता है और दूसरे अक्षर के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे ख्याल, मग्न, विन, बच्चा, उज्ज्वल, ध्वनि, नन्हा आदि। जहाँ खड़ी पाई नहीं हो उन अक्षरों को दूसरे अक्षर के साथ जोड़ते समय हलन्त (्) का प्रयोग करते हैं, जैसे छुट्टी, बुड्ढा, वांग्मय आदि। 'क' और 'फ' का आधा रूप भिन्न तरीके से लिखा जाता है जैसे पक्का, दफ्तर आदि।

आधे 'र' को लिखने की पद्धति पहले की तरह ही है और उसे परवर्ती अक्षर के ऊपर रेफ के रूप में लगाया जाता है, जैसे कर्म। आधे अक्षर के साथ पूरे 'र' को जोड़ने की पद्धति भी पहले जैसी ही है, जैसे– क्रम, राष्ट्र। 'क्र' में 'क' आधा और 'र' पूरा है। 'ट्र' में 'ट' आधा 'र' पूरा है।

'द' के साथ अन्य अक्षर को जोड़ने के लिए दो पद्धतियां आज भी प्रचलित हैं - द् ध = 'द्ध' या 'द्ध', जैसे बुद्धि या बुद्धि। इसी प्रकार द् व = द्व या द्व जैसे द्वितीय या द्वितीय। द् य = द्य या द्य जैसे विद्या या विद्या।

हिंदी के चार विशेष प्रचलित संयुक्ताक्षर - क्ष त्र ज्ञ श्र वस्तुतः अलग अक्षरों के रूप में प्रयोग किए जा रहे हैं किंतु ये भी दो अक्षरों के मेल से बने हैं, जैसे - क् ष = क्ष, त् र = त्र, ज् ञ् = ज्ञ, श् र = श्र

विभक्ति चिह्न

हिंदी के विभक्ति चिह्नों को संज्ञा शब्दों से अलग लिखा जाएगा, जैसे राम ने, मोहन को, विद्यार्थी के लिए। किंतु सर्वनाम के साथ विभक्ति चिह्न को मिलाकर लिखा जाएगा, जैसे मैंने, उसको, आपको, उसपर, उनपर आदि। सर्वनामों के साथ यदि दो विभक्ति चिह्न हों तो पहले को मिलाकर और दूसरे को अलग लिखा जाएगा, जैसे उसके लिए, इनमें से।

सर्वनाम और विभक्ति के बीच 'ही', 'तक' आदि का प्रयोग हो तो विभक्ति को अलग लिखा जाएगा, जैसे आप ही के लिए, मुझ तक को।

पूर्वकालिक प्रत्यय कर को क्रिया के साथ मिलाकर लिखा जाएगा, जैसे जाकर, आकर, पाकर, मिलाकर, सोकर, उठकर, पढ़कर, लिखकर, खा-पीकर, रो-रोकर आदि।

'य' 'व' श्रुति

जहाँ श्रुतिमूलक 'य' या 'व' का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ स्वरात्मक रूपों का ही प्रयोग किया जाएगा, जैसे– किए, गए, नई, हुई आदि। यह नियम

क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी पर लागू होगा। किंतु जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्त्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन नहीं किया जाएगा, जैसे स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि के रूप में लिखा जाएगा न कि स्थाई, दाइत्व, अव्यईभाव।

अनुस्वार तथा अनुनासिकता चिह्न (चंद्रबिंदु)

मानकीकृत हिंदी में अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता चिह्न (ँ) दोनों प्रचलित रहेंगे। पहले संयुक्त व्यंजन में पंचमाक्षर को आधे रूप में सवर्गीय वर्णों के साथ लिखा जाता था, जैसे ग्ंगा, चञ्चल, ठण्डा, अन्त, सम्पादक आदि। अब इसकी जगह गंगा, चंचल, ठंडा, अंत, संपादक लिखा जाएगा। परंतु यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए अथवा वही पंचमाक्षर दुबारा आए या संधि के नियम लागू होते हैं तो वहाँ पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा, जैसे वांग्मय, अन्य, अन्न, चिन्मय, सम्मति, सम्मेलन, उन्मुख आदि।

अनुनासिकता चिह्न के मामले में दो तरह के नियम प्रचलित हैं। जहाँ अनुस्वार और चंद्रबिंदु के प्रयोग से अर्थ में भिन्नता आती है वहाँ इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उनका सही प्रयोग किया जाए, जैसे– अंगना, अँगना, हंस, हँस आदि। किंतु जहाँ (खासकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो तो चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे में', मैं', नहीं' आदि।

अव्यय

अव्यय को दूसरे शब्द से अलग लिखा जाएगा। हिंदी में अनेक प्रकार के भावों का बोध कराने वाले अनेक अव्यय हैं, जैसे– आह, ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, तब, कब, यहाँ, वहाँ, क्यों, क्या, सदा, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, परंतु, मगर, लेकिन, चाहे, या, अथवा, तथा, यथा, और, प्रति आदि। इन अव्ययों को किसी शब्द के साथ मिलाकर नहीं लिखा जाना चाहिए, जैसे श्री मोहन जी, गांधी जी, पिता जी, आप ही के लिए, अब तक, दिन भर, सदा के लिए, अभी भी आदि। कुछ अव्ययों के आगे विभक्ति के चिह्न भी लगते हैं, जैसे– अब से, तब से आदि। परंतु समस्त पदों में 'प्रति', 'मात्र', 'यथा' आदि अव्यय अलग नहीं लिखे जाते हैं, जैसे– प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। इसका कारण समास का नियम है, जिसमें समस्त पद को एक साथ लिखा जाता है।

विदेशी ध्वनियाँ

अरबी-फारसी या अंग्रेजी मूल के वे शब्द जो हिंदी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिंदी ध्वनियों में रूपांतरण हो चुका है, उन्हें हिंदी के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए, कलम, किला, दाग आदि (कलम, किला, दाग नहीं)। दरअसल अंग्रेज, अरबी, फारसी आदि की मुख्यतः पांच ध्वनियाँ - क, ख, ग, ज और फ हिंदी में आई हैं, जिनका उच्चारण हिंदी के, क, ख, ग, ज, फ, से थोड़ा भिन्न होता है। परंतु अब ये ध्वनियाँ अधिकांश मामलों में हिंदी ध्वनियों के रूप में परिवर्तित हो गई हैं।

अंग्रेजी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा (ा) के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाएगा (ऑ, ॅ)।

हिंदी में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके दो-दो रूप प्रचलित हैं, जैसे– बहिन-बहन, बिल्कुल-बिलकुल, गरमी-गर्मी, भरती-भर्ती, सरदी-सर्दी, कुरसी-कुर्सी, वापिस-वापस, दोबारा-दुबारा, दूकान-दुकान, बिमारी-बीमारी, दृष्टव्य-द्रष्टव्य, प्रदर्शिनी-प्रदर्शनी, अत्याधिक-अत्यधिक, अनाधिकार-अनधिकार, पूर्वाग्रह-पूर्वग्रह, कृतित्त्व-कर्तृत्व, ब्रम्हा-ब्रह्मा, चिन्ह-चिह्न, ग्रहीत-गृहीत, अर्द्ध-अर्ध, तत्त्व-तत्त्व आदि। इनमें दूसरे रूप को ही अपनाया जाए।

हिंदी में कुछ संस्कृतमूलक शब्दों में हल् चिह्न का प्रयोग किया जाता है, परंतु हिंदी में वह समाप्त हो चुका है, जैसे विद्वान, महान, प्रणाम आदि में हल् चिह्न नहीं लगाया जाएगा।

पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाएगा न कि (.) का। अन्य विराम चिह्न अंगरेजी के अनुरूप होंगे, जैसे - , : य ? ! - आदि

हाइफन (-) : द्वंद्व समास में हाइफन रखा जाएगा, जैसे– देख-रेख, चाल-चलन, लेन-देन, खाना-पीना, खेल-कूद।

'ऐसा', 'जैसा' आदि के पहले हाइफन लगाया जाएगा, जैसे– तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे आदि।

तत्पुरुष समास में हाइफन वहीं लगाया जाएगा जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, जैसे भू-तत्त्व, अ-नख, अ-परस, अ-नति। यहां हाइफन नहीं लगाने से उक्त शब्दों का अर्थ बदल जाता है, जैसे भूतत्त्व का अर्थ है भूत होना, भू-तत्त्व का अर्थ है पृथ्वी-तत्त्व, अ-नख का अर्थ है बिना नख का और अनख

का अर्थ है क्रोध, अ-परस का अर्थ है जिसे किसी ने छुआ नहीं हो और अपरस का अर्थ है एक चर्म रोगय अ-नति का अर्थ है नम्रता का अभाव और अनति का अर्थ है थोड़ा। यहाँ हाइफन का विशेष ध्यान रखा जाएगा।

हिंदी के संख्यावाचक शब्दों की एकरूपता

हिंदी के संख्यावाचक शब्दों के उच्चारण और लेखन में एकरूपता लाने हेतु केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा निर्धारित मानक रूप निम्न प्रकार से है–

- एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस।
- ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस, बीस।
- इक्कीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस।
- इकतीस, बत्तीस, तैंतीस, चौंतीस, पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस, अड़तीस, उनचालीस, चालीस।
- इकतालीस, बयालीस, तैंतालीस, चवालीस, पैंतालीस, छियालीस, सैंतालीस, अड़तालीस, उनचास, पचास।
- इक्यावन, बावन, तिरपन, चौवन, पचपन, छप्पन, सतावन, अठावन, उनसठ, साठ।
- इकसठ, बासठ, तिरषठ, चौंसठ, पैंसठ, छियासठ, सड़सठ, अड़सठ, उनहत्तर, सत्तर।
- इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर, पचहत्तर, छिहत्तर, सतहत्तर, अठहत्तर, उनासी, अस्सी।
- इक्यासी, बयासी, तिरासी, चौरासी, पचासी, छियासी, सतासी, अठासी, नवासी, नब्बे।
- इक्यानवे, बानवे, तिरानवे, चौरानवे, पचानवे, छियानवे, सतानवे, अठानवे, निन्यानवे, सौ।

मानकीकरण की व्यावहारिक गलतियाँ

टाइपिंग की गलतियाँ

ये वे अशुद्धियाँ हैं, जो आमतौर कम्प्यूटर अथवा अन्य कम्प्यूटिंग डिवाइसों पर टाइपिंग के दौरान होती हैं। अंग्रेजी में इस प्रकार की अशुद्धियों

को टाइपो कहा जाता है। कई बार तो इन पर टाइपकर्ता का ध्यान नहीं जाता, कई बार ध्यान जाने पर भी आलस्यवश वह नजरअन्दाज कर देता है। एक अन्य कारण यह भी है कि कई बार टाइपकर्ता को प्रयोग किये जा रहे टाइपिंग औजार द्वारा वह वर्ण या चिह्न टाइप करने का तरीका पता नहीं होता। ऐसा सुविधा के चक्कर में, किसी चिह्न को टाइप करने का सही तरीका न जानने के कारण अथवा चिह्न विशेष को टाइप करने की सुलभता उपलब्ध न होने के कारण होता है।

फुलस्टॉप तथा पूर्णविराम की गलती

कम्प्यूटर पर टंकण के समय अधिकतर लोग आलस्यवश या वर्ण को टाइप करने का तरीका न जानने/सुलभ न होने के कारण पूर्णविराम (।) के स्थान पर फुलस्टॉप (.) का प्रयोग करते हैं। पूर्णविराम के स्थान पर फुलस्टॉप का प्रयोग करने से देवनागरी की सुन्दरता भी प्रभावित होती है तथा कम्प्यूटिंग में अन्य जटिलतायें भी आती हैं।

विराम चिह्नों से पहले स्पेस देने की गलती

हिन्दी में किसी भी विराम चिह्न यथा पूर्णविराम, प्रश्नचिह्न आदि से पहले स्पेस नहीं आता। आजकल कई मुद्रित पुस्तकों, पत्रिकाओं में ऐसा होने के कारण लोग ऐसा ही टाइप करने लगते हैं जो कि गलत है। किसी भी विराम चिह्न से पहले स्पेस नहीं आना चाहिये।

फुलस्टॉप तथा लाघव चिह्न की गलती

अंग्रेजी में संक्षेपीकरण (abbreviation) के लिये फुलस्टॉप का प्रयोग किया जाता है, हिन्दी में इस कार्य के लिये लाघव चिह्न (℅) होता है। प्रायः यह चिह्न की बोर्ड पर सुलभ न होने से लोग इसके स्थान पर फुलस्टॉप का ही प्रयोग कर लेते हैं जबकि वह अशुद्ध है।

इस चिह्न को टाइप करने का सरलतम तरीका है कि किसी भी वर्ड प्रोसैसर में इसके यूनिकोड कूट 0970 को टाइप करें तथा उसे सलैक्ट करके Alt-X दबा दें, वह लाघव चिह्न में बदल जायेगा।

उदाहरण- सही - डॉ राजेन्द्र प्रसाद, गलत - डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सही - म ए, गलत - म. ए.

हिन्दी शून्य अंक का चिह्न (0, यूनिकोड कूट 0966) भी इससे मिलता-जुलता होने से कई बार लोग गलती से लाघव चिह्न की जगह हिन्दी के शून्य अंक का प्रयोग कर लेते हैं। इनमें अन्तर ये है कि एक तो लाघव चिह्न शून्य से छोटा होता है दूसरा शून्य जहाँ क्षैतिज रुप से पंक्ति के मध्य में होता है, लाघव चिह्न क्षैतिज रुप से नीचे की तरफ होता है।

पूर्णविराम तथा डबल डण्डे की गलती

कई लोग जानकारी के अभाव में संस्कृत में श्लोकों के अन्त में लिखे जाने वाले डबल डण्डे के सही चिह्न (।) के स्थान पर दो पूर्णविराम (।।) डाल देते हैं। सही चिह्न डालने हेतु यदि आपके टाइपिंग औजार में ये चिह्न न हो तो किसी भी वर्ड प्रोसैसर में इसके यूनिकोड कोड 0965 को टाइप करें तथा उसे सलैक्ट करके Alt-X दबा दें, वह डबल दण्ड चिह्न में बदल जायेगा।

वाक्य-अन्त हेतु पूर्णविराम/दण्ड (। - U0964) निर्धारित है। पैराग्राफ-अन्त (छन्द) हेतु डबल-दण्ड (। - U0965) निर्धारित है, जिसका सामान्यता कविताध्पद्य में तुकबन्दी के अन्त में (पैरा के अन्त में होता है।), किन्तु प्रत्येक पैराग्राफ के अन्त में डबल दण्ड टाइप किया जाए तो पाठ अधिक वैज्ञानिक और तकनीकी रूप से परिशुद्ध होगा।

कॉलन तथा विसर्ग की गलती

कई बार टाइपकर्ता विसर्ग (:) के स्थान पर उससे मिलते-जुलते चिह्न कॉलन (रू) को टाइप कर देते हैं जो कि सर्वथा अशुद्ध है। मानक हिन्दी कीबोर्ड इनस्क्रिप्ट में विसर्ग शिफ्ट के साथ - कुंजी दबाकर प्राप्त किया जा सकता है। अन्य विकल्प के तौर पर किसी भी वर्ड प्रोसैसर में इसके यूनिकोड कोड 0903 को टाइप करें तथा उसे सलैक्ट करके Alt-X दबा दें, वह विसर्ग चिह्न में बदल जायेगा।

दशमलव चिह्न तथा फुल-स्टॉप की गलती

कई बार टाइपकर्ता दशमलव चिह्न (.) के स्थान पर उससे मिलते-जुलते चिह्न फुलस्टॉप (.) को टाइप कर देते हैं जो कि सर्वथा अशुद्ध है। इन दोनों का अन्तर देखना हो तो दोनों को किसी वर्ड प्रोसैसर में फॉण्ट साइज बहुत बड़ा करके देखें।

दशमलव चिह्न के लिए Middle Dot (U00B7) का प्रयोग किया जाना चाहिए जो Numerical Keypad में Del key के ऊपर है। जबकि Full stop के लिए सिर्फ (U002Ek) कोड निर्धारित है।

वर्तनी की गलतियाँ

पंचमाक्षर की गलतियाँ

पंचमाक्षरों के नियम का सही ज्ञान न होने से बहुधा लोग इनके आधे अक्षरों की जगह अक्सर 'U' का ही गलत प्रयोग करते हैं जैसे 'पण्डित' के स्थान पर 'पन्डित', 'विण्डोज' के स्थान पर 'विन्डोज', 'चंचल' के स्थान पर 'चन्चल' आदि। ये अधिकतर अशुद्धियाँ '×' तथा '.' के स्थान पर 'U' के प्रयोग की होती हैं।

नियम: वर्णमाला के हर व्यंजन वर्ग के पहले चार वर्णों के पहले यदि अनुस्वार की ध्वनि हो तो उस वर्ग का पाँचवां वर्ण आधा (हलन्त) होकर लगता है अर्थात कवर्ग (क, ख, ग, घ, ं) के पहले चार वर्णों से पहले आधा ं (ं), चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) के पहले चार वर्णों से पहले आधा, टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण) के पहले चार वर्णों से पहले आधा ण (ण), तवर्ग (त, थ, द, ध, न) के पहले चार वर्णों से पहले आधा न (न्) तथा पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) के पहले चार वर्णों से पहले आधा म (म्) आता है। उदाहरण–

कवर्ग - पंकज, गंगा
चवर्ग - कुंजी, चंचल
टवर्ग - विण्डोज, प्रिण्टर
तवर्ग - कुन्ती, शान्ति
पवर्ग - परम्परा, सम्भव

आधुनिक हिन्दी में पंचमाक्षरों के स्थान पर सुविधा हेतु केवल अनुस्वार का भी प्रयोग कर लिया जाता है यद्यपि यह देवनागरी की सुन्दरता को कम करता है। जैसे- पंकज - पंकज, शान्ति - शांति, परम्परा - परंपरा। विशेषकर का प्रयोग काफी कम हो गया है।

संस्कृत, धर्म तथा भारतीय संस्कृति सम्बंधी लेखों में पंचमाक्षरों का प्रयोग होना चाहिये जबकि विज्ञान, गणित, तकनीक आदि सम्बंधी लेखों में सरलता हेतु आधुनिक हिन्दी का प्रयोग किया जा सकता है। हाँ लेख के शीर्षक (नाम) को

शुद्ध उच्चारण तथा वर्तनी की दृष्टि से पंचमाक्षर में रखा जाय, चाहे वह किसी भी विषय से सम्बंधित हो। खोज तथा पुनर्निर्देशन हेतु आधुनिक वर्तनी वाले नाम को पारम्परिक (शुद्ध) पंचमाक्षर वाले शीर्षक पर पुनर्निर्देशित कर देना चाहिये ताकि शुद्ध उच्चारण एवं वर्तनी रहे। उदाहरण के लिये पंडित को पण्डित पर पुनर्निर्देशित किया जाना चाहिये।

आगत ध्वनि 'ऑ' अथवा इसकी मात्रा (ॅ) के बाद शुद्ध वर्तनी का प्रयोग ही उपयुक्त है क्योंकि उसमें अनुस्वार की बिन्दी दिखायी नहीं देती। उदाहरण - फॉट के स्थान पर फॉण्ट उपयुक्त है। इसी प्रकार दूसरी आगत ध्वनि तथा इसकी मात्रा (ॅं) के बाद भी अनुस्वार की बिन्दी या तो दिखती नहीं या चन्द्रबिन्दु का भ्रम होता है, अतः इसके स्थान पर भी शुद्ध वर्तनी का प्रयोग ही उपयुक्त है। उदाहरण - के स्थान पर उपयुक्त है।

पंचम वर्ण की सन्धि से बनने वाले संयुक्ताक्षरों में बाद वाला वर्ण '्' तथा 'पं' के नीचे लगता है। इस प्रकार बनने वाले संयुक्ताक्षरों को मंगल आदि अधिकतर यूनिकोड फॉण्ट सही प्रकार से नहीं दिखा पाते, बायीं तरफ दिखाते हैं। संस्कृत 2003 नामक यूनिकोड फॉण्ट ऐसे संयुक्ताक्षरों को सही प्रकार से प्रदर्शित करता है। उदाहरण - ग्ंगा का सही रुप गंगा.JPG है।

अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में लिखने पर होने वाली गलतियाँ

ऑ की गलतियाँ

लेखन की गलती- 'ऑ' तथा '1' ये दोनों आगत ध्वनियाँ कही जाती हैं जो कि हिन्दी में विदेशी भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी से आयी हैं। इनका उपयोग अंग्रेजी की दो विशिष्ट ध्वनियों के लिये होता है। 'ऑ' की ध्वनि 'ओ' तथा 'औ' के लगभग बीच की है, उदाहरण- बॉस , हॉट आदि।

बहुधा लोग सामान्य लेखन में भी तथा कम्प्यूटर पर टंकण में भी 'ॅ' (ऑ की मात्रा) के स्थान पर 'ा' (आ की मात्रा) लिख देते हैं। ऐसा दो कारणों से है एक तो विदेशी ध्वनियाँ होने से भारतीय कई बार इन्हें आत्मसात नहीं कर पाते और दूसरा कम्प्यूटर पर टाइपिंग औजार में 'ऑ' (अथवा इसकी मात्रा) का चिह्न सुलभ न होने से। कई बार टाइपिंग औजार में सुलभ होने पर भी लोग आलस्यवश 'आ' की ही मात्रा लगा देते हैं।

हालाँकि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके हिन्दी में 'आ' वाले रुप भी प्रचलित हैं जैसे– डाक्टर (डॉक्टर से बना) तथा कालेज (कॉलेज से बना)। इन मामलों में 'आ' वाला रुप भी चल जाता है क्योंकि इनका 'आ' वाला उच्चारण भी प्रचलित है, यद्यपि 'ऑ' वाला ही लिखना बेहतर है। लेकिन जिन 'शब्दों के उच्चारण में केवल 'ऑ' की ही ध्वनि हो उन्हें 'आ' रुप में लिखना बिलकुल गलत है। उदाहरण के लिये इण्टरनेट पर 'ब्लॉग' को बहुधा गलत रुप से 'ब्लाग' लिख दिया जाता है यद्यपि 'ब्लाग' बोलता कोई नहीं।

उच्चारण की गलती– चूँकि 'ऑ' विदेशी ध्वनि है इसलिये कई भारतीय इसे आत्मसात नहीं कर पाते तथा 'ऑ' वाले शब्दों का उच्चारण 'आ' की तरह करते हैं। उदाहरण के लिये 'ऑल' के स्थान पर 'आल', 'ऑलसो' के स्थान पर 'आलसो', 'बॉडी' के स्थान पर 'बाडी' आदि।

की गलतियाँ

आगत ध्वनि 'ए' तथा 'ऐ' के लगभग बीच की है, उदाहरण 'जॅक' (श्रंबा), 'मॅक' (डंब)। हिन्दी में आमतौर पर इसके लिये निकटतम वर्ण 'ऐ' का उपयोग कर लिया जाता है जैसे 'जॅक' की बजाय 'जैक' आदि। यह इतना अशुद्ध नहीं लेकिन की मात्रा के स्थान पर 'ए' की मात्रा का उपयोग सर्वथा अनुचित है तथा देवनागरी की ध्वन्यात्मकता गुण - उच्चारण और लेखन की समरुपता के विरुद्ध है। इस तरह के गलत प्रयोग के उदाहरण हैं 'रॅड' (Red) के स्थान पर 'रेड' लिखना जो कि त्पक का सही लेखन है। इसी प्रकार 'टॅस्ट' (Test) के स्थान पर 'टेस्ट' लिखना जो कि Taste का सही लेखन है, 'गॅस्ट' (Guest) के स्थान पर 'गेस्ट' जो कि गलत है।

एक अन्य अशुद्धि जो कि प्रिण्ट मीडिया में देखने को मिलती है - '?' के स्थान पर 'अ' के ऊपर ॅ' चिह्न लगा वर्ण। ऐसा वर्ण यूनिकोड फॉण्ट में बनाना सम्भव नहीं है, लेकिन नॉन-यूनिकोड फॉण्ट में बन जाता है। ऐसी गलती आम तौर पर '?' से शुरु होने वाले वर्णों में दिखायी देती है।

अनुस्वार तथा अनुनासिक की गलतियाँ

बहुधा अनुस्वार (ं) के स्थान पर अनुनासिक (ँ) तथा अनुनासिक (ँ) के स्थान पर अनुस्वार (ं) लिख दिया जाता है। विशेषकर अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार को लिखे जाने की गलती अधिक प्रचलित है और इसे एक प्रकार

की अघोषित स्वीकृति भी मिल गयी है। कुछ उदाहरण हैं, हंसना के स्थान पर हँसना, पँख के स्थान पर पंख आदि।

इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट करने के लिये बहुधा हंस (हंसना क्रिया वाला) तथा हँस (पक्षी) का उदाहरण दिया जाता है। अनुस्वार तथा अनुनासिक के उपयोग सम्बंधी जानकारी यहाँ देखें।

नुक्ते की गलतियाँ

उर्दू से हिन्दी में लिये गये शब्दों में नुक्ता लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं के कुछ शब्दों में भी नुक्ते का उपयोग होता है। नुक्ता भाषा विशेष की सही ध्वनि को प्रकट करता है, लेकिन हिन्दी में लिखते समय प्राय: कई बार लोग नुक्ता लोप कर देते हैं। यद्यपि इसे गम्भीर गलती नहीं माना जाता। नुक्ता छोड़ देना विशेष नोटिस नहीं किया जाता लेकिन जहाँ नुक्ता न लगना हो वहाँ लगा देना अजीब लगता है जैसे 'फल' के स्थान पर 'फल' तथा 'फिर' के स्थान पर 'फिर' सरासर गलत है।

बेवजह नुक्ता लगाने का एक कारण टाइपिंग सम्बंधी भी है। उदाहरण के लिये बरह आइघ्मई नामक औजार से टाइप करते समय 'F' कुंजी दबाने से 'फ' छपता है जबकि 'फ' के लिये 'P+H' दबाना पड़ता है। इसलिये कई लोग आलस्यवश 'F' द्वारा 'फ' लिखने को ही आदत बना लेते हैं।

कई बार नुक्ता अपरिहार्य भी हो सकता है। एक उदाहरण देखें- अंग्रेजी के वर्ण 'G' का उच्चारण है 'जी', तथा "' का उच्चारण (अमेरिकी) है 'जी'। इन दोनों के उच्चारण का अन्तर नुक्ते बिना स्पष्ट नहीं हो सकता।

एक अन्य सुझाव यह दिया जाता है कि जहाँ अर्थ बदलने की आशंका हो, वहीं नुक्ता जैसे विक्षिप्तिकारक का प्रयोग किया जाए। जहाँ बिना नुक्ते के अर्थ सही समझा जा सके, वहाँ बिना नुक्ते के काम चलाया जाना चाहिए।

नुक्ते के बारे में एक सामान्य नियम याद रखा जाना चाहिये - हाँ पर नुक्ते के प्रयोग के विषय में शंका हो, वहाँ नुक्ते का प्रयोग न करें। 'जरूरत' के स्थान पर 'जरूरत' चल जाएगा, पर 'मजबूरी' के स्थान पर 'मजबूरी' नहीं।

शुद्ध-अशुद्ध शब्दकोश

हिन्दी में बहुत से शब्द हैं जिनकी वर्तनी आम तौर पर गलत लिखी जाती है। ये वर्तनियाँ प्रिण्ट मीडिया में मौजूद होने से आम आदमी इन्हें ही सही

समझने लगता है। उपरोक्त मुख्य लेख में इस प्रकार के शब्दों की सूची दी गयी है।

उच्चारण की गलतियाँ

व्यंजनों का अशुद्ध उच्चारण

क --झ कै, ख --झ खै आदि। 'कै', 'खै' आदि का प्राय: उच्चारण 'के', 'खे' जैसा होता हैं। जबकि 'ऐ (मात्रा ै)' अइ से मिलकर बनता हैं। इसलिए इसका उच्चारण 'Db' , '[b' होना चाहिए। दक्षिण भारत में इसका सही उच्चारण करा जाता हैं। हिंदी में उसके उच्चारण की गलती का एक कारण 'ह' की अनुपस्थिति हैं। 'श'-हस्व स्वर होता हैं, 'ए'- दीर्घ स्वर होता हैं एवं 'ऐ' का उच्चारण होता हैं।

स, श तथा ष का अशुद्ध उच्चारण

कई लोग 'श' तथा 'ष' का उच्चारण भी 'स' की तरह ही करते हैं जैसे 'इंगलिश' को 'इंगलिस' बोलना, 'षड़यन्त्र' को 'सडयन्त्र' बोलना आदि।

ऋ का अशुद्ध उच्चारण

'ऋ' का उत्तर भारत में उच्चारण 'रि' की तरह तथा दक्षिण भारत में 'रु' की तरह होता है। कई स्थान पर इसका उच्चारण 'ई'की भांति भी होता हैं,जैसे 'कृषि' का 'क्रषि', 'मातृ' का 'मात्र' इत्यादि।इसका सही उच्चारण कालक्रम में लुप्त हो चुका है।

ज्ञ का अशुद्ध उच्चारण

'ज्ञ' का भारत के विभिन्न हिस्सों में उच्चारण भिन्न-भिन्न तरीके से होता है, उत्तर भारत के हिन्दी भाषा क्षेत्रों में प्राय: इसका उच्चारण 'ग्य' की तरह किया जाता है। इसका सही उच्चारण भी वर्तमान में लुप्त हो चुका है। इसका 'शुद्ध उच्चारण (T+ia) होता हैं।

क्ष का अशुद्ध उच्चारण

आजकल 'क्ष' का उच्चारण 'छ' की तरह आम तौर पर सुनने को मिलता है जैसे 'क्षत्रिय' को 'छत्रिय' बोलना।

का अशुद्ध उच्चारण

प्रायः पंचमाक्षरों से अपरिचित लोग 'ं' का उच्चारण 'ड़' की तरह करते हैं।

आधे अक्षरों का पूरे अक्षरों की तरह उच्चारण

कुछ लोग कुछ 'शब्दों में आने वाले आधे अक्षरों (हलन्त युक्त) का पूरे अक्षरों की तरह उच्चारण करते हैं। उदाहरण के लिये 'प्रश्न' का उच्चारण 'प्रशन' की तरह, 'महत्व' का उच्चारण 'महतव' की तरह, 'प्रयत्न' का उच्चारण 'प्रयतन' की तरह आदि।

गलत अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द

कई ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ तो कुछ और था लेकिन वे गलत अर्थ समझे जाने से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगे हैं। उदाहरण के लिये खलिफत का अर्थ 'खलीफा का पद और उसकी सत्ता' होता है, लेकिन आम जनता जिसमें पढ़े-लिखे पत्रकार भी शामिल हैं, खलिफत को मुखालिफत (विरोध) के अर्थ में ही धड़ल्ले से इस्तेमाल कर रहे हैं।

3

वैश्विक विस्तार एवं स्थिति

हिंदी की वर्णमाला 'अ' यानी अनपढ़ से शुरू होती है और 'ज्ञ' यानी ज्ञानी बनाकर छोड़ती है। या हिंदी भाषा की सबसे बड़ी उपलब्धि है। हिंदी की वर्णमाला पूर्णत: वैज्ञानिक है और प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग लिपि चिह्न इसकी विशिष्टता है। इसके अतिरिक्त इसके उच्चारण और लेखन में एकरूपता होने के कारण ही यह कालजयी हैं और भौगोलिक सीमाओं से परे पहुँच चुकी है। हिंदी की अद्वितीय आत्मसात एवं अंगीकार करने की प्रक्रिया ने ही इसे 310 करोड़ लोगों का चहेता बना दिया है। यूरापीय भाषाओं की तुलना में उर्दू, फारसी, तुर्की, अरबी शब्द हमारे ज्यादा नजदीक है। अंग्रेजी के प्रचलन में आ चुके शब्दों को अपनाने में भी हिंदी आगे ही है।

बोलने और समझने वालों की संख्या की दृष्टि से हिंदी विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। परंतु सर्वेक्षण में हिंदी की अनेक बोलियों जैसे– भोजपुरी, अवधी, हरियाणवी, छत्तीसगढ़ी, मैथिली, मगही इत्यादि को स्वतंत्र भाषा मानकर सूचीबद्ध करते हुए, विश्व में सबसे अधिक बोली जानी वाली भाषाओं की सूची में इसे चौथे स्थान पर रखा गया है। इस तरीके से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी अपनी एक अलग पहचान बना ही चुकी है।

अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का संवर्धन करने तथा उसे संयुक्त राष्ट्र संघ में एक अधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के अपने मूल उद्देश्य को लेकर 'विश्व हिंदी सचिवालय' अपने सीमित साधनों के साथ निरंतर प्रयासरत है। न्यूयार्क में 13-15 जुलाई 2007 को आयोजित आठवाँ 'विश्व हिंदी सम्मेलन' इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा कि विश्व भर के हिंदी प्रेमी

संयुक्त राष्ट्र संघ के सभागार में एकत्र हुए और हिंदी का सामूहिक शंखनाद विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाया। सम्मेलन को संबोधित करते हुए 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के महासचिव 'श्री बान की मून' ने कहा, ''संसार के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए हिंदी समन्वय-सूत्र की तरह काम कर रही है। यह संसार की सभी संस्कृतियों के बीच एक सेतु है।'' निश्चित ही 'श्री बान की मून' को हिंदी के विश्वव्यापी उज्ज्वल भविष्य का आभास हो चुका है और उन्हें हिंदी के तेजी से बढ़ते कदमों की आहटें भी सुनाई दे रही हैं।

हिंदी को विश्वभाषा व राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने में कठिनाइयाँ विज्ञान और टेक्नोलॉजी की शब्दावली की है। अभी तक हमने जो शब्द गढ़े हैं उनमें अस्पष्टता, अस्वाभाविकता और अंग्रेजी की छाप है। वे शब्दकोश में तो जगह पा सकते हैं पर बोलचाल में उनका प्रवेश मुश्किल है। इसके लिए हमें शुद्धतावादी दृष्टिकोण छोड़ना होगा। विज्ञान व तकनीकी शब्दावली की दुरुहता दूर होते ही हिंदी अपने आप सर्वमान्य हो जाएगी। जरूरत सिर्फ इतनी है कि हम इसे विज्ञान और वाणिज्य की भाषा बनाने की दिशा में सार्थक काम करें और सोचें कि हम हिंदी सीखने के इच्छुक देशों के लिए किस तरह लुभावनी, सरल और सुगम हिंदी बना सकते हैं।

इस पुनीत कार्य को सुचारु और संगठित रूप से पूरा करने का कार्यभार 'विश्व हिंदी सचिवालय' मॉरीशस ने भी लिया है। वास्तव में 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना का विचार सबसे पहले मॉरीशस के राष्ट्रपिता और प्रथम प्रधानमंत्री 'सर शिवसागर गुलाम' ने भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की उपस्थिति में भारत के नागपुर शहर में 10 जनवरी 1975 को आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में रखा था। उन्होंने कहा था कि हिंदी भारत के लिए राष्ट्रभाषा है लकिन हमारे लिए यह अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। आज मॉरीशस और भारत की साझेदारी में 'विश्व हिंदी सचिवालय' मॉरीशस में कार्यरत है। 'विश्व हिंदी सचिवालय' ने हिंदी को विश्वव्यापी बनाने का अपना अधिकारिक अभियान 11 फरवरी 2008 से प्रारंभ किया था। संपूर्ण विश्व में चल रही हिंदी की गतिविधियों से हिंदी प्रेमियों को समय-समय पर अवगत कराने के लिए सचिवालय की ओर से त्रैमासिक 'विश्व हिंदी समाचार' का प्रकाशन मार्च 2008 से आरंभ किया गया था। इस पत्र के माध्यम से मॉरीशस, अमेरिका, ब्रिटेन, कनाड़ा, नीदरलैंड, दक्षिण अफ्रिका, सिंगापुर, सिडनी, जमैका, उक्रेन, जापान, हंगरी, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत, ईराक व साऊदी आदि देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार से जुड़ी संस्थाओं

द्वारा हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के लिए किए जा रहे कार्यों की संक्षिप्त जानकारी विश्वव्यापी हिंदी प्रेमियों तक पहुँचाने का प्रयास जारी है।

विश्व के अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षा दी जाती है, जिनमें मॉरीशस, फीजी, हॉलेंड, जर्मनी, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया, थाईलैंड, उजबेकिस्तान, तजाकिस्तान, क्रोएशिया, कनाडा, चीन, जापान, रोमानिया, बुल्गारिया, रूस, हंगरी, पोलैंड आदि देश प्रमुख है। अकेले अमेरिका के 80 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की सुविधा उपलब्ध है। जिन देशों में हिंदी शिक्षण को औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में स्थान नहीं मिला, वहाँ भारतीय समुदाय की स्वंयसेवी संस्थाए हिंदी का अध्यापन करती है। इसके अतिरिक्त हिंदी को नामचीन बनाने के उद्देश्य से 10 जनवरी, 1975 को 'प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन' का शुभारंभ नागपुर, भारत में हुआ था। अत:, इस ऐतिहासिक तिथि को याद रखने के साथ ही पूरी दुनिया में हिंदीमय वातावरण बनाने के लिए प्रतिवर्ष 10 जनवरी का दिन 'विश्व हिंदी दिवस' के रूप में मनाने का निर्णय विदेश मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा सन् 2006 में लिया गया था। अब हर साल हिंदी प्रेमी 14 सितंबर को भारत में 'हिंदी दिवस' और 10 जनवरी को पूरे विश्व में 'विश्व हिंदी दिवस' मनाने लगे हैं।

आज हिंदी फिल्मों और धारावाहिकों ने भी हिंदी भाषा के विकास में अहम भूमिका निभाई है और लगभग 120 देशों में भारतीय चैनलों का प्रसारण इस बात का पुख्ता सबूत है कि हिंदी की परिधि हर दिन विस्तृत होती जा रही है। आश्चर्य नहीं होगा जब 'योग' की भांति हिंदी भी एक दिन अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अपना परचम लहराएगी।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ

आखिर, वे कौन सी विशेषताएँ हैं, जो किसी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करती हैं। ऐसा करके हम हिंदी के विश्व संदर्भ का वस्तुपरक विश्लेषण कर सकते हैं। जब हम हिंदी को विश्व भाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे हैं और यथावसर उसे विश्वभाषा की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं, तब यह जरूरी हो जाता है कि हम सर्वप्रथम विश्वभाषा का स्वरूप विश्लेषण कर लें। संक्षेप में विश्वभाषा के निम्नलिखित लक्षण निर्मित किए जा सकते हैं–

1. उसके बोलने-जानने तथा चाहने वाले भारी तादाद में हों और वे विश्व के अनेक देशों में फैले हों।

2. उस भाषा में साहित्य-सृजन की प्रदीर्घ परंपरा हो और प्रायः सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हों। उस भाषा में सृजित कम-से-कम एक विधा का साहित्य विश्वस्तरीय हो।
3. उसकी शब्द-संपदा विपुल एवं विराट हो तथा वह विश्व की अन्यान्य बडी भाषाओं से विचार-विनिमय करते हुए एक -दूसरे को प्रेरित -प्रभावित करने में सक्षम हो।
4. उसकी शाब्दी एवं आर्थी संरचना तथा लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक हो। उसका पठन-पाठन और लेखन सहज-संभाव्य हो। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश हो।
5. उसमें ज्ञान-विज्ञान के तमाम अनुशासनों में वांग्मय सृजित एवं प्रकाशित हो तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की क्षमता हो।
6. वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने-आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो।
7. वह अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक हो।
8. वह जनसंचार माध्यमों में बडे पैमाने पर देश-विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।
9. उसका साहित्य अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में पहुँच रहा हो।
10. उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधा हो जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसलन ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एस.एम.एस. एवं वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके ।
11. उसमें उच्चकोटि की पारिभाषिक शब्दावली हो तथा वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो।
12. वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। वह स्थानीय आग्रहों से मुक्त विश्व दृष्टि सम्पन्न कृतिकारों की भाषा हो, जो विश्वस्तरीय समस्याओं की समझ और उसके निराकरण का मार्ग जानते हों।

गुण और परिमाण में समृद्ध भाषा

आज स्थिति यह है कि गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से हिंदी का काव्य साहित्य अपने वैविध्य एवं बहुस्तरीयता में संपूर्ण विश्व में संस्कृत काव्य को छोड कर सर्वोपरि है। 'पद्मावत', 'रामचरित मानस' तथा 'कामायनी' जैसे महाकाव्य विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है। वर्तमान समय में हिंदी का कथा साहित्य भी फ्रेंच, रूसी तथा अंग्रेजी के लगभग समकक्ष है। हाँ, इतना जरूर है कि जयशंकर प्रसाद को छोड कर हिंदी के पास विश्वस्तरीय नाटककार नहीं हैं। इसकी क्षतिपूर्ति हिंदी सिनेमा द्वारा भलीभाँति होती है। वह देश की सभ्यता, संस्कृति तथा बदलते संदर्भों एवं अभिरुचियों की अभिव्यक्ति का बड़ा ही सफल माध्यम रहा है। आज हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में जितने रचनाकार सृजन कर रहे हैं उतने बहुत सारी भाषाओं के बोलने वाले भी नहीं हैं। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही दो सौ से अधिक हिंदी साहित्यकार सक्रिय हैं जिनकी पुस्तकें छप चुकी हैं। यदि अमेरिका से 'विश्वा', हिंदी जगत तथा श्रेष्ठतम वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' हिंदी की दीपशिखा को जलाए हुए हैं तो मॉरीशस से विश्व हिंदी समाचार, सौरभ, वसंत जैसी पत्रिकाएँ हिंदी के सार्वभौम विस्तार को प्रामाणिकता प्रदान कर रही हैं। संयुक्त अरब इमारात से वेब पर प्रकाशित होने वाले हिंदी पत्रिकाएँ अभिव्यक्ति और अनुभूति पिछले ग्यारह से भी अधिक वर्षों से लोकमानस को तृप्त कर रही हैं और दिन पर दिन इनके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

आज जरूरत इस बात की है कि हम विधि, विज्ञान, वाणिज्य तथा नवीनतम प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पाठ्यसामग्री उपलब्ध कराने में तेजी लाएँ। इसके लिए समवेत प्रयास की जरूरत है। यह तभी संभव है जब लोग अपने दायित्वबोध को गहराइयों तक महसूस करें और सुदृढ़ इच्छाशक्ति के साथ संकल्पित हों। आज समय की माँग है कि हम सब मिलकर हिंदी के विकास की यात्रा में शामिल हों ताकि तमाम निकषों एवं प्रतिमानों पर कसे जाने के लिये हिंदी को सही मायने में विश्व भाषा की गरिमा प्रदान कर सकें।

वैश्विक संदर्भ में हिंदी की सामर्थ्य

जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिंदी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सभी निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों, जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस

है, में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। वह विश्व के विराट फलक पर नवल चित्र के समान प्रकट हो रही है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन 1999 में 'मशीन ट्रांसलेशन समिट' अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकड़े पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है। अंग्रेजी तो तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है। इसी क्रम में कुछ ऐसे विद्वान अनुसंधित्सु भी सक्रिय हैं जो हिंदी को चीनी के ऊपर अर्थात् प्रथम क्रमांक पर दिखाने के लिए प्रयत्नशील हैं। डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन 2005 के हवाले से लिखा है कि, विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या एक अरब दो करोड पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन (1, 02, 25, 10,352) है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ चौदह (90, 04,06,614) है। यदि यह मान भी लिया जाय कि आँकड़े झूठ बोलते हैं और उन पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जा सकता तो भी इतनी सच्चाई निर्विवाद है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व की दो सबसे बड़ी भाषाओं में से है। लेकिन वैज्ञानिकता का तकाजा यह भी है कि हम इस तथ्य को भी स्वीकार करें कि अंग्रेजी के प्रयोक्ता विश्व के सबसे ज्यादा देशों में फैले हुए हैं। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गतिविधियों को चलाने वाली सबसे प्रभावशाली भाषा बनी हुई है। चूंकि हिंदी का संवेदनात्मक साहित्य उच्चकोटि का होते हुए भी ज्ञान का साहित्य अंग्रेजी के स्तर का नहीं है। अत: निकट भविष्य में विश्व व्यवस्था परिचालन की दृष्टि से अंग्रेजी की उपादेयता एवं महत्त्व को कोई खतरा नहीं है। इस मोर्चे पर हिंदी का बड़े ही सबल तरीके से उन्नयन करना होगा। उसके पक्ष में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज अंग्रेजी के बाद वह विश्व के सबसे ज्यादा देशों में व्यवहृत होती है।

अमरीकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी

अमरीका में भी यूरोप की तरह भारतीय भाषाओं का अध्ययन संस्कृत से शुरू हुआ। द्वितीय महायुद्ध तक, विश्वविद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं का अध्ययन नहीं होता था। विश्वविद्यालयों के बाहर ईसाई धर्म प्रचारकों का

थोड़ा बहुत काम हुआ और उन लोगों ने सब से पहले हिन्दी सीखने की कोशिश की तथा पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं। उसके बाद, द्वितीय महायुद्ध में, जब मित्र राष्ट्रों की फौजें सारी दुनियां में फैल गई थीं, अमरीकी सरकार की ओर से भाषावैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न भाषाओं के सरल पाठ्यक्रम तैयार किए गए। इस सिलसिले में हिन्दी में भी कुछ काम हुआ।

हिन्दी का विधिवत् अध्ययन तो भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शुरू हुआ, जब भारत को दुनिया के स्वाधीन तथा लोकतांत्रिक देशों में महत्वपूर्ण स्थान मिला तथा अमरीका और भारत के बीच हर तरह के नए संबंध स्थापित होने लगे। अमरीका के प्रबुद्ध वर्ग में नव स्वतंत्र भारत के प्रति बहुत सहानुभूति थी और भारत के आर्थिक विकास के लिए बहुत आकांक्षाएं तथा शुभ कामनाएँ।

इस संदर्भ में विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि के विद्वानों ने अपनी दृष्टि भारत की आधुनिक स्थिति तथा समस्याओं पर रखकर शोध कार्य करना आरंभ किया। इनकी मदद करने के लिए सरकार तथा स्वतंत्र संस्थाओं ने आर्थिक सहायता देना शुरू किया। चुने हुए विश्वविद्यालयों में अध्ययन-केंद्र बना दिए गए, जहां भारत और भारत के पड़ोसी देशों पर शोधकार्य के लिए हर तरह की सुविधाएं प्राप्त की गईं- विशेषकर पुस्तकों तथा अन्य शोध सामग्री के भंडार। आजकल 13 ऐसे केंद्र हैं, जिनमें शिकागो, कैलिफोर्निया, बिस्कान्सिन, कोलंबिया, पेंसिलेवेनिया, वाशिंगटन, टेक्सस तथा विर्जिनिया विश्वविद्यालय मुख्य हैं। इसके अलावा, भारत संबंधी अध्ययन की कुछ न कुछ सुविधाएँ 100 और विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों में मिलती है।

सब मुख्य केन्द्रों की शिक्षा में, तथा अनेक और जगहों में, भाषाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण है। शुरू से ही हिन्दी तथा भारत की अन्य भाषाएँ सिखाई गई। भारत से आए हुए कुछ विद्वानों ने, जिनकी मातृभाषा हिन्दी थी, तथा अमरीकी भाषावैज्ञानिकों ने मिल कर पाठ्य-पुस्तकें तथा पाठ्यक्रम बनाना तथा हिन्दी के अनेक पहलुओं का अध्ययन करना शुरू किया। विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने लिए छात्रवृत्तियों का भी आयोजन किया गया, जो कि आजकल भी 13 मुख्य विश्वविद्यालयों में प्राप्य है। राष्ट्रभाषा होने के कारण हिन्दी को सब से अधिक महत्व का स्थान दिया गया, और संख्या पढ़ने वाले तथा पढ़ाने वाले सब से अधिक हैं।

जिस समय अध्ययन केंद्र बन रहे थे, उसी समय अच्छे स्तर के भारत-संबंधी ग्रंथागार बनाने के लिए एक और योजना बनाई गई। अमरीकन

कांग्रेस के कानून पी.एल. 480 के आधार पर अमरीका ने भारत को कुछ साल तक गेहूँ बेच दिया था। ऋण चुकाने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गईं। इनमें से एक यह भी थी जिससे भारत में मुख्य भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी में छपी हुई पुस्तकें हर साल अमरीकी विश्वविद्यालयों में पहुँचती हैं। उस योजना की सहायता से कई बहुत अच्छे ग्रंथागार बन गए हैं, जिनमें हिन्दी तथा अन्य विषयों के लिए अध्ययन की बहुत अच्छी सामग्री मिलती है। मुख्य केंद्रों के पुस्तकालयों में हिन्दी का ही 8000 से 24000 पुस्तकें मिलती हैं।

पी. एल. 480 के रुपयों की सहायता से एक योजना बन गई, जिससे अमरीकी विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को तथा विद्वानों को (चाहे अमरीकी हो या किसी और देश के हों) भारत आने के लिए छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं। उस योजना के सहारे पिछले 30 वर्षों में बहुत से विद्वानों ने भारत आकर भाषा सीखी तथा शोधकार्य किया है। इस के कारण अमरीका तथा भारत के विद्वानों में आदान-प्रदान हो पाया और शोध बहुत आगे बढ़ पाया। भारत के विषय में अमरीका में हर साल बहुत से शोध प्रबंध तथा पुस्तकें निकलती हैं, जो वहाँ की जनता तथा सरकार को भारत के बारे में असली जानकारी देने की कोशिश करती हैं।

हिन्दी के विषय में किस तरह का शोध कार्य अब तक हुआ और अभी हो रहा है? उत्तर देना थोड़ा कठिन है, क्योंकि हरेक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार अपना शोध कार्य करता है, किसी खघस सामूहिक कार्यक्रम को लेकर नहीं। परंतु हम यह देख सकते हैं कि पिछले 25 वर्षों में, हालांकि हर तरह के विषयों पर काम हुआ है, शोध की प्रवृत्तियों के विभिन्न स्तर विद्यमान हैं।

शुरू में हिन्दी की मुख्यत: बोलचाल की भाषा के तौर पर पढ़ाया जाता था। उसको अन्य विषयों में शोध करने के लिए एक उपाय समझा जाता था। पढ़ाने वालों का काम था कि समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि के विद्यार्थियों को भारत में लोगों से हिन्दी में बात करने के लिए तैयार कर दिया जाए। उस सिलसिले में बहुत सी प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गईं क्योंकि पढ़ानेवाले मुख्यत: भाषाविज्ञान के विद्वान थे।

उसके बाद, जब भाषा की जानकारी की नींव दृढ़ हो गई तो विद्वानों में एक नई रुचि उत्पन्न हुई साहित्य का अध्ययन करने की। शुरू में खड़ी बोली साहित्य का अध्ययन किया गया था। अनुवाद के द्वारा आधुनिक हिन्दी साहित्य की कुछ महत्वपूर्ण कृतियां अमरीकी जनता के सामने लाई गईं। आगे बढ़कर कुछ

विद्वानों का ध्यान मध्यकालीन ब्रज, अवधी आदि साहित्य की ओर गया और इस क्षेत्र में भी काफी काम हुआ। पिछले 4-5 सालों में, लोक-साहित्य तथा हिन्दी की लोकप्रिय क्षेत्रीय बोलियों पर भी पर्याप्त काम होने लगा है।

अत: हम यह देख सकते हैं कि पिछले 25 वर्षों में अमरीकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन का एक विशेष विकास क्रम हुआ। शुरू में हिन्दी को केवल व्यावहारिक रूप से आधुनिक संपर्क भाषा के रूप में देखा जाता था। अब उनकी समृद्ध तथा विविध साहित्य परंपराओं का अध्ययन विधिवत् ढंग से किया जाने लगा है।

अमरीकी जनता में हिन्दी के प्रति जागरूकता

लगभग 1965 तक, अमरीकी जनता में हिन्दी भाषा के बारे में बहुत कम जानकारी थी, क्योंकि भारत में अंग्रेजी चलती है तथा जो थोड़े-बहुत भारतीय लोग अमरीका आते थे सब अंग्रेजी जानते थे। इसलिए यह भ्रम फैल गया था कि अंग्रेजी ही भारत की राष्ट्रभाषा है। अभी भी अधिकांश लोगों की यही धारणा है।

पिछले 20 वर्षों में तो स्थिति थोड़ी-सी बदल गई है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि भारत से बहुत अधिक लोग अमरीका पहुंच गए हैं और संख्या की वजह से उनकी अपनी भाषाओं का अधिक प्रयोग है। इसके बारे में बागे चलकर चर्चा की जाएगी। दूसरा कारण यह है कि अमरीकी लोगों की ओर से भारत की संस्कृति के अनेक पहलुओं के प्रति आकर्षण होने लगा है। कुछ लोगों में इस समय आध्यात्मिकता के प्रति झुकाव है। भौतिक विकास तथा व्यक्तिगत सफलता के उद्देश्यों से परे हटकर वे जीवन का मूल अर्थ जानना चाहते हैं और दार्शनिकों की तरह प्रश्न पूछते हैं। इस सिलसिले में भारत की अध्यात्म-परंपरा की ओर से आकर्षित होना स्वाभाविक है। बहुत-से लोग, विशेषकर युवा लोग, भारत के अध्यात्म-गुरुओं के चरणों में बैठने के लिए भारत आते हैं, और भारत के गुरु-संत-स्वामी अमरीका में भी पहुँचते हैं, क्योंकि अमरीका में, जैसे कि भारत में, धर्म के पालन तथा प्रचार के पूर्ण स्वतंत्रता है, उन गुरु-संत-स्वामियों का संदेश बहुत दूर तक फैल गया है। आजकल ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने भारत के अध्यात्म-गुरुओं के बारे में नहीं सुना हो और कुछ ऐसे शब्द भी हैं (जैसे गुरु, योग, आश्रम, धर्म, कर्म) जो वहां की बोलचाल की भाषा में प्रचलित हो गए हैं।

उस आध्यात्मिक झुकाव के कारण भारत की ओर प्रवृत्त होकर बहुत-से लोग यह भी चाहते हैं कि जिस देश की आध्यात्मिक परंपराओं को वे सीख रहे

हैं, उसकी भाषाएँ भी सीख लें। इस तरह हिन्दी, संस्कृत आदि की कक्षाओं में विद्यार्थियों का एक नया वर्ग पहुँच गया है।

अध्यात्म के अलावा, भारतीय शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला इत्यादि सांस्कृतिक परंपराओं में भी कुछ लोगों का झुकाव है। भारतीय डिजाइन लोगों को पसन्द है। चित्रकला तथा मूर्तिकाल भी वहाँ बहुत बिकती है, और हस्तकला का भी काफी निर्यात होता है। कुछ अमरीकान चित्रकार भारतीय बिंबों तथा प्रतीकों से भी प्रभावित हैं और इनका प्रयोग अपनी कला में करते हैं। भारतीय संस्कृति में तो आजकल अमरीका में सबसे अधिक रुचि है। भारत के संगीतकार बड़ी संख्या में अमरीका पहुँचते हैं और श्रोतागण उनको बड़ी रुचि से सुनते हैं। वहाँ के बहुत से संगीतकार भारतीय शास्त्रीय संगीत का अध्ययन भी करते हैं तथा भारत में अध्ययन के लिए पहुँचते हैं। उन लोगों में भी भाषा सीखने की इच्छा स्वाभाविक है, और ऐसे लोग भी हिन्दी की कक्षाओं में पहुँचते हैं।

इन सब परिस्थितियों के कारण हिन्दी के बारे में जो ज्ञान पहले था, वो अब कम होने लगा है।

अमरीका के भारतीय और हिन्दी

आजकल अमरीका में प्रवासी भारतीयों की संख्या बहुत बढ़ गई है। यहाँ तक की सरकार उनको अब एक सरकारी अल्प-संख्यक समुदाय मानने लगी है। 1965 से पहले, भारतीय अमरीका में बहुत कम थे तथा इधर-उधर बिखरे हुए थे, जिसके कारण उनकी संस्कृति कम विद्यमान थी। अब भारतीय सब क्षेत्रों में उपस्थित हैं और वे अमरीकन समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। संख्या अधिक होने के कारण, भारतीय लोग स्वयं अपनी संस्कृति सुरक्षित करने तथा बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

आजकल, विशेषकर न्यूयार्क या लॉस ऐंजल्स जैसे बड़े शहरों में, साड़ियों या पगड़ियों को देख कर किसी को आश्चर्य नहीं है, और भारतीय नाम-उपनाम भी कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। विभिन्न शहरों में कुछ ऐसे पड़ोस होने लगे हैं जिनमें बहुत-से भारतीय रहते हैं और हर तरह के रेस्तोराँ तथा दुकानें हैं। कुछ जगहों में हिन्दी फिल्में दिखाई जाती हैं तथा रेडियो के दो-एक हिन्दी प्रोग्राम भी होते हैं। बहुत-से सांस्कृतिक कार्यक्रम, धार्मिक उत्सव आदि होने लगे हैं। मुख्य त्यौहार बड़े धूम-धाम से मनाए जाते हैं। मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारा भी इधर-उधर बनने लगे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक बड़े-बड़े कार्यक्रम भी हुए हैं।

प्रवासी भारतीय लोगों में इस नए सांस्कृतिक उमंग के दो रूप हैं। एक तो ऐसी संस्थाएँ तथा कार्यक्रम जिनमें भारत के सब प्रदेशों के लोग किसी उद्देश्य से मिलते हैं (जैसे 15 अगस्त को मनाने के लिए या सामसायिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए) ऐसे अवसरों पर ज्यादातर अंग्रेजी बोली जाती है। दूसरी ओर, ऐसी संस्थाएँ या सांस्कृतिक कार्य हैं जिनका आधार भारत के विभिन्न प्रादेशिक, या क्षेत्रीय संस्कृतियाँ हैं। उन्हीं में मातृभाषा का प्रयोग (चाहे हिन्दी हो या कोई अन्य भाषा) अधिक किया जाता है, और क्षेत्रीय परंपराओं (जैसे लोकगीत, कविता आदि) का पालन किया जाता है।

परिवारों में मातृभाषा का पालन तब किया जाता है जब बूढ़े लोग भी हैं, जिनकों अंग्रेजी कम आती है। अन्यथा, भारतीय बच्चे अंग्रेजी ही बोलते हैं। लेकिन पिछले 5-6 वर्षों से, ये लड़के-लड़कियाँ विश्वविद्यालयों में पहुँचने लगे हैं। वहाँ हर विद्यार्थी को अकसर अपनी रुचि के अनुसार विदेशी भाषा का दो वर्ष तक अध्ययन करना पड़ता है। जहाँ हिन्दी या कोई और भारतीय भाषा सिखाई जाती है, भारतीय लड़के-लड़कियाँ उसी को सीखना पसंद करते हैं।

निष्कर्ष

अमरीका में हिन्दी का अध्ययन निजी रुचि की बात है। सरकार तथा स्वतंत्र संस्थाएं अध्यापन कार्यक्रमों में कुछ मदद करती हैं, परंतु अध्यापन की दिशा असंख्य पढ़ने-पढ़ाने वालों को व्यक्तिगत प्रेरणा तथा उद्देश्यों से विकसित हुई है। अतः हिन्दी साहित्य में विशेष रुचि लेने वाले साहित्य के विद्वान, भाषाविज्ञान के विद्वान, सामाजशास्त्र आदि के विद्वान आधुनिक भारत की प्रगति तथा समस्याओं पर शोध कार्य कर रहे हैं। भारतीय संगीत तथा अन्य कलाओं में रुचि लेने वाले साधारण लोग तथा कलाकार, अध्यात्म की ओर प्रवृत्त लोग जो किसी भारतीय धर्म-साधना के अनुयायी हैं, पर्यटक लोग जो भारत में घूमना चाहते हैं और ऐसे व्यक्ति जिनमें किसी भारतीय के व्यक्तिगत संपर्क में आने के बाद भाषा सीखने की इच्छा उत्पन्न हुई, तथा प्रवासी भारतीय लड़के-लड़कियाँ जो अमरीका में पैदा होने के कारण अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा अच्छी तरह से नहीं जानते, हिन्दी का अध्ययन करने लगे हैं। अमरीकी विद्वानों में हिन्दी का अध्ययन व्यापक होता जा रहा है, जिससे वे भारतीय विद्वानों के साथ स्थायी संबंध बनाए रख सकें। आम जनता में भारतीय लोगों तथा भारतीय संस्कृति के बारे में अधिक जानकारी होने के कारण हिन्दी के बारे में भी कुछ जानकारी होने

लगी है। अंत में प्रवासी भारतीयों में अपनी संस्कृति तथा भाषा के पालन के लिए भी एक नया उत्साह उत्पन्न हो रहा है।

लीपजिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से लीपजिंग विश्वविद्यालय प्राच्य विद्या को प्रोत्साहन देता आ रहा है और इस क्षेत्र में बड़ा ही सटीक अनुसंधान कार्य करता आ रहा है। उदाहरण के लिए हर्मन ब्रॉक हॉस (1806-1857), अर्नेस्ट विंडिश (1844-1919), जॉहेन्स हर्टल (1872-1955) और फ्रीडरिच बेलर (1889-1980) जैस विद्वानों ने लीपजिंग विश्वविद्यालय में काम किया और इसे प्राच्य विद्या का विश्वविख्यात केन्द्र बनाने में सहायता दी। विश्व के सर्वाधिक विख्यात प्राच्य विद्या विशेषज्ञ मैक्समूलर ने अपने प्रोफेसर हर्मन ब्रॉक हॉस के साथा लीपजिंग विश्वविद्यालय में 1841 में अपना अध्ययन आरंभ किया और यहीं पर उन्होंने अपने व्यापक ज्ञान का भंडार अर्जित किया और इसके बाद वे अपने अध्ययन को जारी रखने के लिए 1844 में पेरिस और उसके बाद बर्नाफ चले गए।

हर्मन ब्रॉक हॉस को उनकी पत्रिका जेटाशिफ्टि देर ह्यूशेन मार्गेन हैंडीशेन गेसल शेफ्ट (जर्नल ऑफ जर्मन ओरियंटल सोसाइटी) के प्रकाशन के कारण बड़ी ख्याति मिली। उन्होंने देवनागरी वर्णमाला का लैटिन लिप्यांकन किया जो आज भी प्रयोग लाया जाता है। अर्नेस्ट विंडिश विशेषत: तुलनात्मक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सक्रिय रहे और उन्होंने वैदिकोत्तर साहित्य पर कार्य किया। जॉहेक्स हर्टल भारतीय परियों की कहानियों के संग्रह, हितोपदेश और पंचतंत्र से संबंधित कार्यों के कारण प्रसिद्ध हुए। हर्टल ऐसे पहले व्यक्ति थे, जो आधुनिक भारतीय भाषाओं को जानते थे और इनमें भी वे सबसे अधिक गुजराती जानते थे और साथ ही हिन्दी और उर्दू जानते थे। फ्रीडरिच वेलर का स्थान बुद्ध धर्म और सर्वाधिक सक्षम विशेषज्ञों में आता है और उन्होंने इस क्षेत्र में अपने मौलिक और तुलनात्मक कार्य के कारण बड़ी ख्याति अर्जित की। उन्होंने लीपजिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने का श्रीगणेश किया। इस कार्य में इन्हें प्रसिद्ध भारतीय विद्वान शांति भिक्षु शास्त्री ने सहायता की। शास्त्री जी ने लीपजिंग विश्वविद्यालय में 1956-1958 तक कार्य किया और हिन्दी भाषा में विद्यार्थियों को सबसे पहले प्रशिक्षण दिया। इन्होंने 'रेव बुनेन देस ठाकुर' (ठाकुर का कुआँ, लीपजिंग 1962) नामक भारतीय लघु कहानियों के एक खंड का संपादन किया।

1960 के बाद लीपजिंग कार्लमार्क्स विश्विद्यालय (1955 में यह नाम पड़ा) में युवा विद्वानों ने बुर्जुआ जर्मन प्राच्य विद्या की प्रगतिवादी परंपराओं का जारी रखते हुए आधुनिक समय की अपेक्षाओं को पूरा करने की दिशा में सक्रिय रूप से कार्य किया। यह नवीन मार्गदर्शन इस जानकारी पर आधारित है कि जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य के साथ मित्रतापूर्ण संबंधों के लिए यह आवश्यक है कि जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य को सभी समस्याओं की व्यापक जानकारी हो, जिससे पारस्परिक संबंध दोनों देशों के लिए अधिक से अधिक लाभकारी हो। अत: पुराने भारतीय भाषाविज्ञान के क्षेत्र में पारंपरिक अनुसंधान कार्य करने के अलावा, भारत के आधुनिक और समसामयिक इतिहास, भारतीय भूगोल और उनके अर्थशास्त्र एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य, विशेषत: हिन्दी और उर्दू के साहित्य क्षेत्र में अनुसंधान कार्य करने की दिशा में विशेष प्रयास किए गए।

1961 में मार्गेट गात्स्लाफ हेलसिंग (जन्म 1934) लीपजिंग में कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय में हिन्दी के क्षेत्र में सक्रिय हुई। इन्होंने सोवियत संघ में लेनिनग्राद और मास्को विश्वविद्यालयों में प्राच्य विद्या का अध्ययन किया। 1962-64 तक इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में पोस्ट-डिप्लोमा का अध्ययन पूरा किया। बाद में शब्दकोश संबंधी कार्य के लिए भारत गईं। उनके मार्ग-निर्देशन में 1973 तक बहुत से छात्रों को हिन्दी का शिक्षण दिया गया। उसके बाद कार्य-विभाजन संबंधी नए निर्णयों के अनुसार प्राच्य विद्या के उच्च शिक्षा के छात्रों को बर्लिन स्थित हंबोल्ड विश्वविद्यालय में मुख्यतया प्राच्य विद्या की शिक्षा दी जाती है।

मा. गात्स्लाफ हेलसिंग ने पहले लीपजिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी व्याकरण और भारत में भाषायी स्थिति पर अनुसंधान कार्य किया। उन्होंने इस क्षेत्र में जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य और भारत के वैज्ञानिक पत्रिकाओं में बहुत से लेख और निबंध लिखे। 1966 में, ''आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में 'हुआ' संयुक्त कृदंत के प्रकार्य'' पर शोध प्रबंध लिखकर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और 1978 में ''स्वतंत्र भारत में हिन्दी के प्रकार्यात्मक विकास की प्रवृत्तियाँ और समस्याएँ'' पर प्रारंभिक शोध-प्रबंध लिखकर कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय से डी. एस.सी की उपाधि प्राप्त की।

उन्हें कई बार अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय सम्मेलनों और संगोष्ठियों में अपने वैज्ञानिक कार्य के परिणामों और हिन्दी की कतिपय समस्याओं तथा भारत की भाषायी स्थिति के बारे में अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने का अवसर

मिला। उन्होंने भी अन्य विद्वानों के साथ 1975 में भारत में नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लिया और 1976 में मॉरीशस में मोका में हुए द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लिया। 1981 में उन्होंने ''प्रेमचंद और भारतीय उपन्यास की भारतीयता'' पर हुए अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया जिसका आयोजन नई दिल्ली की साहित्य अकादमी ने किया था। वह नई दिल्ली में लल्लनप्रसाद व्यास द्वारा संपादित 'विश्व हिन्दी दर्शन' नामक भारतीय पत्रिका की परामर्शदात्री समिति की भी सदस्य हैं।

इसके अतिरिक्त जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य के हिन्दी विद्वान अध्यापन-सामग्री के संपादन का प्रयास करते रहे हैं। इस प्रयास में उन्हें लीपजिंग स्थित पुराने प्रकाशन गृह ''बेब वेरलाग ऐनजीक्लोपेडी'' का, जिसे पहले ओटो हैरेसोविज के नाम से जाना जाता था, सहयोग प्राप्त होता रहा है। इस प्रकाशन गृह ने पहले ही 1945 में हिन्दुस्तानी भाषा पर एक पाठ्य-पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसका संकलन ओटो स्पाइज ने किया था। हिन्दी पर इस प्रकाशन गृह द्वारा संपादित निम्नलिखित अध्यापन-सामग्री उपलब्ध है–

29 वीं शताब्दी के हिन्दी गद्य की उद्धरणिका, दगमर अंसादी द्वारा संशोधित तथा संपादित, लीपजिंग 1967, पृष्ठ 221,

हिन्दी व्याकरण गाइड, लेखिका, मार्गेट गात्स्लाफ हेलसिंग, लीपजिंग, 1967, 1978, 1983, पृष्ठ 197,

हिन्दी जर्मन कोश, लेखक, एरिका क्लेम, लीपजिंग 1971, पृष्ठ 418 (लगभग 12 हजार संदर्भ शब्द),

जर्मन-हिन्दी कोशरू लेखक: मार्गेट गात्स्लाफ हेलसिंग, लीपजिंग, 1977, 1982 पृष्ठ 646 (लगभग 16 हजार संदर्भ शब्द),

जर्मन-हिन्दी वार्तालाप पुस्तक, ले0 दगमर मारकोपा-अंसारी तथा एम. अहमद अंसारी, लीपजिंग, 1981, पृष्ठ 266य

नवीनतम प्रकाशन जॉर्गज ए. जो ग्राफ द्वारा लिखित ''दक्षिण एशिया की भाषाएँ'' नामक भाषायी सर्वेक्षण का रूसी भाषा से जर्मन भाषा में किए गए अनुवाद का प्रकाशन है, जो 1982 में लीपजिंग से प्रकाशित हुआ और जिसमें 167 पृष्ठ हैं। इसका अनुवाद एरिका क्लेम ने किया है।

1963-1968 तक इरेने विटिंग जाहरा (जन्म 1927) ने लीपजिंग कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय में आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में काम किया। उनके विशेष अध्ययन का विषय सुमित्रानंदन पंत का गीतिकाव्य था और इस पर

ही उन्होंने शोधप्रबंध लिखा तथा 1967 में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। एम. गात्स्लाफ में हेलसिंग ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी काम किया। अब तक उन्होंने यशपाल, प्रेमचंद, कृशन चन्दर और कुल भूषण की कुछ लघु कहानियों का हिन्दी से जर्मन में अनुवाद किया जो जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रेपचंद का ''निर्मला'' (लीपजिंग, 1976), भीष्म साहनी का ''बसंती'' (प्रकाशनाधीन) और ''मारीशस की भारतीय लोक कथाएँ'' (लीपजिंग, 1979) का भी हिन्दी से जर्मन भाषा में अनुवाद किया। ये तीनों पुस्तकें फिलिप रैक्लेम जन, प्रकाशन गृह ने प्रकाशित की हैं।

1973 में एक नए प्रयत्न का सूत्रपात हुआ, जो प्राच्य विद्या के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ है। जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य और भारत के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत बर्लिन स्थित हबोल्ट विश्वविद्यालय और नई दिल्ली स्थित केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिसमें पारस्परिक सहयोग से एक ऐसे कोश के संकलन की व्यवस्था है, जिसमें (हबोल्ट विश्वविद्यालय के दायित्व के अधीन) ''हिन्दी-जर्मन'' और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के दायित्व के अधीन) ''जर्मन-हिन्दी'' के खंड होंगे। इन खंडों में लगभग 45 हजार संदर्भ-शब्द होंगे। इन खंडों का कार्य जल्दी ही पूरा हो जाएगा। यह कोश परियोजना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का ही नहीं अपितु राष्ट्रीय सहयोग का भी एक अच्छा उदाहरण है। हम्बोल्ट विश्वविद्यालय, लीपजिंग कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय तथा लीपजिंग स्थित एनजीक्लोपेडिया प्रकाशन-गृह से हिन्दी के विद्वान शामिल किए गए हैं।

इस प्रकार कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विशेषज्ञ भारत में ही नहीं अपितु विश्व भर में एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में हिन्दी के अध्ययन एवं प्रचार के कार्य में संलग्न है और इस प्रकार वे जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य और भारतीय गणराज्य के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को व्यापक एवं सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से सहायता कर रहे हैं।

जर्मनी संघीय गणराज्य में हिन्दी

इस समय जर्मनी-संघीय गणराज्य के विश्वविद्यालयों में हिन्दी तथा दक्षिण एशिया को अन्य आधुनिक भाषाओं और साहित्य का मुख्य विषय के रूप में अध्ययन किया जा रहा है। यह अध्ययन पी.एच.डी. की उपाधि तक केवल

हीडलवर्ग विश्वविद्यालय के साउथ एशिया इंस्टीयूट में ही किया जा सकता है। इसमें कोई गर्व की बात नहीं है। इसके विपरित यह भी कहा जा सकता है कि यह स्थिति एक ऐसे देश के लिए निश्चय ही सन्तोषजनक नहीं है जो परंपरा से भारतीय उपमहाद्वीप के साथ पूरी तरह प्रतिबद्ध रहा है। फिर भी एक ऐसी शुरूआत की गई है कि इससे वर्तमान स्थिति में इस देश में रचनात्मक आत्मआलोचना की प्रवृत्ति में आधुनिक प्राच्यविद्या की समस्याओं और संभावनाओं का परीक्षण करने की आवश्यकता है। कलासिक जर्मन प्राच्यविद्या की व्यापक एवं उपयुक्त परंपरा रही है। अन्य बातों के साथ आधुनिक प्राच्य विद्या का अब तक विकास समान रूप से होता रहा है और अभी भी अपभ्रंश का रूप जो उज्ज्वल सांस्कृतिक अतीत और विकृत वर्तमान के बीच तुलना करने से उभरा है, उस ने हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्य के बारे में हमारे दृष्टिकोण को अधिकांश रूप से निर्धारित किया है।

हिन्दी और अन्य दक्षिण एशियाई भाषाओं के संदर्भ में 'आधुनिक' उस विकास की ओर संकेत करता है जो 19 वीं शताब्दी के पहले 25 वर्षों में प्रारंभ हुआ था अर्थात यह वह समय था जब पश्चिमी चितंन और लेखन, विशेषकर अंग्रेजी का प्रभाव बंगाल के माध्यम से काफी पड़ा था। इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का एक युग था जो भारतीय कलाकारों और बुद्धिजीवियों के प्रयास से पश्चिमी संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ था और जिसमें अंधानुकरण से लेकर आलोचनात्मक अस्वीकरण या सर्जनात्मक ग्रहणशीलता की बात भी थी। यह संघर्ष अभी भी धीमे-धीमे चल रहा है। इस प्रसंग में हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन एक प्रकार से मिश्रित संस्कृति या सांस्कृतिक मिश्रण के भाषायी और साहित्यिक पक्षों का अध्ययन होगा। संस्कृति में जो हास हुआ है और सांस्कृतिक निर्देषिता की जो काल्पनिक अवस्था विलीन हो गई, इस पर शोक प्रकट करना तथा इस संघर्ष को अभारतीय या पश्चिमीकृत रूप कहना विकास का अत्यंत सरलीकरण है। इसके लिए हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इसका जिम्मेदार पश्चिम है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके लिए हम में से कुछ लोग क्षुब्ध भी हैं। उससे हिन्दी और अन्य दक्षिण एशियाई भाषाओं के उन असंख्य प्रयोक्ताओं के साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा कि जो अभी भी कितने उपनिवेशी अतीत के प्रभाव को समाप्त करने में प्रयत्नशील है और जो अपनी भाषा और साहित्य की (चाहे वह मौखिक हो या लिखित) बढ़ती हुई सफलता के लिए प्रयत्नशील हैं।

हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्य के विद्यार्थी के लिए यह समझना इससे अधिक शैक्षिक रुचि का काम है और इस संघर्ष को समझना शैक्षिक दृष्टि से और अच्छा है। ऐसा समझने से हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं को समझने में सहायता मिलेगी। यदि मुख्यत: उन भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन करने का निर्णय सांस्कृतिक दृष्टि से उत्प्रेरित हों तो यह उत्प्रेरणा मानवीय भावनाओं से जुड़ी हुई है।

इस क्षेत्र में जिन देशों की तुलना की जा रही है, उनसे हटकर पहले की उपनिवेशवादी शक्तियां तथा संयुक्त राज्य अमरीका या पूर्वी यूरोपीय देश, जिसमें जर्मन जनवादी गणराज्य भी शामिल है, आगे है। इसके आगे होने के कारण वस्तुत: शिक्षा को कम महत्व देना है। जर्मन संघ गणराज्य के पास कभी भी निश्चित कार्य-शैली या स्पष्ट राजनीतिक उत्प्रेरणा नहीं रही जो दूसरे देशों में कुछ न कुछ मिलती है। हिन्दी तथा अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं के जिस अध्ययन को सरकार ने बड़े पैमाने पर निर्दिष्ट किया है उसके विकास के लिए वह उत्तरदायी है। चूँकि अब भारत और पश्चिम जर्मनी में विकासशील (अर्थात सहायता प्राप्त करने वाले देश) तथा सहायता देने वाले औद्योगिक देश क्रमश: भ्रामक भूमिका निभानी शुरू की है, इसलिए उनके आपसी संबंधों ने उस परंपरागत सरलता को खो दिया है, जो प्रथमत: और अंतत: आपसी सांस्कृतिक सद्भाव पर आधारित था। यही कारण है कि हमारे इस राजनीतिक या शैक्षिक परिवेश में जब कोई विद्यार्थी हिन्दी या किसी अन्य दक्षिण एशियाई भाषा और साहित्य (कलासिकी हो या आधुनिक) के अध्ययन का यदि व्यक्तिगत रूप से निर्णय लेता है तो उसे बिना किसी सरकारी प्रोत्साहन के मदद ही नहीं मिलती। इतना ही नहीं उसे अभी इससे कोई विशेष रोजगार भी मिलने की संभावना नहीं है। वस्तुत: प्राच्यविदों को अभी भी क्षेत्रीय विशेषज्ञों के रूप में सरकार द्वारा मान्यता मिलना शेष है।

वस्तुत: इस देश में अन्य विषयों के साथ-साथ कलासिकी प्राच्यविद्या के विद्यार्थी की अपेक्षा आधुनिक प्राच्यविद् भारत या दूसरे दक्षिण एशियाई देशों के व्यक्तियों और अधिकारियों से प्रोत्साहन तथा समर्थन मिलने पर कार्य कर पाएगा। ऐसा होना निश्चित रूप में उसके ऊँचे हौंसले के लिए घातक है। अगर आंगल-भारतीय कथा-साहित्य को कोई लब्धप्रतिष्ठित भारतीय लेखक और बुद्धिजीवी उससे कहता है (जैसा कि इस देश में कुछ वर्षों पूर्व हुआ था) कि उसे इस पिछड़ी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन पर अपना समय नष्ट नहीं करना

चाहिए या वे ये कहें कि जो कुछ भी आधुनिक भारतीय साहित्य में है वह अंग्रेजी में लिखा जा चुका है।

वस्तुत: अपने पूरे इतिहास में हिन्दी साहित्य शायद ही कभी इतना समृद्ध और जीवंत नजर आया हो जितना वह आज है। यही कारण है कि कोई भी विद्यार्थी जो किसी कठिन भाषा को सीखने की चुनौती स्वीकार करता है वह हिन्दी जैसी कठिन भाषा की ओर आसानी से प्रवृत्त हो सकता है। हालांकि हिन्दी लेखन में दो मुख्य प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ी हैं, पहली तो यह कि साहित्यिक भाषा आम जनता की भाषा के निकट आई है। अगर उसे राजनीतिक शब्दावली में कहें तो यह होगा कि साहित्यिक भाषा का लोकतंत्रीकरण हुआ है, जिसके कारण ज्यादा से ज्यादा पाठक अथवा श्रोता साहित्य में अपनी भूमिका निभा सकते हैं (ठीक वैसे ही जैसे राजनीति खेल रहे हों)। दूसरी विशेषता है साहित्य का भाषायी स्थानीकरण (लिंविस्टिक लोकोलाइजेशन) विशेष रूप से न केवल खड़ी बोली में वरन् लिखित व्याख्यात्मक गद्य के क्षेत्र में 'अनेकता में एकता' का सिद्धांत स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित होता है और यह वह सिद्धांत है जिस पर भारत जैसे विस्तृत और विभिन्नता से भरे देश का भविष्य निश्चित तौर पर निर्भर करता है।

सूरीनाम और हिन्दी

सूरीनाम में रहने वाले भारतीय प्राय: उत्तर भारत से आए हुए हैं और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार प्रदेश के निवासी हैं। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, गुजराती और मराठी हैं। ये सभी भाषाएँ यूरोपीय भाषा वर्ग की हैं। हिन्दी को पाँच प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है। पहाड़ी राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी और बिहारी। इन भाषा क्षेत्रों में कई बोलियाँ हैं। सूरीनाम में हिन्दुस्तानी प्रवासी लोग मुख्य रूप से भोजपुरी और अवधी बोली बोलते थे। इन बोलियों के अतिरिक्त अधिकांश भारतीय मूल के लोग जो सूरीनाम में बस गए थे, उत्तर भारत की सार्वजनिक संपर्क भाषा खड़ी बोली भी जानते थे। खड़ी बोली के अलावा उर्दू का भी प्रयोग होता था।

वास्तव में भारतीय प्रवासियों के आपसी संपर्क के कारण उनकी सभी भाषाएँ मिश्रित होकर विशिष्ट प्रचलित हिन्दी बोली जाती है। साहित्य और अध्यापन के प्रभाव से हिन्दुस्तानी या उर्दू (मुस्लिम) और सामान्य उच्च-हिन्दी (हिन्दू) ज्यादातर मानक भाषा का रूप धारण करने लगी। वर्तमान समय में इस

भाषा का प्रयोग भाषण, पत्र, सूचना आदि में शुद्ध हिन्दुस्तानी या सरल उच्च हिन्दी के रूप में होता है। बोलचाल की भाषा में स्थानीय भाषाओं का भी प्रभाव आ गया है। गयाना पड़ोसी देश से पश्चिमी प्रांत निकेरी में अंग्रेजी का प्रभाव भी पड़ा है। इसी में एक बोली **स्रानांग** तोंगो है जिसे नीग्रो इंगलिश भी कहा जाता है। वास्तव में अधिकांश भारतवंशी होने होने के कारण उनकी बोलचाल की भाषा सूरीनाम की धरती पर विकसित हुई है जिसे ''सरनामी हिन्दी'' कहा जाता है और अब वह केवल सरनामी से जानी जाती है। हिन्दी के अलावा बहुत से भारतवंशी **स्रानांग** तोंगो भी बोलते हैं। विशेष रूप से पुरुष वर्ग और युवा वर्ग हिन्दी के अतिरिक्त यह भाषा अच्छी तरह से बोलते हैं। परिवार में युवा वर्ग प्रायः सरनामी का ही प्रयोग करता है।

पारामारिबो राजधानी में भारतवंशियों द्वारा हिन्दी के अतिरिक्त डच भाषा का अधिक प्रयोग किया जाता है। कुछ ऐसे परिवार हैं जहाँ हिन्दी समझी नहीं जाती। ये परिवार बहुत समय पहले से ही पारामारिबो में बसे हुए हैं। अब कई भारतवंशी हिन्दी सीखने की कोशिश कर रहे हैं।

देश और निवासी

यहाँ दुनियाँ की करीब सभी जातियाँ रह रही हैं - अमरेंद्यन (रेड-इंडियन या भिलनी), नीग्रो, हिन्दुस्तानी, जाबी (इंडोनेशियन), बुश-नीग्रो, चीनी, लिबानिश (यहूदी) परिवार, यूरोपियन आदि। 1980 की जनगणना के अनुसार 39 प्रतिशत हिन्दुस्तानी, 35 प्रतिशत नीग्रो, 18 प्रतिशत इंडोनेशियन, शेष 8 प्रतिशत अन्य जातियाँ हैं। इस प्रकार सूरीनाम देश केरीबियन क्षेत्र में सबसे विषमरूपी समाज है। कई जातियों के साथ-साथ यहाँ कई संस्कृतियाँ और कई भाषाएँ भी हैं। इसकी कुल आबादी लगभग चार लाख है। इस चार लाख में जो भाषाएँ बोली जाती हैं वे हैं - डच, स्रानांग, तोंगों, हिन्दी (सरनामी हिन्दी), उर्दू, जावी, चीनी, अंग्रेजी, बुशनीग्रों की कई भाषाएँ, रेड-इंडियन की कई भाषाएँ आदि। संसार में शायद कोई ऐसा देश हो जहाँ इतनी आबादी में इतनी सारी भाषाएँ बोली जाती हों।

भारतवंशी समाज

आज से यदि 110 वर्षों के भारतवंशियों के इतिहास पर प्रकाश डाला जाए तो यही पता चलता है कि हमारे पूर्वजों ने यहाँ की जमीन को आबाद किया,

भूमि पर खेती की और सूरीनाम में शांति तथा प्रगति के साथ अपना जीवन आरंभ किया। इसी तरह से अफ्रीका तथा एशिया के अन्य आप्रवासियों ने भी इस देश की उन्नति और विकास में योगदान दिया।

सन् 1873 ई0 में भारतवंशी पूर्वजों ने सूरीनाम देश में अपना प्रथम पग रखा। प्रथम जहाज जो आया था वह था ''लालारुख'' जिसमें 410 लोग थे। समुद्र के रास्ते से आने के कारण 11 लोगों की मृत्यु हो गई थी। कुल योग जो प्रथम बार थे 399 इस जहाज ''लालारुख'' ने 4 जून 1873 को सूरीनाम नदी में प्रवेश किया था और 5 जून को हमारे पूर्वजों ने अपना पैर इस देश की धरती पर रखा। अनेक कठिनाइयों और संकटों के बीच अपने पूर्वजों ने आज भी धर्म, संस्कृति, भाषा आदि को सुरक्षित रखा है। इतिहास बताता है कि सन् 1873 ई0 तक प्रायः 56 वर्षों तक किसी न किसी रूप में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था सरकारी विद्यालयों तथा स्वैच्छिक संस्थाओं में निरन्तर चलती रही, किन्तु सन् 1929 से अब तक प्रायः 55 वर्षों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सरकारी विद्यालयों में बंद हो गया और केवल स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा ही कुछ काम होता है।

मॉरीशस में हिन्दी

हिन्द महासागर में अवस्थित मॉरीशस ही वह पहला देश है। जहां सर्वप्रथम दिसंबर 1834 में प्रवासी भारतीयों के चरण पड़े थे। अन्य देशों में विनीडाड 1845, द. अफ्रीका 1860, गुयाना 1870, सूरीनाम जून 1873, फीजी मई, 1879 में भारतीय मजदूर पहुंचे थे। मॉरीशस ही वह प्रथम भारतेतर देश है जहां विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हुआ और राष्ट्र संघ में हिन्दी को स्थान दिलाने का प्रस्ताव भी सर्वप्रथम इसी ने ही रखा था। अतः विश्व हिन्दी साहित्य में मॉरीशस का अपना विशिष्ट स्थान बन गया है। इस समय वहां भावयित्री एवं कारयित्री दोनों प्रतिभाएं एक साथ कार्यरत हैं। हिन्दी पत्रकारिता की दृष्टि से मॉरीशस में सर्वप्रथम 15 मार्चए 1909 को शहिन्दुस्तानी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र हिन्दी, अंग्रेजी तथा गुजराती में एक साथ प्रकाशित होता था। इसके प्रथम संपादक डॉ. मणिलाल थे। इस पत्र के माध्यम से ही वहां के लोगों में सामाजिक राजनीतिक चेतना का उदय होने के साथ-साथ

निज भाषा उन्नति अहै, निज उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान केए मिटै न हिये को सूल।।

का भी अनुभव किया। लेकिन डॉ. मणिलाल के भारत आने के बाद ही इस पत्र का प्रकाशन बंद हो गया। सन् 1910 में डॉ. मणिलाल ने वहां आर्य समाज की स्थापना की और एक प्रेस भी खोला। यहीं से सन् 1911 में 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था। पहले यह पत्र आर्य सभा के पदाधिकारियों की देख रेख में चला। फिर सन् 1916 में पं. काशीनाथ किष्ठो इसके संपादक बने जिन्होंने बड़ी लगन और निष्ठा से इसे कई वर्षों तक जीवित रखा। इसमें आर्य समाज की शिक्षा के साथ साथ वैदिक धर्म को भी प्रधान स्थान मिलता था। इसी वर्ष श्री रामलाल के संपादन में 'ओरिंटल गजेट' नाम का एक और पत्र प्रकाशित हुआ। इसमें भारतीयों के बारे में प्रचुर सामग्री छपती थी। सन् 1920 में इंडोमॉरीशस संघ के तत्त्वाधान में 'मॉरीशस टाइम्स' का प्रकाशन हुआ। 1924 में श्री गजाधर राजकुमार के संपादन में मॉरीशसमित्र' नाम का एक पत्र निकला जिसमें अधिकतर सामाजिक सुधार तथा भ्रातृत्व भावना के लेख छपते थे। फिर सन् 1929 में 'आर्य वीर' नाम का एक द्विभाषिक पत्र निकला। यह एक साप्ताहिक पत्र था जिसके प्रथम संपादक पं. काशीनाथ किष्ठो ही हुए। इसमें आर्य समाज के विचारों का बाहुल्य रहता था।

सन् 1933 में सनातन धर्मावलंबियों में श्री रामासामी नरसीमुलु (नरसिंह दास) के संपादन में 'सनातन धर्मांक' पत्र निकला। जिसमें हिन्दू धर्म और रीति रिवाजों पर विपुल सामग्री दी जाती थी यह एक द्विभाषिक पत्र था। मॉरीशस के भारतवंशियों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से सन् 1936 में इंडियन कल्चरल एसोशिएशन की स्थापना हुई। इस संस्था ने 'इंडयन कल्चरल रिव्यू' नाम का एक पत्र निकाला जिसके प्रथम संपादक थे डॉ. के. हजारी सिंह जो मोक स्थित महात्मा गांधी के वर्तमान निदेशक हैं। इसी संस्थान में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन सन् 1976 में हुआ था। सन् 1936 में रिव्यू के एक पूरक हिन्दी पत्र 'वसंत' का प्रकाशन हुआ जिसके संपादक थे पं. गिरजानन उमाशंकर। कुछ वर्ष प्रकाशित होने के बाद यह पत्र बंद हो गया। पाँच वर्ष पूर्व 'वसंत' का पुनर्जन्म हुआ और इसके वर्तमान संपादक हैं मॉरीशस के प्रसिद्ध लेखक श्री अभिमन्यु अनंत। यह एक मासिक पत्र है तथा महात्मा गांधी संस्थान के तत्त्वाधान में प्रकाशित हो रहा है। यह पूर्ण साहित्यिक धारा पत्र है। इसमें नवोदित रचनाकारों को अधिक स्थान मिलता है। इसका कहानी विशेषांक काफी ख्याति अर्जित कर चुका है। विदेशी हिन्दी पत्रों में वसंत का स्थान सर्वोपरि माना जा सकता है तथा इसका स्तर भी भारतीय श्रेष्ठ पत्रों के समान ही है।

सन् 1942 में पब्लिक रिलेशंस ऑफिस से 'मासिक चिट्ठी' नाम से एक लघु पत्र निकला जो सूचनात्मक अधिक था। सन् 1945 में 'आर्यवीर जागृति' नाम से एक दैनिक पत्र निकला जिसके संपादक थे प्रो. विष्णुदयाल वासुदेव। इसने भी पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी परंतु कुछ वर्षों के बाद इस बंद होना पड़ा। सन् 1948 में 'जनता' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके प्रथम संपादक हुए श्री जयनरायण राय। इसमें साहित्यिक और हिन्दी के लिए समर्पित भाव को स्थान मिला। बाद में इसको कुछ समय के लिए बंद होना पड़ा परंतु पुनः सन् 1974 में इसका पुनःप्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस समय 'जनता' मॉरीशस का सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक माना जाता है तथा इसके वर्तमान संपादक हैं श्री राजेन्द्र अरुण। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के समय इसने हिन्दी प्रचार प्रसार के लिए उत्कृष्ठतम भूमिका निभाई थी। सन् 1948 में ही एक और पत्र 'जमाना' भी विष्णुदयाल बंधु के संपादन में निकला। यह मॉरीशस के हिन्दी लेखकों का सहयोगी पत्र था। और इसमें अधिकतर हिन्दी की रचनाओं का स्थान दिया जाता था।

अब यह पत्र कभी कभार ही निकल पाता है। इसके उपरांत आर्य सभा मॉरीशस ने पुनः 'आर्योदय' नाम का एक और पत्र निकाला। यह पत्र आज भी वैदिक धर्म और हिन्दी की सेवा बड़ी निष्ठा से कर रहा है। सन् 1953 में मॉरीशस आमाल गामटेड के तत्त्वाधान में 'मजदूर' का प्रकाशन हुआ जिसमें प्रवासी भारतीयों के समाचारों को प्रमुखता से छापा जाता था। सन् 1959 में श्री भगतसुरज मंगर और श्री रामलाल विक्रम के संपादन में 'नवजीवन' का प्रकाशन हुआ। फिर सन् 1960 में मॉरीशस हिन्दी परिषद का त्रैमासिक पत्र 'अनुराग' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस पत्रिका को सम्पूर्ण मॉरीशसीय लेखकों का सहयोग प्राप्त था। इसके प्रथम संपादक थे पं. दौलत शर्मा। इसमें कविताए कहानी, नाटक, संस्मरण, भेंटवार्ता तथा निबंध को भरपूर स्थान दिया जाता है। यह पत्र इस समय मॉरीशस का एकमात्र त्रैमासिक साहित्यिक पत्र है। संप्रति इसके संपादक हैं मॉरीशस के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कवि और लेखक श्री सोमदत्त बखौरी। इसी वर्ष 'समाजवाद' पत्र का भी प्रकाशन हुआ जो थोड़े दिनों बाद बंद हो गया। हिन्दू मॉरीशस कांग्रेस ने 'कांग्रेस नाम से तथा प्रशिक्षण महाविद्यालय ने 'प्रकाश' नाम से सन् 1964 में अपने अपने पत्र निकाले। प्रकाशन में वहां के प्रशिक्षणार्थियों की रचनाओं का बाहुल्य होता है। यह पत्र अब भी वार्षिक अंक के रूप में प्रकाशित हो जाता है। प्रो. रामप्रकाश इसके संपादक हैं। सन् 1965 में मॉरीशस में सर्वप्रथम

एक बाल पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसका नाम था 'बाल सखा'। यह पत्रिका हिन्दी लेखक संघ के तत्त्वाधान में प्रकाशित हुई।

सन् 1970 में मॉरीशस के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री मोहनलाल मोहित के संपादन में 'आर्य समाज' का हीरक जयंती विशेषांक प्रकाशित हुआ तथा सन् 1973 में 'वैदिक जरनल' का प्रकाशन। इन दोनों पत्रों का संकल्प हिन्दी भाषा को सुदृढ़ बनाना था। सन् 1974 में त्रियोले से 'आभा' दर्पण' नाम के दो विशुद्ध साहित्यिक पत्र निकले। ये मासिक पत्र थे। 'आभा' के समपादक हैं मॉरीशस के उदयीमान कवि तथा कहानीकार श्री महेश रामजियावन। 'आभा' का कहानी विशेषांक पाठकों में काफी चर्चित रह चुका है। इसी के साथ द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री दयानंदलाल वसंतराय के संपादन में 'शिवरात्रि' वार्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र आज भी अपनी गरिमा और गौरवमयी परंपरा के साथ प्रकाशित होता है। इसमें भी हिन्दी साहित्य को प्रचुर स्थान दिया जाता है तथा संस्कृत शिक्षा के लिए भी कभी-कभार अच्छे लेख प्रकाशित होते हैं। सन् 1975 में हिन्दी सरस्वती संघ, त्रियोले की त्रैमासिक पत्रिका 'रणभेरी' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसमें वहां के हिन्दी रचनाकारों को विशेष रूप से प्रोत्साहन देने का संकल्प है। इस प्रकार मॉरीशस में हिन्दी पत्रों की एक लंबी पृष्ठ शृंखला समय के साथ निरंतर बढ़ती जा रही है जो कि विश्व हिन्दी साहित्य के लिए एक शुभ लक्षण है।

नेपाल में हिन्दी

भारत के उत्तर में लगभग 500 मील की लम्बाई में पूरब से पश्चिम तक फैला नेपाल जहाँ अपनी नैसर्गिक सुषमा और संपदा के लिए एशिया का स्विटजरलैंड कहा जा सकता है, वहीं अपने शौर्य एवं वीरता तथा सांस्कृतिक चेतना के लिए हिमालय की गोद में पला। यह राष्ट्र हिमालय की ही तरह एशिया का सजग प्रहरी भी कहा जा सकता है। इस राष्ट्र ने अपनी सजगता का परिचय बारहवीं शताब्दी से ही देना शुरू कर दिया था, जब भारत पर पश्चिम से लगातार आक्रमणों का नया दौर प्रारंभ हुआ था। तब से लेकर भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना तक अनेक हिन्दू राजाओं जैसे हरिसिंह देव, भारत में अंग्रेजी उपनिवेश के विरुद्ध लड़ने वालों, जैसे तात्या टोपे, बेगम हजरत महल आदि प्रमुख व्यक्तियों का शरणास्थल भी यह देश रहा है।

इस देश में अनेक छोटे-बड़े राजा थे, जो आपस में लड़ते रहते थे। भावी अनिष्टों की कल्पना तथा भारत में लगातार हिन्दू राज्यों की पराजय से शिक्षा लेकर वर्तमान शाहवंशीय शासकों में प्रथम तथा दूरदर्शी नरेश पृथ्वी नारायण शाहदेव ने आज के नेपाल का एकीकरण किया था। यह एक सुखद आश्चर्य की बात है कि जिस महाराजा पृथ्वी नारायण शाह ने नेपाल को एक सूत्र में बाँधा, वह नाथ संप्रदाय के उन्नायक हिन्दी के सुपरिचित कवि, उत्तर भारत में हिन्दू संस्कृति एवं धर्म के महान रक्षक योगी गोरखनाथ के बड़े भक्त ही नहीं, वरन् स्वयं हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। उनके भजन अभी भी रेडियों नेपाल से प्रायः सुनाई पड़ते हैं

फिजी में हिन्दी

प्रशांत महासागर के मोती फिजी में भी भारतीय श्रमिक कुली के रूप में लाए गए थे। वे अपनी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से हिन्दी का अलख जगाए हुए हैं। यह संसार में दूसरा विदेशी राष्ट्र है जहां हिन्दी का बाहुल्य है। फिजी में सर्वप्रथम सन् 1913 में पं. शिवदत्त शर्मा की देखरेख में डॉ. मणिलाल द्वारा संपादित पत्र 'सेटलर' का हिन्दी अनुवाद साइक्लोस्टाइल रूप में प्रकाशित हुआ था। इसका लोगों ने भरपूर स्वागत किया। फिर सन् 1923 में 'फिजी समाचार' का प्रकाशन हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था इसके प्रथम संपादक थे श्री बाबूराम सिंह और अंतिम श्री चंद्रदेव सिंह। यह पत्र कुछ वर्षों तक प्रकाशित होकर बंद हो गया। इसी समय 'भारत पुत्र', 'बुद्धि' तथा 'बुद्धिवाणी' आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ जो अधिक दिन न चल सके और शीघ्र ही इतिहास की एक घटना बन कर रह गए। सन् 1930-40 के मध्य दो मासिक पत्र और निकले, एक पं. श्री कृष्ण शर्मा के संपादन में 'वैदिक संदेश' तथा दूसरा 'सनातन धर्म'। किंतु दोनों पत्र पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना के शिकार हुए और अकाल ही काल कवलित हो गये।

सन् 1935 में 'शांतिदूत' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। पं. गुरुदयाल शर्मा इसके संस्थापक संपादक थे। अब श्री जगनरायण शर्मा संपादक तथा श्रीमती निर्मला पथिक सह-संपादिका हैं। यह फिजी का सर्वाधिका प्रसार वाला हिन्दी पत्र है तथा फिजी टाइम्स समूह प्रकाशन से संबंधित है। इसमें साहित्यिक, राजनीतिक विषयों पर भरपूर सामग्री रहती है। इसका प्रकाशन स्तर भारतीय पत्रों के समान ही है। सन् 1940 के आस पास फिजी में कई हिन्दी

पत्र उदित हुए, जैसे पं. वी. डी. लक्ष्मण के संपादन में 'किसान' अखिल फिजी कृषक महासंघ के तत्त्वधान में 'दीनबंधु' श्री ज्ञानीदास के संपादन में 'ज्ञान' और 'ताराश, आर्य पुस्ताकलय के अन्तर्गत 'पुस्तकालय', श्री काशीराम कुमुद के संपादन में 'प्रवासिनी' तथा श्री राम खेलावन के संपादन में 'प्रकाश' आदि। इन सभी पत्रों में हिन्दी लेखन और साहित्य के अलावा फिजी में प्रवासी भारतीयों की दशा का भी चित्रण होता था। ये सभी पत्र अधिक दिनों तक प्रकाशित न रह सके और एक एक कर सभी बंद हो गये। फिर भी फिजी में हिन्दी पत्रकारिता में इनका योगदान सराहनीय रहा। इसी प्रकार 'जंजाल', 'सनातन प्रकाश' और 'मजदूर' पत्र भी हैं जो दो चार अंकों के बाद अपने अस्तित्त्व की रक्षा न कर सके।

इसके बाद पं. राघवानंद शर्मा के कुशन संपादन में 'जागृति' पत्र का प्रकाशन हुआ जिसने काफी लोकप्रियता प्राप्त की। पहले यह पत्र अर्द्ध साप्ताहिक था। कालांतर में साप्ताहिक हो गया। इसमें किसानों से संबंधित समाचार अधिक रहते थे। कुछ वर्ष पहले ही इसका प्रकाशन बंद हुआ है। सन् 1953 में 'आवाज' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला जिसमें राजनीतिक चेतना के स्वर अधिक थे। श्री ज्ञानदास के संपादन में 'झंकार' साप्ताहिक का प्रकाशन भी हुआ। इसका प्रकाशन बड़े उत्साह के साथ हुआ। इसमें सिने समाचारों का बाहुल्य होने से इसे शीघ्र ही लोकप्रियता मिली, पर सन् 1958 में इसका प्रकाशन बंद हो गया।

सन् 1960 में 'जय फिजी' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके संपादक हैं पं. कमलाप्रसाद मिश्र। यह फिजी का अति लोकप्रिय पत्र है तथा साप्ताहिक रूप में अब भी प्रकाशित हो रहा है। इसका मुद्रण फोटो सेट विधि से होता है। इस पत्र के संपादक पं. कमला प्रसाद मिश्र की हिन्दी सेवा और उनका फिजी में हिन्दी पत्रकारिता में योगदान के आधार पर भारत सरकार ने उन्हें 'विदेशी हिन्दी सेवी' पुरस्कार से भी पुरष्कृत किया। स्व, श्री नंदकिशोर के संपादन में 'फिजी संदेश' का भी प्रकाशन हुआ। इनमें स्थानीय लेखकों को बहुत प्रोत्साहन मिलता था फिर भी ये अधिक लोकप्रिय नहीं हुए और बंद हो गये। सन् 1974 में पं. विवेकानंद शर्मा के कुशल संपादन में 'सनातन संदेश' का प्रकाशन हुआ। यह मासिक पत्र था। यह फिजी की सनातन धर्म सभा का प्रमुख पत्र था। श्री शर्मा के अनथक प्रयासों के बाद भी इसका प्रकाशन अधिक वर्षों तक न हो सका। इसके अतिरिक्त 1926 में 'राजदूत' पत्र का राजकीय प्रकाशन हुआ जिसमें राजकीय बातों को ही प्रश्रय दिया जाता था। इसी प्रकार 'विजय' के भी कुद्द अंक

निकले, पर विजय भी अपनी रक्षा न कर सका और समय के हाथों पराजय को प्राप्त हुआ। फिजी के सूचना मंत्रालय द्वारा 'फिजी वृत्तांत और शंख के भी प्रकाशन हुए जिनमें वहां के जन-जीवन की चर्चाएं प्रधान होती थी। इस प्रकार विश्व हिन्दी पत्रकारिता में फिजी के हिन्दी पत्रों की अविरल अनवरत चली आ रही है।

गुयाना में हिन्दी

यह राष्ट्र भी दक्षिणी अमेरिका में अवस्थित है और यहां भी काफी संख्या में प्रवासी भारतीय रहते हैं। हिन्दी और भारतीय संस्कृति यहां के जन जीवन में सर्वत्र फैली है। यहां सर्वप्रथम हिन्दी पत्र का प्रकाशन एक रविवारीय परिशिष्ट के अंग के रूप में हुआ। यहां से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक पत्र 'आर्गोसी' के रविवारीय अंक में एक पृष्ठ हिन्दी का रहा करता था। जिसमें धार्मिक एवं सामाजिक समाचार ही प्रकाशित होते थे, पर पांच वर्षों तक अविरल प्रकाशित होने के बाद यह पृष्ठ बंद हो गया। अन्य देशों की भांति यहां भी आर्य समाज द्वारा 'आर्य ज्योति' का प्रकाशन होता है जिसमें आर्य समाज के सिद्धांतों तथा वैदिक धर्म के समाचारों को ही स्थान मिलता है। इसके अतिरिक्त सनातन धर्म सभा द्वारा 'अमर ज्योति' नाम का एक पत्र प्रकाशित होता है। पं. रामलाल का हिन्दी पत्रकारिता एवं हिन्दी शिक्षण से अधिक लगाव होने से वहां हिन्दी की ज्योति ज्योतित है। गुयाना का एकमात्र उत्कृष्ट पत्र 'ज्ञानदा' है। यह एक मासिक पत्र है जिसके संपादक श्री योगीराज शर्मा हैं। यह पूर्ण साहित्यिक पत्र है तथा इसका आवरण मुद्रित एवं शेष सामग्री साइक्लोस्टाइल पद्धति से छपती है। श्री शर्मा जी ने इसके अस्तित्त्व के लिए अहोरात्रि श्रम किया और गुयाना में हिन्दी पत्रकारिता को अक्षुण्ण रखा। इस प्रकार गुयाना में हिन्दी पत्रों की अस्मिता प्रेस की असुविधाओं के होते हुए भी सुरक्षित है।

त्रिनीडाड-टुबैगो में हिन्दी

कैरिबियन समुद्र में स्थित त्रिनीडाड-टुबैगो में जो वेस्ट इंडीज के नाम से भी जाना जाता है, भारतीयों की संख्या अधिक है। यहां भी अन्य देशों की भांति भारतीय मजदूर शर्तनामा कुली के रूप में लाए गए थे। हिन्दी का लेखन, पाठन, वाचन अन्य देशों की भांति ही चल रहा है। यहां से सर्वप्रथम

हिन्दी में 'कोहेनूर अखबार' निकला जो अब बंद हो गया है। इसमें धार्मिक सामग्री के अलावा कुछ स्थानीय समाचार भी प्रकाशित होते थे। यहां का सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र 'ज्योति' है। यह एक मासिक पत्र है तथा इसका सर्वप्रथम प्रकाशन मार्च, 1968 को हुआ था। इसके संस्थापक संपादक हैं प्रो. हरिशंकर आदेश। यह पत्र जीवन ज्योति प्रकाशन के अंतर्गत प्रकाशित होता है। पहले यह पत्र हिन्दी शिक्षा संघ द्वारा प्रकाशित होता था परंतु अब संघ के बंद हो जाने पर यह भारतीय विद्या संस्थान के मुख्पत्र के रूप में प्रकाशित होता है। यह प्रत्येक मास की सात तारीख को प्रकाशित होता है। प्रो. आदेश ने इसे साहित्यिक बनाने का भरसक प्रयास किया है जिसमें वे सफल भी हुए हैं। हिन्दी-अंग्रेजी मिश्रित इस पत्र में संगीत की तकनीकी शिक्षा के लिए भी लेख छपते हैं। नवोदित हिन्दी लेखकों को इससे काफी प्रोत्साहन मिलता है। त्रिनिडाड में हिन्दी प्रेस के अभाव में हिन्दी प्रकाशन को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस समय वहां स्वरूपं. काशीप्रसाद मिश्र का एक ही प्रेस है जिसमें पर्याप्त टाइप न होने से मुद्रण में अप्रत्याशित संघर्ष उठाना पड़ता है। अत: ज्योति का प्रकाशन लीथो एवं आफसेट प्रणाली से होता है। फिर भी प्रो. आदेश वहां हिन्दी पत्रकारिता का दीप जलाए हुए हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के मध्य से ही पूज्य बापू का राजनीतिक जीवन प्रारंभ हुआ था। वहां प्रवासी भारतीयों की संख्या अधिक था। यहां से सर्वप्रथम 1903 में 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक का हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संपादक श्री मनसुखलाल नाजर थे। यह डरबन से 13 मील दूर फिनिक्स आश्रम से प्रकाशि होता था और श्री मदनजीत के प्रेस में मुद्रित होता था। गांधी जी की इस पर कड़ी कृपा थी। नाजर जी की मृत्यु के बाद गाँधी जी के अंग्रेज मित्र श्री हर्बर्ट किचन एवं उनके अनंतर श्री हेनरी एस. एल. पोलक इसके संपादक बने। अब यह पत्र बंद हो चुका है। इस पत्र के माध्यम से वहां के प्रवासी भारतीयों में नई चेतना का उदय हुआ था। इसके बाद 5 मई, 1922 को 'हिन्दी' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला जिसके आद्य संपादक थे पं. भवानीदयाल संन्यासी। इससे भी हिन्दी को बढ़ावा मिला। इस प्रकार वहां आज तक हिन्दी की धारा प्रवाहमान है।

बर्मा में हिन्दी

बर्मा कभी भारत का ही अंग था किंतु अब यह एक स्वतंत्र राष्ट्र है। यहां भी प्रचुर मात्रा में प्रवासी भारतीय रहते हैं। यहां हिन्दी के विकास में पं. हरिवदन शर्मा एवं श्री एल. बी' लाठिया का योगदान अद्वितीय है। यहां श्री लाठिया ने 'बर्मा समाचार' का सर्वप्रथम प्रकाशन कर हिन्दी पत्रकारिता की नींव रखी। इसके बाद 'प्राची कलश' मासिक पत्र भी कुछ वर्ष तक प्रकाशित होकर बंद हो गया। सन् 1934 में 'प्राची कलश' हिन्दी दैनिक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके संस्थापक थे श्री अनंतराम मिश्र। फिर कुछ दिनों के बाद 'प्रवासी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ। जिसके संस्थापक, प्रकाशक एवं संपादक श्री 'यामचरण मिश्र ही हुए। सन् 1951 में श्री रामप्रसाद वर्मा ने 'नवजीवन' दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। किंतु कालांतर में दोनों पत्र बंद हो गये। कुछ समय तक 'जागृति' पत्र का भी प्रकाशन हुआ। इसके बाद 1953 में 'ब्रह्मभूमि' मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसके प्रकाशक श्री ब्रह्मानंद एवं संपादक श्री रामप्रसाद वर्मा हैं। यह रंगून से अब तक नियमित प्रकाशित हो रहा है। सन् 1970 में 'आर्य युवक जागृति' पत्रिका का भी मासिक रूप में प्रकाशन हुआ किंतु कुछ काल के बाद इसका प्रकाशन रुक गया। फिर भी बर्मा में हिन्दी पत्रकारिता की ज्योति ब्रह्मभूमि के माध्यम से जल रही है।

हालैंड में हिन्दी

पिछले कुछ वर्षों से सूरीनाम से आए हुए लाखों प्रवासी भारतीयों ने वहां हिन्दी की दीपशिखा प्रज्वलित कर अपने अस्तित्त्व को बनाए रखा है। यहां भारतीय संस्कृति की अनेक संस्थाएं हैं जिनके अंतर्गत हिन्दी शिक्षण एवं प्रकाशन होता है। 'लल्ला रुख' भारतवंशियों की प्रमुख संस्था है। इसी नाम से एक लघु पत्रिका का प्रकाशन होता है जिसमें सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक बातों की सूचनाएं ही छपती हैं। डॉ. जे.पी. कौलेश्वर सुकुल इस पत्र के माध्यम से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

इंग्लैण्ड में हिन्दी

इंग्लैण्ड ही विश्व में पहला राष्ट्र है जहां से सर्वप्रथम 1883 में कालाकांकर नरेश के संपादन में 'हिन्दोस्थान' पत्र का प्रकाशन हुआ। जिसने भारतीय स्वतंत्रता में अभूतपूर्व योगदान दिया था। इसके बाद 'वैदिक पब्लिकेशन्स'

का प्रकाशन हुआ। इसका मुद्रण आफसेट प्रणाली से होता था, इसमें सामाजिक चेतना की ध्वनि अधिक थी। इसके बाद लंदन में हिन्दी प्रचार परिषद की स्थापना हुई और फिर उसी परिषद के मुखपत्र के रूप में सन् 1964 में एक हिन्दी त्रैमासिकी 'प्रवासिनी' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसके संपादक हैं श्री धर्मेंद्र गौतम। इस पत्र के कई विशेषांक निकले जिसमें श्री गोपाल कृष्ण विशेषांक सर्वाधिक चर्चित रहा। हिन्दी एवं राष्ट्रीय चेतना का यह पत्र आज भी प्रकाशित हो रहा है।

नार्वे में हिन्दी

नार्वे के ओसलो विश्वविद्यालय में मास्टर डिग्री के लिए हिंदी का पठन-पाठन किया जाता है तथा कुछ अन्य शहरों में भी प्राथमिक स्तर के स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है। स्वीडन के स्काटहोम विश्वविद्यालय में हिंदी का आधारभूत पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। उप्पसला विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती है।

कनाडा में हिन्दी

कनाडा की यूनिवर्सिटी आफ ब्रिटिश कोलंबिया में हिंदी का 2 वर्ष का पाठ्यक्रम है। मॉन्ट्रियल विश्वविद्यालय में प्रारंभिक स्तर पर और अटावा शहर में बने मुकुल हिंदी हाई स्कूल में 1971 से सभी कक्षाओं में और टोरंटो शहर के कुछ स्कूलों में भी हिंदी पढ़ाई जाती है।

रूस में हिन्दी

रूस में अन्य भारतेतर देशों की अपेक्षा हिन्दी का अध्ययन अध्यापन एवं प्रचार अधिक है। रूस ही ऐसा पहला देश है जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। रूस से हिन्दी के स्तरीय प्रकाशन हुए हैं तथा मास्को में एक हिन्दी प्रकाशन गृह भी स्थापित है। यहीं से सोवियत संघ नाम का एक हिन्दी मासिक पत्र प्रकाशित होता है। यह सचित्र पत्र है तथा सोवियत संबंधों पर आधारित अनेक लेख इसमें प्रकाशित होते रहते हैं। यह पत्र हिन्दी के अतिरिक्त संसार की अन्य 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है। इसके प्रधान संपादक हैं श्री निकोलाई ग्रिवाचोव। मास्को से दूसरा हिन्दी पत्र है। 'सोवियत नारी' यह एक मासिक पत्र है तथा इसकी प्रधान संपादिका हैं- व. ई. फेदोतोवा तथा हिन्दी

संस्करण के संपादक हैं- श्री ई. पा. गोलुबेन। यह भी संसार की लगभग 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है। इसमें सोवियत नारी जीवन का सचित्र चित्रण होता है।

चीन में हिन्दी

चीन संसार में सर्वाधिक आबादी वाला राष्ट्र है। यहां हिन्दी का प्रचार-प्रसार तो नहीं किंतु चीन संबंधी जानकारी विभिन्न देशों को देने के लिए वहां से 'चीन सचित्र' नामक एक हिन्दी मासिक पत्र निकलता है। यह विश्व की 19 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है हिन्दी में इसके 326 अंक अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इसका मुद्रण एवं प्रकाशन बीजिंग से होता है।

जापान में हिन्दी

संसार में सर्वप्रथम सूर्योदय के दर्शन करने वाला ज्वालामुखियों का देश जापान अपनी वैज्ञानिक कुशलता के लिए जग प्रसिद्ध है। यहां हिन्दी का पठन-पाठन अन्य देशों की ही भांति होता है। जापान एवं भारत का सांस्कृतिक एंव साहित्यिक संबंध बहुत प्राचीन है। बौद्ध धर्माबलंबी होने के कारण जापानियों का भारत से भावात्मक लगाव है इसीलिए यहां के लोग हिन्दी सीखते हैं। सन् 1964 में यहां से एक 'अंक' नाम का पत्र प्रकाशित हुआ। जिसके अब तक 21 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त जापान भारत मित्रता संघ का मासिक पत्र 'सर्वोदय' भी प्रकाशित होता है। वस्तुतः यह धार्मिक पत्र है, किंतु इसमें हिन्दी संबंधी सामग्री रहती है। यथार्थ रूप में ये सभी पत्र जापानी से अनूदित हो कर प्रकाशित होते हैं। जापान का प्रथम हिन्दी पत्र 'ज्वालामुखी' है जिसका प्रथम अंक सितंबर, 1980 में टोक्यो से प्रकाशित हुआ था। इसके संपादक हैं श्री योशिअकि सुजुकि। इसके अब तक दो अंक ही प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशन के बारे में संपादक का प्रथम अंक में मत है कि हिन्दी के माध्यम से जापानी साहित्य का परिचय, जापानी साहित्य का अनुवाद, जापानी साहित्य एवं हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, जापानी संस्कृति का परिचय आदि करने से भारत के लोगों को भी इसका लाभ मिलेगा। पत्रिका का नामकरण फुजि पर्वत की भव्यता को लेकर किया गया है। ज्वालामुखी की तरह सदैव हम भी क्रियाशील रहें इसीलिए इस शीर्षक की सार्थकता है।

इस प्रकार भारत से बाहर विश्व के देशों में हिन्दी पत्र पत्रिकएं अपने अपने उपलब्ध साधनों के आधार पर प्रकाशित हो रहीं हैं, जिन्हें देखकर एक 'विश्व हिन्दी' की सहज ही कल्पना हो जाती है।

ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी

ऑस्ट्रेलिया के कैनबरा स्थित विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन होता है। लात्रोवे, मोनाश तथा क्वींसलैंड के विद्यापीठों में भी हिंदी पढ़ाई जाती है।

आने वाली पीढ़ी की भाषा

वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश में विशाल जनसंख्या भारत और चीन के साथ-साथ हिंदी और चीनी के लिए भी फायदेमंद सिद्ध हो रही है। हमारे देश में 1980 के बाद 65 करोड़ से ज्यादा बच्चे पैदा हुए हैं। जो विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षित प्रशिक्षित हो रहे हैं। वे सन् 2025 तक विधिवत प्रशिक्षित पेशेवर के रूप में अपनी सेवाएँ देने के लिए विश्व के समक्ष उपलब्ध होंगे। दूसरी ओर जापान की साठ प्रतिशत से ज्यादा आबादी साठ साल पार करके बुढ़ापे की ओर बढ़ रही है। यही हाल आगामी पंद्रह सालों में अमेरिका और यूरोप का भी होने वाला है । ऐसी स्थिति में विश्व का सबसे तरुण मानव संसाधन होने के कारण भारतीय पेशेवरों की तमाम देशों में लगातार मांग बढ़ेगी। जाहिर है कि जब भारतीय पेशेवर भारी तादाद में दूसरे देशों में जाकर उत्पादन के स्रोत बनेंगे। वहाँ की व्यवस्था परिचालन का सशक्त पहिया बनेंगे तब उनके साथ हिंदी भी जाएगी। ऐसी स्थिति में जहाँ भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की प्रक्रिया में होगा वहाँ हिंदी स्वत: विश्वमंच पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी। इस तरह यह माना जा सकता है कि हिंदी आज जिस दायित्व बोध को लेकर संकल्पित है वह निकट भविष्य में उसे और भी बड़ी भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान करेगा। हिंदी जिस गति तथा आंतरिक ऊर्जा के साथ अग्रसर है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि सन 2020 तक वह दुनिया की सबसे ज्यादा बोली व समझी जाने वाली भाषा बन जाएगी।

समर्थ भाषा और वैज्ञानिक लिपि

यदि हम इन आँकड़ों पर विश्वास करें तो संख्याबल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। हाँ, यह जरूर संभव है कि यह मातृभाषा न होकर दूसरी, तीसरी

अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है। हिंदी में साहित्य-सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह 8वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान 21वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत-अविरल धारा की भाँति प्रवाहमान है। उसका काव्य साहित्य तो संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखता है। उसमें लिखित उपन्यास एवं समालोचना भी विश्वस्तरीय है। उसकी शब्द संपदा विपुल है। उसके पास पच्चीस लाख से ज्यादा शब्दों की सेना है। उसके पास विश्व की सबसे बड़ी कृषि विषयक शब्दावली है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदलते जीवन संदर्भों से दूर हो गए हैं, उनका त्याग भी कर दिया है। आज हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है।

जहाँ तक देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिंदी की शाब्दी और आर्थी संरचना प्रयुक्तियों के आधार पर सरल व जटिल दोनों है। हिंदी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिंदी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है। हम जानते हैं कि विश्व मानव की बदलती चिंतनात्मकता तथा नवीन जीवन स्थितियों को व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिंदी भाषा में है बशर्ते इस दिशा में अपेक्षित बौद्धिक तैयारी तथा सुनियोजित विशेषज्ञता हासिल की जाए। आखिर, उपग्रह चैनल हिंदी में प्रसारित कार्यक्रमों के जरिए यही कर रहे हैं।

मीडिया और वेब पर हिंदी

यह सत्य है कि हिंदी में अंग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा हिंदी माध्यम में एम.बी.ए.का पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसी तरह 'इकोनामिक टाइम्स' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे अखबार हिंदी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्‌घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में

आया कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरंभ हुए थे वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णत: हिंदी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही, 'ई.एस.पी.एन' तथा 'स्टार स्पोर्ट्स' जैसे खेल चैनल भी हिंदी में कमेंट्री देने लगे हैं। हिंदी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह-चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। वह जनसंचार-माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

आज विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा-लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस,चीन,जापान,कोरिया, मध्य एशिया, खाड़ी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिंदी सात चैनलों के माध्यम से धूम मचाए हुए है। विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिंदी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है। हिंदी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं।

माइक्रोसाफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिंदी प्रयोग को बढावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिंदी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।

राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में हिंदी

जहाँ तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनिमय के क्षेत्र में हिंदी के अनुप्रयोग का सवाल है तो यह देखने में

आया है कि हमारे देश के नेताओं ने समय-समय पर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में भाषण देकर उसकी उपयोगिता का उद्घोष किया है। यदि अटल बिहारी वाजपेयी तथा पी.वी.नरसिंहराव द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में दिया गया वक्तव्य स्मरणीय है तो श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राष्ट्र मंडल देशों की बैठक तथा चन्द्रशेखर द्वारा दक्षेस शिखर सम्मेलन के अवसर पर हिंदी में दिए गए भाषण भी उल्लेखनीय हैं। यह भी सर्वविदित है कि यूनेस्को के बहुत सारे कार्य हिंदी में सम्पन्न होते हैं। इसके अलावा अब तक विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, त्रिनिदाद, लंदन, सुरीनाम तथा न्यूयार्क जैसे स्थलों पर सम्पन्न हो चुके हैं जिनके माध्यम से विश्व स्तर पर हिंदी का स्वर सम्भार महसूस किया गया। अभी आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव बान की मून ने दो-चार वाक्य हिंदी में बोलकर उपस्थित विश्व हिंदी समुदाय की खूब वाह-वाही लूटी। हिंदी को वैश्विक संदर्भ और व्याप्ति प्रदान करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई है। इन विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर हिन्दी अध्ययन अध्यापन की सुविधा है जिसका सर्वाधिक लाभ विदेशी अध्येताओं को मिल रहा है।

4

बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी

'हिंदी' शब्द विदेशियों का दिया हुआ है। फारसी में संस्कृत की 'स' ध्वनि ह हो जाती है, अत: सिंध से हिंद और सिंधी से हिंदी बना। शब्दार्थ की दृष्टि से हिंद (भारत) की किसी भाषा को हिंदी कहा जा सकता है। प्राचीनकाल में मुसलमानों ने इसका प्रयोग इस अर्थ में किया भी है पर वर्तमान काल में सामान्यत: इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड को भाषा के लिए होता है, जो पश्चिम में जैलसमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं - पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, झारखंडी, कुमायूँनी, मगही आदि।

पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत पाँच बोलियाँ हैं - खड़ी बोली, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। खड़ी बोली अपने मूल रूप में मेरठ, बिजनौर के आस-पास बोली जाती है। इसी के आधार पर आधुनिक हिंदी और उर्दू का रूप खड़ा हुआ। बांगरू को जाटू या हरियानवी भी कहते हैं। यह पंजाब के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार बांगरू खड़ी बोली का ही एक रूप है जिसे पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है। ब्रजभाषा मथुरा के आस-पास ब्रजमंडल में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा में उच्च कोटि का काव्य निर्मित हुआ। इसलिए इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा कहा गया। मध्यकाल में यह बोली संपूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हो गई थी। पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ अन्य प्रांतों के शब्दों और प्रयोगां का भी ग्रहण है। कन्नौजी गंगा के मध्य दोआब की बोली है। इसके एक ओर ब्रजमंडल है और दूसरी ओर अवधी का क्षेत्र। यह ब्रजभाषा से इतनी मिलती-जुलती है कि इसमें रचा गया जो थोड़ा बहुत साहित्य है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। बुंदेलखंड में ब्रजभाषा के अच्छे कवि हुए हैं जिनकी काव्यभाषा पर बुंदेली का प्रभाव है।

पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिंदी की तीन शाखाएँ हैं - अवधी, बघेली और के छत्तीसगढ़ी। अवधी अर्धमागधी प्राकृत की परंपरा में है। यह अवध में बोली जाती है। इसके दो भेद हैं - पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं। तुलसी के रामचरितमानस में अधिकांशत: पश्चिमी अवधी मिलती हैं और जायसी के पदमावत में पूर्वी अवधी। बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है। छत्तीसगढ़ी पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक फैले हुए भूभाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता। वर्तमान काल में कुछ लोकसाहित्य रचा गया है।

बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी

हिंदी प्रदेश की तीन उपभाषाएँ और हैं - बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी।

बिहारी की तीन शाखाएँ हैं - भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहार के एक कस्बे भोजपुर के नाम पर भोजपुरी बोली का नामकरण हुआ। पर भोजपुरी का प्रसार बिहार से अधिक उत्तर प्रदेश में है। बिहार के शाहाबाद, चंपारन और सारन जिले से लेकर गोरखपुर तथा बारस कमिश्नरी तक का क्षेत्र भोजपुरी का है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के अधिक निकट है। हिंदी प्रदेश की बोलियों में भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक हैं। इसमें प्राचीन साहित्य तो नहीं मिलता पर ग्रामगीतों के अतिरिक्त वर्तमान काल में कुछ साहित्य रचने का प्रयत्न भी हो रहा है। मगही के केंद्र पटना और गया हैं। इसके लिए कैथी लिपि का व्यवहार होता है। इसमें कोई साहित्य नहीं मिलता। मैथिली गंगा के उत्तर में दरभंगा के आस-पास प्रचलित है। इसकी साहित्यिक परंपरा पुरानी है। विद्यापति के पद प्रसिद्ध ही हैं। मध्ययुग में लिखे मैथिली नाटक भी मिलते हैं। आधुनिक काल में भी मैथिली का साहित्य निर्मित हो रहा है।

राजस्थानी का प्रसार पंजाब के दक्षिण में है। यह पूरे राजपूताने और मध्य प्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का संबंध एक ओर ब्रजभाषा से है और दूसरी ओर गुजराती से। पुरानी राजस्थानी को डिंगल कहते हैं। जिसमें चारणों का लिखा हिंदी का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी में गद्य साहित्य की भी पुरानी परंपरा है। राजस्थानी की चार मुख्य बोलियाँ या विभाषाएँ हैं- मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। मारवाड़ी का प्रचलन सबसे अधिक है। राजस्थानी के अंतर्गत कुछ विद्वान् भीली को भी लेते हैं।

पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं। इसका प्रसार हिंदी प्रदेश के उत्तर हिमालय के दक्षिणी भाग में नेपाल से शिमला तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं - पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है जिसे नेपाली और परंबतिया भी कहा जाता है। मध्यवर्ती पहाड़ी कुमायूँ और गढ़वाल में प्रचलित है। इसके दो भे हैं - कुमायूँनी और गढ़वाली। ये पहाड़ी उपभाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें पुराना साहित्य नहीं मिलता। आधुनिक काल में कुछ साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ विद्वान् पहाड़ी को राजस्थानी के अंतर्गत ही मानते हैं।

प्रयोग-क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण

हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है--

(क) हिन्दी क्षेत्र- हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: सत्रह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में इस प्रकार विभक्त करके रखा जा सकता है- पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पहाड़ी हिन्दी और बिहारी हिन्दी।

(ख) अन्य भाषा क्षेत्र- इनमें प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं- दक्खिनी हिन्दी (गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि), बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी तथा शिलंगी हिन्दी (बाजार-हिन्दी) आदि।

(ग) भारतेतर क्षेत्र- भारत के बाहर भी कई देशों में हिन्दी भाषी लोग काफी बड़ी संख्या में बसे हैं। सीमावर्ती देशों के अलावा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, रुस, जापान, चीन तथा समस्त दक्षिण पूर्व व मध्य एशिया में हिन्दी बोलने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। लगभग सभी देशों की राजधानियों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी एक विषय के रूप में पढ़ी-पढ़ाई जाती है। भारत के बाहर हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ - ताजुज्बेकी हिन्दी, मॉरीशसी हिन्दी, फीजी हिन्दी, सूरीनामी हिन्दी आदि हैं।

खड़ी बोली

खड़ी बोली से तात्पर्य खड़ी बोली हिंदी से है जिसे भारतीय संविधान ने राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इसे आदर्श (स्टैंडर्ड) हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी की मूल आधार स्वरूप बोली होने का गौरव प्राप्त है। खड़ी बोली पश्चिम रुहेलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अंबाला जिले की उपभाषा है जो ग्रामीण जनता के द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती है। इस प्रदेश में रामपुर, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, सहारनपुर, देहरादून का मैदानी भाग, अंबाला तथा कलसिया और भूतपूर्व पटियाला रियासत के पूर्वी भाग आते हैं।

खड़ी बोली वह बोली है जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो जैसे ठेंठ हिंदी। आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है।

'खड़ी बोली' (या खरी बोली) वर्तमान हिंदी का एक रूप है जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की सृष्टि की गई और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्राय: दिल्ली और उसके पूरबी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे और ब्रजभाष तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आस-पास की बोली ग्रहण की और उसका नाम खड़ी (खरी?) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे-धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए जिससे अंत में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी 14वीं शताब्दी में पहले-पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। 15वीं और 16 वीं शताब्दी में कोई-कोई हिंदी के कवि भी अपनी कविता में कहीं कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे, पर उनकी संख्या प्राय: नहीं के समान थी। अधिकांश कविता बराबर अवधी और ब्रजभाषा में ही होती रही। 18वीं शताब्धी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य मेंय और तभी से मानों वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मुंशी सदासुखलाल, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान हिंदी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृत प्रचुर वर्तमान हिंदी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

वर्तमान हिंदी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति तथा इसके संबंध में विभिन्न मत

अत्यंत प्राचीन काल से ही हिमालय तथा विंध्य पर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रख्यात है। इसी के बीच के प्रदेश को मध्य प्रदेश कहा जाता है जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का केंद्रबिंदु है। संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत विभिन्न युगों में इस मध्यदेश की भाषा थी। कालक्रम से शौरसेनी प्राकृत के पश्चात् इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोलचाल

की) शौरसेनी अपभ्रंश भाषा ही कालांतर में कदाचित् खड़ी बोली (हिंदी) के रूप में पारिणत हुई है। इस प्रकार खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है, यद्यपि इस अपभ्रंश का विकास साहित्यक रूप में नहीं पाया जाता। भोज और हम्मीरदेव के समय से अपभ्रंश काव्यों की जो परंपरा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की झलक दिखाई पड़ती है। इसके उपरांत भक्तिकाल के आरंभ में निर्गुण धारा के संत कवि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्त्व में लाई गई और उसका मूलरूप उर्दू है, जिससे आधुनिक हिंदी की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री, डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार खड़ी बोली अंग्रेजों की देन है। मुगल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के प्रचार में सहायता पहुँची। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि उर्दू के अनेक शायर पूरब की ओर आने लगे उसी प्रकार दिल्ली के आस-पास के हिंदू व्यापारी जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना, आदि पूरबी शहरों में फैलने लगे। इनके साथ ही साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की भाषा भी खड़ी बोली हो गई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के संबंध में वे लिखते हैं कि यह समय हिंदी (खड़ीबोली) भाषा के जन्म का समय था जिसका अविष्कार अंग्रेजों ने किया था और इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लू जी लाल ने अपने प्रेमसागर में किया।

लल्लू जी लाल और पं. सदल मिश्र को खड़ी बोली के उन्नायक अथवा इसको प्रगति प्रदान करनेवाला तो माना जा सकता है, परंतु इन्हें खड़ी बोली का जन्मदाता कहना सत्य से युक्त तथा तथ्यों से प्रमाणित नहीं है। खड़ी बोली की प्राचीन परंपरा के संबंध में ध्यानपूर्वक विचार करने पर इस कथन की अयथार्थता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है।

मुसलमानों के द्वारा इसके प्रसार में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं बल्कि खड़ी बोली की ही एक शैली मात्र है जिसमें फारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता पाई जाती है तथा जो फारसी लिपि में लिखी

जाती है। उर्दू साहित्य के इतिहास पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित है। अनेक मुसलमान कवियों ने फारसी मिश्रित खड़ी बोली में, जिसे वे 'रेख्ता' कहते थे, कविता की है। यह परंपरा 18वीं 19वीं शती में दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह तथा लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह तक चलती रही।

साधारणत: लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा मुंशी सदासुखलाल खड़ी बोली गद्य के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं परंतु इनमें से किसी को भी इसकी परंपरा को प्रतिष्ठित करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आधुनिक खड़ी बोली गद्य की परंपरा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को प्राप्त है जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्य शैली का प्रवर्तन किया। कालांतर में लोगों ने भारतेंदु की शैली अधिक अपनाई।

वस्तुत: आधुनिक हिंदी साहित्य खड़ी बोली का ही साहित्य है जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यत: व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के शब्दों और प्रकृतियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में वर्तमान है।

बृजभाषा

बृजभाषा मूलत: बृज क्षेत्र की बोली है। (श्रीमद्भागवत के रचनाकाल में 'ब्रज' शब्द क्षेत्रवाची हो गया था। विक्रम की 13वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक भारत के मध्य देश की साहित्यिक भाषा रहने के कारण ब्रज की इस जनपदीय बोली ने अपने उत्थान एवं विकास के साथ आदरार्थ 'भाषा' नाम प्राप्त किया और 'ब्रजबोली' नाम से नहीं, अपितु 'ब्रजभाषा' नाम से विख्यात हुई। अपने विशुद्ध रूप में यह आज भी आगरा, हिण्डौन सिटी,धौलपुर, मथुरा, मैनपुरी, एटा और अलीगढ़ जिलों में बोली जाती है। इसे हम 'केंद्रीय बृजभाषा' के नाम से भी पुकार सकते हैं।

बृजभाषा में ही प्रारम्भ में काव्य की रचना हुई। सभी भक्त कवियों ने अपनी रचनाएं इसी भाषा में लिखी हैं जिनमें प्रमुख हैं सूरदास, रहीम, रसखान, केशव, घनानंद, बिहारी, इत्यादि। हिन्दी फिल्मों के गीतों में भी बृज भाषा के शब्दों का प्रमुखता से प्रयोग किया गया है।

भौगोलिक विस्तार

अपने विशुद्ध रूप में ब्रजभाषा आज भी आगरा, धौलपुर, हिण्डौन सिटी, मथुरा, मैनपुरी, एटा और अलीगढ़ जिलों में बोली जाती है। इसे हम 'केंद्रीय ब्रजभाषा' के नाम से भी पुकार सकते हैं। केंद्रीय ब्रजभाषा क्षेत्र के उत्तर पश्चिम की ओर बुलंदशहर जिले की उत्तरी पट्टी से इसमें खड़ी बोली की लटक आने लगती है। उत्तरी-पूर्वी जिलों अर्थात् बदायूँ और एटा जिलों में इसपर कन्नौजी का प्रभाव प्रारंभ हो जाता है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा, 'कन्नौजी' को ब्रजभाषा का ही एक रूप मानते हैं। दक्षिण की ओर ग्वालियर में पहुँचकर इसमें बुंदेली की झलक आने लगती है। पश्चिम की ओर गुड़गाँव तथा भरतपुर का क्षेत्र राजस्थानी से प्रभावित है।

ब्रज भाषा आज के समय में प्राथमिक तौर पर एक ग्रामीण भाषा है, जो कि मथुरा-आगरा केन्द्रित ब्रज क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य दोआब के इन जिलों की प्रधान भाषा है–

1. मथुरा,
2. आगरा,
3. फिरोजाबाद,
4. मैनपुरी,
5. एटा,
6. हाथरस,
7. बुलंदशहर,
8. गौतम बुद्ध नगर,
9. अलीगढ़,
10. कासगंज।

गंगा के पार इसका प्रचार बदायूँ, बरेली होते हुए नैनीताल की तराई, उत्तराखंड के उधम सिंह नगर जिले तक चला गया है। उत्तर प्रदेश के अलावा इस भाषा का प्रचार राजस्थान के इन जिलों में भी है–

1. भरतपुर,
2. धौलपुर,
3. हिण्डौन सिटी।

करौली जिले के कुछ भाग (हिण्डौन सिटी)। जिसके पश्चिम से यह राजस्थानी की उप-भाषाओं में जाकर मिल जाती है।

हरियाणा में यह दिल्ली के दक्षिणी इलाकों में बोली जाती है–जैसे फरीदाबाद जिला और गुड़गाँव और मेवात जिलों के पूर्वी भाग।

विकास यात्रा

इसका विकास मुख्यत: पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उससे लगते राजस्थान व मध्य प्रदेश में हुआ। मथुरा, भरतपुर, हिण्डौन सिटी, धौलपुर, आगरा, ग्वालियर आदि इलाकों में आज भी यह मुख्य संवाद की भाषा है। इस एक पूरे इलाके में बृजभाषा या तो मूल रूप में या हल्के से परिवर्तन के साथ विद्यमान है। इसीलिये इस इलाके के एक बड़े भाग को बृजांचल या बृजभूमि भी कहा जाता है।

भारतीय आर्यभाषाओं की परंपरा में विकसित होनेवाली 'ब्रजभाषा' शौरसेनी अपभ्रंश की कोख से जन्मी है। जब से गोकुल वल्लभ संप्रदाय का केंद्र बना, ब्रजभाषा में कृष्ण विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। इसी के प्रभाव से ब्रज की बोली साहित्यिक भाषा बन गई। भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि महात्मा सूरदास से लेकर आधुनिक काल के विख्यात कवि श्री वियोगी हरि तक ब्रजभाषा में प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य समय समय पर रचे जाते रहे।

स्वरूप

जनपदीय जीवन के प्रभाव से ब्रजभाषा के कई रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु थोड़े से अंतर के साथ उनमें एकरूपता की स्पष्ट झलक हमें देखने को मिलती है।

ब्रजभाषा की अपनी रूपगत प्रकृति औकारांत है अर्थात् इसकी एकवचनीय पुंलिंग संज्ञाएँ तथा विशेषण प्राय: औकारांत होते हैं, जैसे खुरपौ, यामरौ, माँझौ आदि संज्ञा शब्द औकारांत हैं। इसी प्रकार कारौ, गोरौ, साँवरौ आदि विशेषण पद औकारांत है। क्रिया का सामान्य भूतकालिक एकवचन पुंलिंग रूप भी ब्रजभाषा में प्रमुखरूपेण औकारांत ही रहता है। यह बात अलग है कि उसके कुछ क्षेत्रों में '"' श्रुति का आगम भी पाया जाता है। जिला अलीगढ़ की तहसील कोल की बोली में सामान्य भूतकालीन रूप '"' श्रुति से रहित मिलता है, लेकिन जिला मथुरा तथा दक्षिणी बुलंदशहर की तहसीलों में '"' श्रुति अवश्य पाई जाती है। जैसे–

'कारौ छोरा बोलौ' -(कोल, जिला अलीगढ़)।

'कारौ छोरा बोल्यौ' -(माट जिला मथुरा)।

'कारौ लौंडा बोल्यौ' -(बरन, जिला बुलंदशहर)।

कन्नौजी की अपनी प्रकृति ओकारांत है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूपों में ब्रजभाषा जहाँ औकारांतता लेकर चलती है वहाँ कन्नौजी औकारांतता का अनुसरण करती है। जिला अलीगढ़ की जलपदीय ब्रजभाषा में यदि हम कहें कि– 'कारौ छोरा बोलौ' (= काला लड़का बोला) तो इसे ही कन्नौजी में कहेंगे कि–'कारो लरिका बोलो। भविष्यत्कालीन क्रिया कन्नौजी में त्रिंतरुपिणी होती है, लेकिन ब्रजभाषा में वह कृदंत: पिणी पाई जाती है। यदि हम 'लड़का जाएगा' और 'लड़की जाएगी' वाक्यों को कन्नौजी तथा ब्रजभाषा में रूपांतरित करके बोलें तो निम्नांकित रूप प्रदान करेंगे–

कन्नौजी में – (1) लरिका जइहै। (2) बिटिया जइहै।

ब्रजभाषा में – (1) छोरा जाइगौ। (2) छोरी जाइगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के सामान्य भविष्यत् काल रूप में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार परिवर्तित होती है, जब कि कन्नौजी में एक रूप रहती है।

इसके अतिरिक्त कन्नौजी में अवधी की भाँति विवृति की प्रवृत्ति भी पाई जाती है जिसका ब्रजभाषा में अभाव है। कन्नौजी के संज्ञा, सर्वनाम आदि वाक्यपदों में संधिराहित्य प्राय: मिलता है, किंतु ब्रजभाषा में वे पद संधिगत अवस्था में मिलते हैं। उदाहरण–

(1) कन्नौजी –'बउ गओ' (= वह गया)।

(2) ब्रजभाषा –'बो गयौ' (= वह गया)।

उपर्युक्त वाक्यों के सर्वनाम पद 'बउ' तथा 'बो' में संधिराहित्य तथा संधि की अवस्थाएँ दोनों भाषाओं की प्रकृतियों को स्पष्ट करती हैं।

क्षेत्र विभाजन

ब्रजभाषा क्षेत्र की भाषागत विभिन्नता को दृष्टि में रखते हुए हम उसका विभाजन निम्नांकित रूप में कर सकते हैं–

(1) केंद्रीय ब्रज अर्थात् आदर्श ब्रजभाषा–अलीगढ़, मथुरा तथा पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा को 'आदर्श ब्रजभाषा' नाम दिया जा सकता है।

(2) बुदेली प्रभावित ब्रजभाषा–ग्वालियर के उत्तर पश्चिम में बोली जानेवाली भाषा को यह नाम प्रदान किया जा सकता है।

(3) राजस्थान की जयपुरी से प्रभावित ब्रजभाषा–यह भरतपुर तथा उसके दक्षिणी भाग में बोली जाती है।

(4) सिकरवाड़ी ब्रजभाषा–ब्रजभाषा का यह रूप ग्वालियर के उत्तर पूर्व के अंचल में प्रचलित है जहाँ सिकरवाड़ राजपूतों की बस्तियाँ पाई जाती हैं।

(5) जादोबाटी ब्रजभाषा–करौली के क्षेत्र तथा चंबल नदी के मैदान में बोली जानेवाली ब्रजभाषा को 'जादौबारी' नाम से पुकारा गया है। यहाँ जादौ (यादव) राजपूतों की बस्तियाँ हैं।

(6) कन्नौजी से प्रभावित ब्रजभाषा–जिला एटा तथा तहसील अनूपशहर एवं अतरौली की भाषा कन्नौजी से प्रभावित है।

ब्रजभाषी क्षेत्र की जनपदीय ब्रजभाषा का रूप पश्चिम से पूर्व की ओर कैसा होता चला गया है, इसके लिए निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

जिला गुड़गाँवा में - 'तमासो देखने कू गए। आपस् मैं झग्रो हो रह्यौ हो। तब गानो बंद हो गयो।'

जिला बुलंदशहर में–'लौंडा गॉम् कू आयौ और बहू सू बोल्यौ कै मैं नौक्री कू जा्गौ।'

जिला अलीगढ़ में–'छोरा गाँम् कूँ आयौ औरु बऊ ते बोलौ (बोल्यौ) कै मैं नौक्री कूँ जा्गो।'

जिला एटा में–'छोरा गॉम् कूँ आओ और बऊ ते बोलो कै मैं नौक्री कूँ जाउँगो।'

इसी प्रकार उत्तर से दक्षिण की ओर का परिवर्तन द्रष्टव्य है-

जिला अलीगढ़ में–'गु छोरा मेरे घ ते चलौ गयौ।'

जिला मथुरा में -'बु छोरा मेरे घ तैं चल्यौ गयौ।'

जिला आगरा में -'मुक्तौ रुपइया अप्नी बइयरि कूँ भेजि दयौ।'

ग्वालियर (पश्चिमी भाग) में - 'बानैं एक् बोकरा पाल लओ। तब बौ आनंद सै रैबे लगो।'

मारवाड़ी भाषा

मारवाड़ी राजस्थान में बोली जाने वाली एक क्षेत्रीय भाषा है। यह राजस्थान की एक मुख्य भाषा है। इसकी लिपि देवनागरी है। इसकी कई उप बोलियां भी है।

राजस्थानी–राजस्थान की मुख्य भाषा राजस्थानी है इसकी खुद की लिपि जिसे मोड़िया लिपि भी हैं। परन्तु इस लिपि के विकास में राजपुताने राजरस्थान

के राजा-महाराजा (वर्तमान में राजस्थान राज्य) व राजस्थान सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। पिछले 40-50 सालों से इस भाषा के विकास पर बातें तो बहुत होती रही है पर कार्य के मामले में कोई विशेष प्रगति नहीं दिखी। इन दिनों सन् 2011 से कोलकाता के श्री शम्भु चौधरी इस दिशा में काफी कार्य किया है। राजस्थानी भाषा कि लिपि के संदर्भ में यह गलत प्रचार किया जाता रहा कि इसकी लिपि देवनागरी है जबकि राजस्थान के पुराने दस्तावेजों से पता चलता है कि इसकी लिपि मोड़िया है। उस लिपि को महाजनी भी कहा जाता है। हांलाकि मोड़िया लिपि को भी महाजनी लिपि कहा जाता है। कुछ लोग मोड़ी लिपि को ही मोड़िया लिपि मानते रहे। जब इसके विस्तार में देखा गया तो दोनों लिपि में काफी अन्तर है।

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों के पारस्परिक संयोग एवं सम्बन्धों के विषय में लिखा तथा वर्गीकरण किया है। ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार है–

1. पश्चिमी राजस्थान में बोली जाने वाली बोलियाँ - मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढारकी, बीकानेरी, बाँगड़ी, शेखावटी, खेराड़ी, मोड़वाडी, देवड़ावाटी आदि।

2. उत्तर-पूर्वी राजस्थानी बोलियाँ - अहीरवाटी और मेवाती।

,3. मध्य-पूर्वी राजस्थानी बोलियाँ - ढूँढाड़ी, तोरावाटी, जैपुरी, काटेड़ा, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़, नागर चोल, हड़ौती।

4. दक्षिण-पूर्वी राजस्थान - रांगड़ी और सोंधवाड़ी

5. दक्षिण राजस्थानी बोलियाँ - निमाड़ी आदि।

मालवी भाषा

भारत के पश्चिम मध्यप्रदेश में विन्ध्य की तलहटी में जो पठार है उसे कम से कम दो हजार वर्षो से मालव (मालवा) कहा जा रहा है। यहाँ के लोग भाषा और पोशाक से कहीं भी पहचान में आते रहे। मौसम की यहॉ सदा कृपा रही है। इसीलिए सदा सुकाल के सुरक्षित क्षेत्र के रूप में इसकी सर्वत्र मान्यता रही है।

इस मालवा की बोली मालवी कहलाती है। वह पन्द्रह जिलों के प्राय: डेढ़ करोड़ लोगों की भाषा है। मालवा क्षेत्र की सदा से राजनीतिक पहचान रही है। भौगोलिक समशीतोष्णता का आकर्षण रहा है।

धार्मिक उदारता, सामाजिक समभाव, आर्थिक निश्चिन्तता, कलात्मक समृद्धि से सम्पन्न विक्रमादित्य, भर्तृहरि, भोज जैसे महानायकों की यह भूमि रही है जहाँ कालिदास, वराहमिहिर जैसे दैदीप्यमान नक्षत्रों ने साधना की।

मालवा के वसुमित्र ने विदेशी ग्रीकों को, विक्रमादित्य ने शकों तथा प्रकाश धर्मा और यशोधर्मा ने हूणों को पराजित कर स्वतंत्रता संग्राम की परंपरा पुरातनकाल से ही स्थापित कर दी थी। मालवा का अपना सर्वज्ञात विक्रम संवत् भी है। यहाँ भीमबेटका जैसे विश्वविख्यात पुरातत्त्व के स्थान हैं। उज्जयिनी, विदिशा, महेश्वर, धार, मन्दसौर जैसे यहाँ पारम्परिक सांस्कृतिक केन्द्र हैं जहाँ निरन्तर जीवन संस्कार पाता रहा। यहॉ की बोली मालवी की चिरकाल से समृद्धि होती रही जो अब क्रमशः उजागर होती जा रही है। मालवी का लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। लोक नाट्य माच, गीत, कथा वार्ताएँ, पहेलियां, कहावतें आदि मालवी की अपनी शक्ति है। इसकी शब्द सम्पदा अत्यंत समृद्ध है। इसकी उच्चारण पद्धति नाट्शास्त्र युग से आज तक वैसी ही है।

तुलनात्मक अध्ययन द्वारा मालवी बोली तथा संस्कृति की शक्ति तथा व्यापकता को अभी पूरी तरह प्रकट करने के लिए और प्रयासों की अपेक्षा है।

नई हवा में क्षरण होती मालवी लोक संस्कृति की विभिन्न धाराओं की सुरक्षा के लिए त्वरित उपाय करने होंगे।

इस सबके लिए साहित्य-संस्कृति के समर्पित मर्मज्ञ साधकों के साथ ही राजनीतिक-प्रशासनिक समर्थ सम्बल की भी अत्यंत आवश्यकता है।

बघेली

बघेली या बाघेली, हिन्दी की एक बोली है, जो भारत के बघेलखण्ड क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, एवं अनूपपुर मेंय उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद एवं मिर्जापुर जिलों में तथा चत्तगढ़ के बिलासपुर एवं कोरिया जनपदों में बोली जाती है। इसे 'बघेलखण्डी', 'रिमही' और 'रिवई' भी कहा जाता है।

छत्तीसगढ़ी भाषा

छत्तीसगढ़ी भारत में छत्तीसगढ प्रांत में बोली जाने वाली एक भाषा है। यह हिंदी के काफी निकट है और इसकी लिपि देवनागरी है। इसका अपना समृद्ध साहित्य है।

छत्तीसगढ़ी 2 करोड़ लोगों की मातृभाषा है। यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है और छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख भाषा है। राज्य की 82.56 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरी क्षेत्रों में केवल 17 प्रतिशत लोग रहते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि छत्तीसगढ़ का अधिकतर जीवन छत्तीसगढ़ी के सहारे गतिमान है। यह अलग बात है कि गिने-चुने शहरों के कार्य-व्यापार राष्ट्रभाषा हिन्दी व उर्दू, पंजाबी, उडिया, मराठी, गुजराती, बाँग्ला, तेलुगू, सिन्धी आदि भाषा में एवं आदिवासी क्षेत्रों में हलबी, भतरी, मुरिया, माडिया, पहाड़ी कोरवा, उराँव आदि बोलियों के सहारे ही संपर्क होता है। इस सबके बावजूद छत्तीसगढ़ी ही ऐसी भाषा है जो समूचे राज्य में बोली, व समझी जाती है। एक तरह से यह छत्तीसगढ़ राज्य की संपर्क भाषा है। वस्तुतः छत्तीसगढ़ राज्य के नामकरण के पीछे उसकी भाषिक विशेषता भी है।

छत्तीसगढ़ी की प्राचीनता

सन् 875 ईस्वी में बिलासपुर जिले के रतनपुर में चेदिवंशीय राजा कल्लोल का राज्य था। तत्पश्चात एक सहस्त्र वर्ष तक यहाँ हैहयवंशी नरेशों का राजकाज आरंभ हुआ। कनिंघम (1885) के अनुसार उस समय का "दक्षिण कोसल" ही "महाकोसल" था और यही "बृहत् छत्तीसगढ़" था, जिसमें उडीसा, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के कुछ जिले, अर्थात् सुन्दरगढ़, संबलपुर, बलाँगीर, बौदफुलवनी, कालाहाँडी, कोरापुट, भंडारा, चंद्रपुर, शहडोल, मंडला, बालाघाट शामिल थे। हैहयवंशियों ने इस अंचल में अर्धमागधी से विकसित बोली का प्रचार कार्य प्रारंभ किया जो यहाँ कि पूर्ववर्ती स्थानीय द्रविड़ आदि बोलियों पर राजकीय प्रभुत्व वाली सिद्ध हुई। इससे वे बोलियाँ बिखर कर पहाड़ी एवं वन्यांचलों में सिमट कर रह गई और इन्हीं क्षेत्रों में छत्तीसगढ़ी का प्राचीन रूप स्थिर होने लगा। छत्तीसगढ़ी के प्रांरभिक लिखित रूप के बारे में कहा जाता है कि वह 1703 ईस्वी के दंतेवाडा के दंतेश्वरी मंदिर के मैथिल पंडित भगवान मिश्र द्वारा शिलालेख में है।

छत्तीसगढ़ी साहित्य

श्री प्यारेलाल गुप्त अपनी पुस्तक ' प्राचीन छत्तीसगढ़' में बड़े ही रोचकता से लिखते हैं - ' छत्तीसगढ़ी भाषा अर्धमागधी की दुहिता एवं अवधी की सहोदरा है ' (पृ 21 प्रकाशक रविशंकर विश्वविद्यालय, 1973)। ' छत्तीसगढ़ी और

अवधी दोनों का जन्म अर्धमागधी के गर्भ से आज से लगभग 1080 वर्ष पूर्व नवीं-दसवीं शताब्दी में हुआ था।'

डॉ. भोलानाथ तिबारी, अपनी पुस्तक ' हिन्दी भाषा' में लिखते हैं- ' छत्तीसगढ़ी भाषा भाषियों की संख्या अवधी की अपेक्षा कहीं अधिक है और इस - से यह बोली के स्तर के ऊपर उठकर भाषा का स्वरुप प्राप्त करती है।[8]

भाषा साहित्य पर और साहित्य भाषा पर अवलंबित होते हैं। इसीलिये भाषा और साहित्य साथ-साथ पनपते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि छत्तीसगढ़ी लिखित साहित्य के विकास अतीत में स्पष्ट रुप में नहीं हुई है। अनेक लेखकों का मत है कि इसका कारण यह है कि अतीत में यहाँ के लेखकों ने संस्कृत भाषा को लेखन का माध्यम बनाया और छत्तीसगढ़ी के प्रति जरा उदासीन रहे।

इसीलिए छत्तीसगढ़ी भाषा में जो साहित्य रचा गया, वह करीब एक हजार साल से हुआ है।

अनेक साहित्यको ने इस एक हजार वर्ष को इस प्रकार विभाजित किया है–

(1) गाथा युग (सन् 1000 से 1500 ई. तक)

(2) भक्ति युग - मध्य काल (सन् 1500 से 1900 ई. तक)

(3) आधुनिक युग (सन् 1900 से आज तक)

ये विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुसार किया गया है। यद्यपि प्यारेलाल गुप्त जी का कहना ठीक है कि - ' साहित्य का प्रवाह अखण्डित और अव्याहत होता है।' श्री प्यारेलाल गुप्त जी ने बड़े सुन्दर अन्दाज से आगे कहते है - ' तथापि विशिष्ट युग की प्रवृत्तियाँ साहित्य के वक्ष पर अपने चरण-चिह्न भी छोड़ती है : प्रवृत्यानुरुप नामकरण को देखकर यह नहीं सोचना चाहिए कि किसी युग में किसी विशिष्ट प्रवृत्तियों से युक्त साहित्य की रचना ही की जाती थी तथा अन्य प्रकार की रचनाओं की उस युग में एकान्त अभाव था।'

यह विभाजन किसी प्रवृत्ति की सापेक्षिक अधिकता को देखकर किया गया है।

एक और उल्लेखनीय बत यह है कि दूसरे आर्यभाषाओं के जैसे छत्तीसगढ़ी में भी मध्ययुग तक सिर्फ पद्यात्मक रचनाएँ हुई है।

मैथिली

मैथिली नेपालके उप-राष्ट्रिय भाषा हैं जो मुख्य रूप से भारत में उत्तरी बिहार और नेपाल की तराई के ईलाकों में बोली जाने वाली भाषा है। यह प्राचीन भाषा हिन्द

आर्य परिवार की सदस्य है और भाषाई तौर पर हिन्दी, बांग्ला, असमिया, उड़िया और नेपाली से इसका प्रमुख श्रोत संस्कृत भाषा है जिसके शब्द 'तत्सम' वा 'तद्भव' रूप में मैथिली में प्रयुक्त होते हैं साथ ही मौलिक 'देशज' व अन्य भाषाओं से आए कतिपय 'विदेशज' शब्द भी शब्दावली को समृद्ध करते हैं।

पहले इसे मिथिलाक्षर तथा कैथी लिपि में लिखा जाता था जो बांग्ला और असमिया लिपियों से मिलती थी पर कालान्तर में देवनागरी का प्रयोग होने लगा। मिथिलाक्षर को तिरहुता या वैदेही लिपी के नाम से भी जाना जाता है। यह असमिया, बांगला व उड़िया लिपियों की जननी है। उड़िया लिपी बाद में द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क के कारण परिवर्तित हुई।

मैथिली का प्रथम प्रमाण रामायण में मिलता है। यह त्रेता युग में मिथिला नरेश राजा जनक की राज्यभाषा थी। इस प्रकार यह इतिहास की प्राचीनतम भाषा मानी जाती है। प्राचीन मैथिली के विकास का शुरूआती दौर प्राकृत और अपभ्रंश के विकास से जोड़ा जाता है। लगभग 700 इस्वी के आस-पास इसमें रचनाएं की जाने लगी। विद्यापति मैथिली के आदिकवि तथा सर्वाधिक ज्ञाता कवि हैं। विद्यापति ने मैथिली के अतिरिक्त संस्कृत तथा अवहट्ट में भी रचनाएं लिखीं। ये वह दो प्रमुख भाषाएं हैं जहाँ से मैथिली का विकास हुआ। भारत की लगभग 5.6 प्रतिशत आबादी लगभग 7-8 करोड़ लोग मैथिली को मातृ-भाषा के रुप में प्रयोग करते हैं और इसके प्रयोगकर्ता भारत और नेपाल के विभिन्न हिस्सों सहित विश्व के कई देशों में फैले हैं। मैथिली विश्व की सर्वाधिक समृद्ध, शालीन और मिठास पूर्ण भाषाओं में से एक मानी जाती है। मैथिली भारत में एक राजभाषा के रूप में सम्मानित है। मैथिली की अपनी लिपि है, जो एक समृद्ध भाषा की प्रथम पहचान है। नेपाल हो या भारत कही भी सरकार के द्वारा मैथिली भाषा के विकास हेतु कोई कदम नहीं उठाया गया है। अब जा कर गैर-सरकारी संस्था और मीडिया द्वारा मैथिली के विकास का थोड़ा प्रयास हो रहा है। अभी 15/20 रेडियो स्टेशन ऐसे है जिसमें मैथिली भाषा में कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। समाचार हो या नाटक कला और अन्तरवार्ता भी मैथिली हो रहा है। किसी किसी रेडिओ में तो 50% से अधिक कार्यक्रम मैथिली में हो रहा है। ये पिछले 2/3 वर्षो से विकास हो रहा है ये सिलसिला जारी है। टीवी में भी अब मैथिली में खबर दिखाती है। नेपाल में कुछ चैनल है जैसे नेपाल 1, सागरमाथा चैनल, तराई टीवी और मकालू टीवी है।

मैथिली साहित्य का अपना समृद्ध इतिहास रहा है और चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी के कवि विद्यापति को मैथिली साहित्य में सबसे ऊँचा दर्जा प्राप्त है। विद्यापति के बाद के काल में गोविन्द दास, चन्दा झा, मनबोध, पंडित सीताराम झा, जीवनाथ झा (जीवन झा) प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं।

भारत की साहित्य अकादमी द्वारा मैथिली को साहित्यिक भाषा का दर्जा पंडित नेहरू के समय 1965 से हासिल है। 22 दिसंबर 2003 को भारत सरकार द्वारा मैथिली को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया गया है और नेपाल सरकार द्वारा मैथिली को नेपाल में दूसरे स्थान में रखा गया है। फिर भी इसके विकास के लिए नेपाल की सरकार ने अभी तक कोई कदम नहीं उठाया है। जबकि मैथिली भी देवनागरी लिपि में ही लिखा जाता है बावजूद इसका विकास नहीं हो रहा है। मधेशी विरोधी सरकार होना भी इसका एक कारण है और भारत में तो कुछ विकास ही नहीं हुआ, हांलाकि अब गैर-सरकारी माध्यम से थोड़ा विकास हो रहा है। जैसे की एफएम रेडियो द्वारा मैथिली भाषा में खबर वाचन करना। लगभग नेपाल में 15 से 20 रेडियो स्टेशन द्वारा कोई ना कोई एक कार्यक्रम प्रसारित करता है। 15 रेडियो स्टेशन में करीब 50% कार्यक्रम प्रसारण होता है। 2/3 वर्ष से हो रहा है और ये सिलसिला अभी भी जारी है।

कन्नौजी भाषा

कन्नौज और उसके आस-पास बोली जाने वाली भाषा को कन्नौजी या कनउजी भाषा कहते हैं। 'कान्यकुब्ज' से 'कन्नौज' शब्द व्युत्पन्न हुआ और कन्नौज के आस-पास की बोली 'कन्नौजी' नाम से अभिहित की गयी। कन्नौज वर्तमान में एक जिला है जो उत्तर प्रदेश में है। यह भारत का अति प्राचीन, प्रसिद्ध एवं समृद्ध नगर रहा है। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों रामायण आदि में मिलता है। कन्नौजी का विकास शौरसेनी प्राकृत की भाषा पांचाली प्राकृत से हुआ। इसीलिए आचार्य किशोरीदास बाजपेई ने इसे पांचाली नाम दिया। वस्तुतः पांचाल प्रदेश की मुख्य बोली 'पांचाली' अर्थात् 'कन्नौजी' ही है। यह बोली उत्तर में हरदोई, शाहजहाँपुर और पीलीभीत तक तथा दक्षिण में इटावा, मैनपुरी की भोगाँव, मैनपुरी तथा करहल तहसील, एटा की एटा और अलीगंज तहसील, बदायूँ की बदायूँ तथा दातागंज तहसील, बरेली की बरेली, फरीदपुर तथा नवाबगंज तहसील, पीलीभीत, हरदोई (संडीला तहसील में गोसगंज तक), खेरी की मुहम्मदी

तहसील तथा सीतापुर की मिस्रिख तहसील में बोली जाती है। स्पष्ट है कि उत्तर पांचाल के अनेक जनपदों में तथा दक्षिण पांचाल के लगभग समस्त जनपदों में 'कन्नौजी' का ही प्रचार-प्रसार है।

कन्नौजी का क्षेत्र

कन्नौजी का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है, परन्तु भाषा के सम्बंध में यह कहावत बड़ी सटीक है कि-

कोस-कोस पर पानी बदले दुइ-दुइ कोस में बानी।

व्यवहार में देखा जाता है कि एक गाँव की भाषा अपने पड़ोसी गाँव की भाषा से कुछ न कुछ भिन्नता लिए होती है। इसी आधार पर कन्नौजी की उपबोलियों का निर्धारण किया गया है।

कन्नौजी उत्तर प्रदेश के कन्नौज, औरैया, मैनपुरी, इटावा, फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहांपुर, कानपुर, पीलीभीत जिलों के ग्रामीण अंचल में बहुतायत से बोली जाती है। कन्नौजी भाषा कनउजी, पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती हैं।

कन्नौजी की उप-बोलियाँ

कन्नौजी भाषा क्षेत्र में विभिन्न बोलियों का व्यवहार होता है, जिनको इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है- मध्य कन्नौजी, तिरहारी, पछरुआ, बंग्रही, शहजहाँपुरिया, पीलीभीती, बदउआँ, अन्तर्वेदी। पहचान की दृष्टि से कन्नौजी औकारान्त प्रधान बोली है। ब्रजभाषा और कन्नौजी में मूल अन्तर यही है कि कन्नौजी के औकारान्त और एकारान्त के स्थान पर ब्रजभाषा में 'औकारान्त' और 'ऐकारान्त' क्रियाएँ आती हैं-

गओ - गयौ, खाओ - खायौ चले - चलै, करे - करै

कन्नौजी की ध्वनियाँ

इसकी ध्वनियो में मध्यम 'ह' का लोप हो जाता है- जाहि, जाइ शब्दारम्भ में ल्ह, र्ह, म्ह् व्यंजन मिलते हैं- ल्हसुन, हँट, महंगाई आदि। अन्त्य अल्पप्राण महाप्राण में बदल जाता है- हाथ झ हात्। स्वरों में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है- अइँचत, जुआँ, इंकार, भउजाई, उंघियात, अनेंठ, मों (मुँह)। 'य' के स्थान पर 'ज' हो जाता है- यमुना-जमुना, यश-जस। 'व' के स्थान पर 'ब' का व्यवहार होता है- वर-बर, वकील-बकील। कहीं - कहीं पर 'व' के स्थान

पर 'उ' भी प्रयुक्त होता है- अवतार-अउतार। उसमें अवधी की भाँति उकारान्त की प्रवृत्ति भी पाई जाती है- खेत-खेतु, मरत-मत्तु। कहीं-कहीं 'ख' के स्थान पर 'क' उच्चरित होता है- भीख-भीक, 'ण' 'ड़' हो जाता है- रावण-रावड़, गण-गड़। 'स' के स्थान पर 'ह'- मास्टर-महट्टर, सप्ताह-हप्ताह। उपेक्षाभाव से उच्चरित संज्ञा शब्दों में 'टा' प्रत्यय का योग विशेष उल्लेखनीय है- बनियाँ-बनेटा, किसान-किसन्टा, काछी-कछेटा, बच्चा-बच्चटा अदि।

कन्नौजी का व्याकरण

कन्नौजी के स्वरों में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है- अइँचत, जुआँ, इंकार, भउजाई, उंघियात, अनेंठ, मों आदि। 'ऐ' और 'औ' स्वर संयुक्त स्वर 'अइ' और 'अउ' के रूप में प्रयुक्त होते हैं- गैया झ गइया, ऐनक-अइनक, औकात-अउकात। कन्नॉजी के स्त्रीलिंग प्रत्यय- ई, न, नी, इया हैं। घोड़ी, धोबिन, मास्टरनी, जाटिन, कुतरिया। इसके क्रिया रूप इस प्रकार हैं- वर्तमान निश्चयार्थ रूप-

पुरुष	**एक वचन**	**बहु वचन**
उत्तम पुरुष-चलौ	**चलउँ**	
मध्यम पुरुष-उदाहरण	उदाहरण	
अन्य पुरुष-उदाहरण	उदाहरण	

पुरुष एक वचन बहु वचन

उत्तम पुरुष-चलौ, चलउँ चलैं, चलइँ
मध्यम पुरुष-चलैं, चलइ चलौ, चलउ
अन्य पुरुष-चलै, चलइ चलैं, चलइँ

भविष्य निश्चयार्थ

उत्तम पुरुष-चलिहौं/चलिहउँ चलिहैं/चलिहइँ
मध्यम पुरुष-चलिहै/चलिहइ चलिहौ/चलिहउ
अन्य पुरुष-चलिहै/चलिहइ चलिहैं/चलिहइँ

आज्ञार्थ

मध्यम पुरुष-चल चलु चलौ चलउ
अन्य पुरुष-चलै चलइ चलैंचलइँ

इसकी सहायता एवं अस्तित्ववाचक क्रिया के रूप हैं-
वर्तमान काल में- हूँ, हो, हैगो, हइँ, हैंगे।
भूतकाल में- हतो, रहो आदि।
भविष्यत काल में- हुइहो, हैहूँ, हुइहइ आदि।

वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्यय

त, तु (खात, खातु), भूतकालिक ओ (गओ),
क्रियार्थक संज्ञा- न, नु, नो, बो (चलन, चलनु, चलनो, चलिबो),
पूर्वकालिक- के, इके (उठके, उठिके है।)
आज्ञासूचक क्रियापद प्राय- 'उ' के संयोग से निर्मित होते हैं- चलउ, गाबउ।

परामर्श बोधक शब्द- 'अउ' व 'अइँ' के संयोग से बनते हैं- चलिअइ, चलअइँ, गइअउ, गइअइँ।

कुछ विशिष्ट क्रिया विशेषण- चट्ट सइ, गम्म दइ, भट्ट सइ, छल्ल सइ, झट्ट सइ, गप्प सइ, टन्न सइ आदि।

अवधी

अवधी हिंदी क्षेत्र की एक उपभाषा है। यह उत्तर प्रदेश में 'अवध क्षेत्र' (लखनऊ, सुल्तानपुर, बाराबंकी, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर, फैजाबाद, प्रतापगढ़) तथा फतेहपुर, मिरजापुर, जौनपुर आदि कुछ अन्य जिलों में भी बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा बघेलखंड में बघेली नाम से प्रचलित है। 'अवध' शब्द की व्युत्पत्ति 'अयोध्या' से है। इस नाम का एक सूबा मुगलों के राज्यकाल में था। तुलसीदास ने अपने 'मानस' में अयोध्या को 'अवधपुरी' कहा है। इसी क्षेत्र का पुराना नाम 'कोसल' भी था जिसकी महत्ता प्राचीन काल से चली आ रही है।

भाषा 'शास्त्री डॉ. सर 'जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन' के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार अवधी बोलने वालों की कुल आबादी 1615458 थी जो सन् 1971 की जनगणना में 28399552 हो गई। मौजूदा समय में शोधकर्ताओं का अनुमान है कि 6 करोड़ से ज्यादा लोग अवधी बोलते हैं। उत्तर प्रदेश के 19 जिलों- सुल्तानपुर, अमेठी, बाराबंकी, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, कौशांबी, फतेहपुर, रायबरेली, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, गोंडा, फैजाबाद

व अंबेडकर नगर में पूरी तरह से यह बोली जाती है। जबकि 6 जिलों- जौनपुर, मिर्जापुर, कानपुर, शाहजहांबाद, बस्ती और बांदा के कुछ क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता है। बिहार के 2 जिलों के साथ पड़ोसी देश नेपाल के 8 जिलों में यह प्रचलित है। इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशों- मॉरिशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

गठन की दृष्टि से हिंदी क्षेत्र की उपभाषाओं को दो वर्गों-पश्चिमी और पूर्वी में विभाजित किया जाता है। अवधी पूर्वी के अंतर्गत है। पूर्वी की दूसरी उपभाषा छत्तीसगढ़ी है। अवधी को कभी-कभी बैसवाड़ी भी कहते हैं। परंतु बैसवाड़ी अवधी की एक बोली मात्र है जो उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली और फतेहपुर जिले के कुछ भागों में बोली जाती है।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस एवं मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत सहित कई प्रमुख ग्रंथ इसी बोली की देन है। इसका केन्द्र अयोध्या है। अयोध्या लखनऊ से 120 किमी की दूरी पर पूर्व में है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पं महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राममनोहर लोहिया, कुंवर नारायण की यह जन्मभूमि है। उमराव जान, आचार्य नरेन्द्र देव और राम प्रकाश द्विवेदी की कर्मभूमि भी यही है। रमई काका की लोकवाणी भी इसी भाषा में गुंजरित हुई। हिंदी के रीतिकालीन कवि द्विजदेव के वंशज अयोध्या का राजपरिवार है। इसी परिवार की एक कन्या का विवाह दक्षिण कोरिया के राजघराने में अरसा पहले हुआ था। हिंदी के वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने अवधी भाषा और व्याकरण पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। फाह्यान ने भी अपने विवरण में अयोध्या का जिक्र किया है। आज की अवधी प्रवास और संस्कृतिकरण के चलते खड़ी बोली और अंग्रेजी के प्रभाव में आ रही है।

अवधी के पश्चिम में पश्चिमी वर्ग की बुंदेली और ब्रज का, दक्षिण में छत्तीसगढ़ी का और पूर्व में भोजपुरी बोली का क्षेत्र है। इसके उत्तर में नेपाल की तराई है जिसमें था डिग्री आदि आदिवासियों की बस्तियाँ हैं जिनकी भाषा अवधी से बिलकुल अलग है।

व्याकरण

हिंदी खड़ीबोली से अवधी की विभिन्नता मुख्य रूप से व्याकरणात्मक है। इसमें कर्ता कारक के परसर्ग (विभक्ति) 'ने' का नितांत अभाव है। अन्य परसर्गों

के प्राय: दो रूप मिलते हैं- ह्स्व और दीर्घ। (कर्म-संप्रदान-संबंध : क, काय करण-अपादान : स-त, से-तेय अधिकरण रू म, मा)।

संज्ञाओं की खड़ीबोली की तरह दो विभक्तियाँ होती हैं- विकारी और अविकारी। अविकारी विभक्ति में संज्ञा का मूल रूप (राम, लरिका, बिटिया, मेहरारू) रहता है और विकारी में बहुवचन के लिए 'न' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है (यथा रामन, लरिकन, बिटियन, मेहरारुन)। कर्ता और कर्म के अविकारी रूप में व्यंजनान्त संज्ञाओं के अंत में कुछ बोलियों में एक ह्स्व 'उ' की श्रुति होती है (यथा रामु, पूतु, चोरु)। किंतु निश्चय ही यह पूर्ण स्वर नहीं है और भाषाविज्ञानी इसे फुसफुसाहट के स्वर-ह्स्व 'इ' और ह्स्व 'ए' (यथा सांझि, खानि, ठेलुआ, पेहंटा) मिलते हैं।

संज्ञाओं के बहुधा दो रूप, ह्स्व और दीर्घ (यथा नद्दी नदिया, घोड़ा घोड़वा, नाऊ नउआ, कुत्ता कुतवा) मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अवधी क्षेत्र के पूर्वी भाग में एक और रूप-दीर्घतर मिलता है (यथा कुतउना)। अवधी में कहीं-कहीं खड़ीबोली का ह्स्व रूप बिलकुल लुप्त हो गया है, यथा बिल्ली, डिब्बी आदि रूप नहीं मिलते बेलइया, डेबिया आदि ही प्रचलित हैं।

सर्वनाम में खड़ीबोली और ब्रज के 'मेरा तेरा' और 'मेरो तेरो' रूप के लिए अवधी में 'मोर तोर' रूप हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वी अवधी में पश्चिमी अवधी के 'सो' 'जो' 'को' के समानांतर 'से' 'जे' 'के' रूप प्राप्त हैं।

क्रिया में भविष्यत्काल के रूपों की प्रक्रिया खड़ीबोली से बिलकुल भिन्न है। खड़ीबोली में प्राय: प्राचीन वर्तमान (लट्) के तद्भव रूपों में- गा-गी-गे जोड़कर (यथा होगा, होगी, होंगे आदि) रूप बनाए जाते हैं। ब्रज में भविष्यत् के रूप प्राचीन भविष्यत्काल (लट्) के रूपों पर आधारित हैं। (यथा होइहैंउ भविष्यति, होइहोंउ भविष्यामि)। अवधी में प्राय: भविष्यत् के रूप तव्यत् प्रत्ययांत प्राचीन रूपों पर आश्रित हैं (होइबाउ भवितव्यम्)। अवधी की पश्चिमी बोलियों में केवल उत्तमपुरुष बहुवचन के रूप तव्यतांत रूपों पर निर्भर हैं। शेष ब्रज की तरह प्राचीन भविष्यत् पर। किंतु मध्यवर्ती और पूर्वी बोलियों में क्रमश: तव्यतांत रूपों की प्रचुरता बढ़ती गई है। क्रियार्थक संज्ञा के लिए खड़ीबोली में 'ना' प्रत्यय है (यथा होना, करना, चलना) और ब्रज में 'नो' (यथा होनो, करनो, चलनो)। परंतु अवधी में इसके लिए 'ब' प्रत्यय है (यथा होब, करब, चलब)। अवधी में निष्ठा एकवचन के रूप का 'वा' में अंत होता है (यथा भवा, गवा, खावा)। भोजपुरी में इसके स्थान पर 'ल' में अंत होनेवाले रूप मिलते हैं (यथा भइल,

गइल)। अवधी का एक मुख्य भेदक लक्षण है अन्यपुरुष एकवचन की सकर्मक क्रिया के भूतकाल का रूप (यथा करिसि, खाइसि, मारिसि)। य-'सि' में अंत होनेवाले रूप अवधी को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलते। अवधी की सहायक क्रिया में रूप 'ह' (यथा हइ, हइं), 'अह' (अहइ, अइई) और 'बाटइ' (यथा बाटइ, बाटइं) पर आधारित हैं।

ऊपर लिखे लक्षणों के अनुसार अवधी की बोलियों के तीन वर्ग माने गए हैं– पश्चिमी, मध्यवर्ती और पूर्वी। पश्चिमी बोली पर निकटता के कारण ब्रज का और पूर्वी पर भोजपुरी का प्रभाव है। इनके अतिरिक्त बघेली बोली का अपना अलग अस्तित्त्व है।

विकास की दृष्टि से अवधी का स्थान ब्रज, कन्नौजी और भोजपुरी के बीच में पड़ता है। ब्रज की व्युत्पत्ति निश्चय ही शौरसेनी से तथा भोजपुरी की मागधी प्राकृत से हुई है। अवधी की स्थिति इन दोनों के बीच में होने के कारण इसका अर्धमागधी से निकलना मानना उचित होगा। खेद है कि अर्धमागधी का हमें जे प्राचीनतम रूप मिलता है वह पाँचवीं शताब्दी ईस्वी का है और उससे अवधी के रूप निकालने में कठिनाई होती है। पालि भाषा में बहुधा ऐसे रूप मिलते हैं जिनसे अवधी के रूपों का विकास सिद्ध किया जा सकता है। संभवत: ये रूप प्राचीन अर्धमागधी के रहे होंगे।

अवधी साहित्य

प्राचीन अवधी साहित्य की दो शाखाएँ हैं : एक भक्तिकाव्य और दूसरी प्रेमाख्यान काव्य। भक्तिकाव्य में गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' (सं. 1631) अवधी साहित्य की प्रमुख कृति है। इसकी भाषा संस्कृत शब्दावली से भरी है। 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त तुलसीदास ने अन्य कई ग्रंथ अवधी में लिखे हैं। इसी भक्ति साहित्य के अंतर्गत लालदास का 'अवधबिलास' आता है। इसकी रचना संवत् 1700 में हुई। इनके अतिरिक्त कई और भक्त कवियों ने रामभक्ति विषयक ग्रंथ लिखे।

संत कवियों में बाबा मलूकदास भी अवधी क्षेत्र के थे। इनकी बानी का अधिकांश अवधी में है। इनके शिष्य बाबा मथुरादास की बानी भी अधिकतर अवधी में है। बाबा धरनीदास यद्यपि छपरा जिले के थे तथापि उनकी बानी अवधी में प्रकाशित हुई। कई अन्य संत कवियों ने भी अपने उपदेश के लिए अवधी को अपनाया है।

प्रेमाख्यान काव्य में सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' है जिसकी रचना 'रामचरितमानस' से 34 वर्ष पूर्व हुई। दोहे चौपाई का जो क्रम 'पद्मावत' में है प्रायः वही 'मानस' में मिलता है। प्रेमाख्यान काव्य में मुसलमान लेखकों ने सूफी मत का रहस्य प्रकट किया है। इस काव्य की परंपरा कई सौ वर्षों तक चलती रही। मंझन की 'मधुमालतीष, उसमान की 'चित्रावलीष, आलम की 'माधवानल कामकंदलाष, नूरमुहम्मद की 'इंद्रावती' और शेख निसार की 'यूसुफ जुलेखा' इसी परंपरा की रचनाएँ हैं। शब्दावली की दृष्टि से ये रचनाएँ हिंदू कवियों के ग्रंथों से इस बात में भिन्न हैं कि इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की उतनी प्रचुरता नहीं है।

प्राचीन अवधी साहित्य में अधिकतर रचनाएँ देशप्रेम, समाजसुधार आदि विषयों पर और मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक हैं। कवियों में प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीसष, वंशीधर शुक्ल, चंद्रभूषण द्विवेदी 'रमई काकाष, गुरु प्रसाद सिंह 'मृगेश' और शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रबंध की परंपरा में 'रामचरितमानस' के ढंग का एक महत्वपूर्ण आधुनिक ग्रंथ द्वारिकाप्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' है। इसकी भाषा और शैली 'मानस' के ही समान है और ग्रंथकार ने कृष्णचरित प्रायः उसी तन्मयता और विस्तार से लिखा है जिस तन्मयता और विस्तार से तुलसीदास ने रामचरित अंकित किया है। मिश्र जी ने इस ग्रंथ की रचना द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि प्रबंध के लिए अवधी की प्रकृति आज भी वैसी ही उपादेय है जैसी तुलसीदास के समय में थी।

भोजपुरी

भोजपुरी शब्द का निर्माण बिहार का प्राचीन जिला भोजपुर के आधार पर पड़ा। जहाँ के राजा 'राजा भोज' ने इस जिले का नामकरण किया था।भाषाई परिवार के स्तर पर भोजपुरी एक आर्य भाषा है और मुख्य रुप से पश्चिम बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी झारखण्ड के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यवहारिक रूप से भोजपुरी हिन्दी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपने शब्दावली के लिये मुख्यतः संस्कृत एवं हिन्दी पर निर्भर है कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं। भोजपुरी जानने-समझने वालों का विस्तार विश्व के सभी महाद्वीपों पर है जिसका कारण ब्रिटिश राज के दौरान उत्तर भारत से अंग्रेजों द्वारा ले जाये गये मजदूर हैं जिनके वंशज अब जहाँ उनके पूर्वज

गये थे वहीं बस गये हैं। इनमे सूरिनाम, गुयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो, फिजी आदि देश प्रमुख है। भारत के जनगणना (2001) आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है।

भोजपुरी भाषा का नामकरण बिहार राज्य के आरा (शाहाबाद) जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। पूर्ववर्ती आरा जिले के बक्सर सब-डिविजन (अब बक्सर अलग जिला है) में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है जिसमें 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' दो गाँव हैं। मध्य काल में इस स्थान को मध्य प्रदेश के उज्जैन से आए भोजवंशी परमार राजाओं ने बसाया था। उन्होंने अपनी इस राजधानी को अपने पूर्वज राजा भोज के नाम पर भोजपुर रखा था। इसी कारण इसके पास बोली जाने वाली भाषा का नाम 'भोजपुरी' पड़ गया।

भोजपुरी भाषा का इतिहास 7वीं सदी से शुरू होता है - 1000 से अधिक साल पुरानी! गुरु गोरख नाथ 1100 वर्ष में गोरख बानी लिखा था। संत कबीर दास (1297) का जन्मदिवस भोजपुरी दिवस के रूप में भारत में स्वीकार किया गया है और विश्व भोजपुरी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

मगही

मगही या मागधी भाषा भारत के मध्य पूर्व में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है। इसका निकट का संबंध भोजपुरी और मैथिली भाषा से है और अक्सर ये भाषाएँ एक ही साथ बिहारी भाषा के रूप में रख दी जाती हैं। इसे देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। मगही बोलनेवालों की संख्या (2002) लगभग 1 करोड़ 30 लाख है। मुख्य रूप से यह बिहार के गया, पटना, राजगीर ,नालंदा ,जहानाबाद,अरवल,नवादा और औरंगाबाद के इलाकों में बोली जाती है।

मगही का धार्मिक भाषा के रूप में भी पहचान है। कई जैन धर्मग्रंथ मगही भाषा में लिखे गए हैं। मुख्य रूप से वाचिक परंपरा के रूप में यह आज भी जीवित है। मगही का पहला महाकाव्य गौतम महाकवि योगेश द्वारा 1960-62 के बीच लिखा गया। दर्जनो पुरस्कारों से सम्मानित योगेश्वर प्रसाद सिन्ह योगेश आधुनिक मगही के सबसे लोकप्रिय कवि माने जाते हैं। 23 अक्तुबर को उनकी जयन्ति मगही दिवस के रूप में मनाई जा रही है।

मगही भाषा में विशेष योगदान हेतु सन् 2002 में डॉ. रामप्रसाद सिंह को साहित्य अकादमी भाषा सम्मान दिया गया।

मगही संस्कृत भाषा से जन्मी हिन्द आर्य भाषा है।

अंगिका भाषा

अंगिका एक भाषा है, जो झारखण्ड के उत्तर पूर्वी भागों में बोली जाती है जिसमें गोड्डा, साहिबगंज, पाकुड़, दुमका, देवघर, कोडरमा, गिरिडीह जैसे जिले सम्मिलित हैं। यह भाषा बिहार के भी पूर्वी भाग में बोली जाती है जिसमें भागलपुर, मुंगेर, खगड़िया, बेगूसराय, पूर्णिया, कटिहार, अररिया आदि सम्मिलित हैं। यह नेपाल के तराई भाग में भी बोली जाती है। अंगिका भारतीय आर्य भाषा है।

अंगिका को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। इसे अंग भाषा के नाम से भी पुकारा जाता है। देवनागरी में 12 स्वर (सहित) और 49 व्यंजन होते हैं और एक अवग्रह् भी होते हैं, इसे बाएं से दायें ओर लिखा जाता है।

यदि हिन्दी और संस्कृत शब्दों की बात की जाये तो कुल 49 व्यंजन और 12 स्वर हैं, परन्तु अंगिका को अगर हिन्दी और संस्कृत से रहित देखा जाये तो वर्णों की स्थिति बिल्कुल अलग तरह से होगी।

अंगिका मुख्य रूप से प्राचीन अंग यानि भारत के उत्तर-पूर्वी एवं दक्षिण बिहार, झारखंड, बंगाल, आसाम, उड़ीसा और नेपाल के तराई के इलाकों में बोली जानेवाली भाषा है। यह मैथिली की एक बोली के तौर पर जानी जाती है। इसका यह प्राचीन भाषा कम्बोडिया, वियतनाम, मलेशिया आदि देशों में भी प्राचीन समय से बोली जाती रही है। अंगिका भाषा आर्य-भाषा परिवार का सदस्य है और भाषाई तौर पर बांग्ला, असमिया, उड़िया और नेपाली, भाषा से इसका काफी निकट का संबंध है। प्राचीन अंगिका के विकास के शुरूआती दौर को प्राकृत और अपभ्रंश के विकास से जोड़ा जाता है। लगभग 1.5 से 2 करोड़ लोग अंगिका को मातृ-भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं और इसके प्रयोगकर्ता भारत के विभिन्न हिस्सों सहित विश्व के कई देशों में फैले हैं। भारत की अंगिका को साहित्यिक भाषा का दर्जा हासिल है। अंगिका साहित्य का अपना समृद्ध इतिहास रहा है और आठवीं शताब्दी के कवि सरह या सरहपा को अंगिका साहित्य में सबसे ऊँचा दर्जा प्राप्त है। सरहपा को हिन्दी एवं अंगिका का आदि कवि माना जाता है। भारत सरकार द्वारा अंगिका को जल्द ही भारतीय संविधान की आठवीं

अनुसूची में भी शामिल किया जाएगा। अब ये तो भविष्य ही बातयेगा की अंगिका को जोड़ा जाता है की नहीं।

अंगिका हिन्द-यूरोपीय भाषा-परिवार परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है। हिन्द-आर्य भाषाएँ वो भाषाएँ हैं, जो संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। उर्दू, कश्मीरी, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, रोमानी, मराठी, मैथिली, नेपाली जैसी भाषाएँ भी हिन्द-आर्य भाषाएँ हैं।

अंगिका शब्द अंग से बना है। अंगप्रदेश (वर्तमान में भागलपुर के आस-पास का क्षेत्र) में बोली जाने वाली भाषा को अंगिका नाम दिया गया। अंगिका को लोग छेछा के नाम से भी जानते हैं।

अंगिका भाषा में निर्मित पहली फिल्म खगड़िया वाली भौजी (फिल्म) 2007 को बिहार में प्रदर्शित किया गया। सुनील छैला बिहारी ने नई अंगिका फिल्म बनाने के बारे में सोच रहें हैं। वो जब बांका आये थे तो उन्होंने इस विषय पर दैनिक जागरण से बातचीत की थी। उन्हों ने कहा था की लोगों के समक्ष अंगिका के अश्लील चलचित्र और संगीत परोसा जा रहा है जिससे अंगिका की छवि खराब हो रही है। उन्होंने अश्लील संगीत बनाने वालों पर निशाना साधा था। एक नई फिल्म अंग पुत्र अप्रैल 2010 को प्रदर्शित हुई थी, जसमे अंगिका के लोक गीत में माहिर सुनील छैला बिहारी जी ने मुख्य भूमिका निभाया था।

बज्जिका

बज्जिका मैथिली भाषा की उपभाषा है, जो कि बिहार के तिरहुत प्रमंडल में बोली जाती है। इसे अभी तक भाषा का दर्जा नहीं मिला है, मुख्य रूप से यह बोली ही है। भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार इन जिलों के लगभग 1 करोड़ 15 लाख लोग बज्जिका बोलते हैं। नेपाल के रौतहट एवं सर्लाही जिला एवं उसके आस-पास के तराई क्षेत्रों में बसने वाले लोग भी बज्जिका बोलते हैं। वर्ष 2001 के जनगणना के अनुसार नेपाल में 2,38,000 लोग बज्जिका बोलते हैं। उत्तर बिहार में बोली जाने वाली दो अन्य भाषाएँ भोजपुरी एवं मैथिली के बीच के क्षेत्रों में बज्जिका सेतु रुप में बोली जाती है।

बज्जिका की प्राचीनता एवं गरिमा वैशाली गणतंत्र के साथ जुड़ी हुई है साथ ही जो ऐतिहासिक स्थल के रूप में जानी जाती है और महावीर की जन्मस्थली और महात्मा बुद्ध की कर्मभूमि के रूप में भी विख्यात है। लगभग 500ई.पू. भारत में स्थापित वैशाली गणराज्य (महाजनपद) का राज्य-संचालन

करने वाले अष्टकुलों- लिच्छवी, वृज्जी (वज्जि), ज्ञात्रिक, विदेह, उगरा, भोग, इक्ष्वांकु और कौरव- में सबसे प्रधान कुलों बज्जिकुल एवं लिच्छवी द्वारा प्रयोग की जाने वाली बोली बज्जिका कहलाने लगी। राजकाज के लिए उस समय संभवतः प्राकृत का इस्तेमाल होता था जबकि धार्मिक कृत्य संस्कृत में होते थे। बज्जिका के शब्दों का विस्तार इन दोनों स्रोतों से हुआ है। आजकल इसमें उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बढ़ गया है। यह हिन्द-यूरोपीय भाषा-परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द ईरानी शाखा की हिन्द आर्य उपशाखा के बिहारी भाषा समूह के अन्तर्गत वर्गीकृत है।

वर्तमान में बज्जिका का दर्जा हिंदी की लोकभाषा के रूप में है। राज्याश्रय का अभाव, विद्वानों के असहयोग एवं पर्याप्त साहित्य-भंडार के अभाव में बज्जिका की पहचान भाषा के रुप में नहीं बन सकी है। बज्जिका के समान ही बोली जानेवाली मैथिली को इस क्षेत्र के नेताओं के द्वारा किए गए प्रयासों के चलते अब भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कर आधिकारिक मान्यता दे दी गई है। किंतु मैथिली भाषी के विपरित स्थानीय समाज के संपन्न तबकों में बज्जिका को लेकर गौरव का अभाव है। स्थिति ऐसी है कि अगर कोई अन्य बिहारी भाषा बोलने वाला सामने मौजूद हो तो दो बज्जिका भाषी आपस में हिंदी में ही बात करते हैं। भाषा विज्ञान को लेकर शोध करने वाली कई संस्थाएँ तथा बेवसाईट ने इसे विलुप्तप्राय भाषा की श्रेणी में रखा गया है। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि भारत की भाषायी जनगणना 2001 में बज्जिका, अंगिका, कवारसी, दक्खिनी, कन्नौजी आदि बहुसंख्य बोलियों को हिंदी की श्रेणी से गायब कर दिया गया है जबकि सूचिबद्ध कई बोलियाँ ऐसी है जिनकी संख्या बहुत कम और अनजान हैं।

उत्तर बिहार के महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र एवं बज्जिका क्षेत्र की हृदय स्थली मुजफ्फरपुर से कुछ बज्जिका पत्रिकाएँ निकलती हैं। बज्जिकांचल विकास पार्टी, स्वयंसेवी संस्थाएँ तथा इस क्षेत्र के कई भाषाविद बज्जिका के विकास के प्रति समर्पित हैं। भारत में राज्यों का गठन भाषायी आधार पर हुआ था। असम, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र की तरह बिहार में भी भाषा के आधार पर बज्जिकांचल बनाने की मांग हो रही है। नेपाल में त्रिभुवन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रो योगेन्द्र प्रसाद यादव जैसे लेखक बज्जिका को उसका महत्व दिलाने हेतु प्रयासरत हैं। नेपाल के बज्जिका भाषी क्षेत्र में कविता पाठ एवं लेख प्रतियोगिता का आयोजन होता रहता है।, संभव है, प्राचीन बज्जिसंघ की लोकभाषा बज्जिका, भविष्य में

विपुल साहित्य-भंडार से परिपूर्ण होकर एक भाषा के रुप में अपनी एक पहचान बना ले या ऐसी सरस भाषा की उपेक्षा राजनीतिक रंग ले ले।,

हरियाणवी

हरियाणवी भारत के हरियाणा प्रान्त में बोली जाने वाली हिन्दी की बोली (उपभाषा) है। वैसे तो हरियाणवी में कई लहजे हैं साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में बोलियों की भिन्नता है। लेकिन मोटे रुप से इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक उत्तर हरियाणा में बोली जाने वाली तथा दूसरी दक्षिण हरियाणा में बोली जाने वाली।

उत्तर हरियाणा में बोली जाने वाली हरियाणवी थोड़ा सरल होती है तथा हिन्दी भाषी व्यक्ति इसे थोड़ा बहुत समझ सकते हैं। दक्षिण हरियाणा में बोली जाने वाली बोली को ठेठ हरियाणवी कहा जाता है। यह कई बार उत्तर हरियाणा वालों को भी समझ में नहीं आती।

इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में हरियाणवी के कई रुप प्रचलित हैं जैसे बाँगर, राँघड़ी आदि।

बुंदेली भाषा

बुंदेलखंड के निवासियों द्वारा बोली जाने वाली बोली बुंदेली है। यह कहना बहुत कठिन है कि बुंदेली कितनी पुरानी बोली हैं, लेकिन ठेठ बुंदेली के शब्द अनूठे हैं जो सादियों से आज तक प्रयोग में हैं। केवल संस्कृत या हिंदी पढ़ने वालों को उनके अर्थ समझना कठिन हैं। ऐसे सैकड़ों शब्द जो बुंदेली के निजी है, उनके अर्थ केवल हिंदी जानने वाले नही बतला सकते किंतु बंगला या मैथिली बोलने वाले आसानी से बता सकते हैं।

प्राचीन काल में बुंदेली में शासकीय पत्र व्यवहार, संदेश, बीजक, राजपत्र, मैत्री संधियों के अभिलेख प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कहा तो यह भी जाता है कि औरंगजेब और शिवाजी भी क्षेत्र के हिंदू राजाओं से बुंदेली में ही पत्र व्यवहार करते थे। ठेठ बुंदेली का शब्दकोष भी हिंदी से अलग है और माना जाता है कि वह संस्कृत पर आधारित नहीं हैं। एक-एक क्षण के लिए अलग-अलग शब्द हैं। गीतो में प्रकृति के वर्णन के लिए, अकेली संध्या के लिए बुंदेली में इक्कीस शब्द हैं। बुंदेली में वैविध्य है, इसमें बांदा का अक्खड़पन है और नरसिंहपुर की मधुरता भी है।

डॉ वीरेंद्र वर्मा ने हिंदी भाषा का इतिहास नामक ग्रंथ में लिखा है कि बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। शुद्ध रुप में यह झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रुप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाए जाते हैं। कुछ कुछ बांदा के हिस्से में भी बोली जाती है

बुंदेली का इतिहास

वर्तमान बुंदेलखंड चेदि, दशार्ण एवं कारुष से जुड़ा था। यहां पर अनेक जनजातियां निवास करती थीं। इनमें कोल, निषाद, पुलिंद, किराद, नाग, सभी की अपनी स्वतंत्र भाषाएं थी, जो विचारों अभिव्यक्तियों की माध्यम थीं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में इस बोली का उल्लेख प्राप्त है, शबर, भील, चांडाल, सजर, द्रविड़ोद्भवा, हीना वने वारणम् व विभाषा नाटकम् स्मृतम् से बनाफरी का अभिप्रेत है। संस्कृत भाषा के विद्रोहस्वरुप प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। इनमें देशज शब्दों की बहुलता थी। हेमचंद्र सूरि ने पामरजनों में प्रचलित प्राकृत अपभ्रंश का व्याकरण दशवी शती में लिखा. मध्यदेशीय भाषा का विकास इस काल में हो रहा था। हेमचन्द्र के कोश में विंध्येली के अनेक शब्दों के निघंटु प्राप्त हैं।

बारहवीं सदी में दामोदर पंडित ने उक्ति व्यक्ति प्रकरण की रचना की. इसमें पुरानी अवधी तथा शौरसेनी ब्रज के अनेक शब्दों का उल्लेख मिलता है। इसी काल में अर्थात एक हजार ईस्वी में बुंदेली पूर्व अपभ्रंश के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इसमें देशज शब्दों की बहुलता थी। पं किशोरी लाल वाजपेयी, लिखित हिंदी शब्दानुशासन के अनुसार हिंदी एक स्वतंत्र भाषा है, उसकी प्रकृति संस्कृत तथा अपभ्रंश से भिन्न है। बुंदेली की माता प्राकृत शौरसेनी तथा पिता संस्कृत भाषा है। दोनों भाषाओं में जन्मने के उपरांत भी बुंदेली भाषा की अपनी चाल, अपनी प्रकृति तथा वाक्य विन्यास को अपनी मौलिक शैली है। हिंदी प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत के निकट है।

मध्यदेशीय भाषा का प्रभुत्व अविच्छन्न रुप से ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी के सारे काल में और इसके पूर्व कायम रहा. नाथ तथा नाग पंथों के सिद्धों ने जिस भाषा का प्रयोग किया, उसके स्वरुप अलग-अलग जनपदों में भिन्न-भिन्न थे। वह देशज प्रधान लोकभाषा थी। इसके पूर्व भी भवभूति उत्तर रामचरित के ग्रामीणजनों की भाषा विंध्येली प्राचीन बुंदेली ही थी। संभवतः चंदेल नरेश गंडदेव

(सन् 940 से 999 ई.) तथा उसके उत्तराधिकारी विद्याधर (999 ई. से 1025 ई.) के काल में बुंदेली के प्रारंभिक रूप में महमूद गजनवी की प्रशंसा की कतिपय पंक्तियां लिखी गई। इसका विकास रासो काव्य धारा के माध्यम से हुआ। जगनिक आल्हाखंड तथा परमाल रासो प्रौढ़ भाषा की रचनाएं हैं। बुंदेली के आदि कवि के रुप में प्राप्त सामग्री के आधार पर जगनिक एवं विष्णुदास सर्वमान्य हैं, जो बुंदेली की समस्त विशेषताओं से मंडित हैं।

बुंदेली के बारे में कहा गया है– बुंदेली बा है जौन में बुंदेलखंड के कवियन ने अपनी कविता लिखी, बारता लिखवे वारन ने वारता (गद्य) लिखी। जा भासा पूरे बुंदेलखंड में एकई रुप में मिलत है। बोली के कई रुप जगा के हिसाब से बदलत जात हैं। जाई से कही गई है कि कोस-कोस पे बदले पानी, गांव-गांव में बानी। बुंदेलखंड में जा हिसाब से बहुत सी बोली चलन में हैं जैसे डंघाई, चौरासी पवारी आदि।

बुंदेली का स्वरूप

बुंदेलखंड की पाटी पद्धति में सात स्वर तथा 45 व्यंजन हैं। कातन्त्र व्याकरण ने संस्कृत के सरलीकरण प्रक्रिया में सहयोग दिया। बुंदेली पाटी की शुरुआत ओना मासी घ मौखिक पाठ से प्रारंभ हुई। विदुर नीति के श्लोक विन्नायके तथा चाणक्य नीति चन्नायके के रुप में याद कराए जाते थे। वणिक प्रिया के गणित के सूत्र रटाए जाते थे। नमः सिद्ध मने ने श्री गणेशाय नमः का स्थान ले लिया। कायस्थों तथा वैश्यों ने इस भाषा को व्यवहारिक स्वरुप प्रदान किया, उनकी लिपि मुड़िया निम्न मात्रा विहीन थी। स्वर बैया से अक्षर तथा मात्रा ज्ञान कराया गया। चली चली बिजन वखों आई, कां से आई का का ल्याई .. . वाक्य विन्यास मौलिक थे। प्राचीन बुंदेली विंध्येली के कलापी सूत्र काल्पी में प्राप्त हुए हैं।

बोलचाल बनाम कार्यालयीन हिंदी

भाषा और मनुष्य का आपसी संबंध कुछ इस प्रकार है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। भाषा ही हमारे चिंतन, भाव-बोध, संप्रेषण संवाद का महत्वपूर्ण साधन है। हम न केवल भाषा के सहारे सोचते हैं किंतु समझते और समझाते भी हैं। भाषा के जिस रूप का प्रयोग किसी विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति के लिए किया जाता है उस भाषा रूप को प्रयोजन

मूलक अर्थात फंक्शनल लेंगवेज कहा जाता है, प्रयोजनमूलक यानी जीवन की विविध एवं विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपयोग में लाई जानेवाली हिंदी। बीसवीं सदी के अंतिम पांच दशकों में हिंदी केवल सामान्यत बोलचाल तथा साहित्य तक ही सीमित नहीं रही बल्कि यह प्रशासन, न्याय, पत्रकारिता, वाणिज्य, बैंक, विज्ञापन आदि विभिन्न क्षेत्रों में भी प्रयुक्त हो रही है। ये सभी क्षेत्र औपचारिक भाषा प्रयोग के क्षेत्र हैं, जिनके लिए हिंदी में उन क्षेत्रों के भाषा रूप अर्थात पारिभाषिक रूप को विकसित करने की जरूरत को अनुभव किया गया। मसलन विभिन्न व्यवसायों से संबंधित व्यक्तियों जैसे बैंकर, व्यापारी, पत्रकार, डॉक्टर, वकील, प्रशासक, वैज्ञानिक आदि के कार्यक्षेत्रों में प्रयुक्त, होनेवाली हिंदी बोलचाल की हिंदी से अलग होगी। वह खास उस क्षेत्र के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होगी। भाषा के सभी रूप, चाहे वह बोली जाने वाली भाषा के हों या लिखी जानेवाली भाषा के, मानव सभ्यता और संस्कृति के लिए जरूरी है।

पिछले तीन दशकों में जिस तेजी से समाज और संस्कृति में परिवर्तन हुए है उसके चलते हिंदी का इस्तेमाल सिर्फ दफ्तरी हिंदी या साहित्यिक हिंदी तक सीमित न रहकर तमाम गैर पारंपरिक क्षेत्रों में फैल गया है। इन माध्यमों में हिंदी की दस्तक इतनी अनायास और अनाक्रामक है कि बिना किसी शोर शराबे, जोर जबर्दस्ती या विज्ञापन के इसका इस्तेमाल एक अलग अंदाज में बढ़ता ही जा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण ने समकालीन यथार्थ को गहरे प्रभावित किया है। सूचना और इलेक्ट्रॉनिक क्रांति ने बैंकिंग, व्यवसाय, व्यापार, राजनीति और साहित्य को ही नहीं बदला है बल्कि भाषा के सरोकार भी बदल गये हैं। आज के समय में जिन उपकरणों ने लोगों का जीवन, रंग-ढंग, सामाजिक तौर तरीका, चाल-चलन और अभिव्यक्ति के अंदाज एवं भाषा के इस्तेमाल में परिवर्तन कर दिया हैं उनमें अखबार, टेलीविजन, रेडियो, इंटरनेट, मोबाइल का खास दखल है।

संवाद के इन आधुनिक उपकरणों के चलते बोलचाल की हिंदी का खूब विस्तार हुआ है। जब भाषा का विस्तार होता है तो जाहिर है शब्द भंडार भी बढ़ता जाता है। 'विस्तृत' होते इस शब्द भंडार का नमूना इन वाक्यों में देखिए। 'एक्जाम' सिर पर हैं और मैंने अभी तक एक भी 'बुक' खोलकर 'स्टडी' नहीं की है। मेरे 'माइंड' में कुछ घुस नहीं रहा है, दो 'बुक्स' 'नावल' और 'स्टोरी बुक' तो मैंने अपनी मम्मी को पढ़ने को दे दी है। वही मुझे इनका 'थीम' बता देगी। इसी

तरह विज्ञापन एवं पत्रकारिता की एक बानगी देखें, 'गर्मी से राहत पाने के ट्रिक्स समर ब्यूटी एंड फूड स्पेशल', 'डबल होंगी सभी सिंगल लेन सड़कें।'

इसी तरह अखबारों की भाषा का नूमने देखें- अपनी जॉब से यंगस्टनर्स को एंटरप्रेन्योरशिप की राह दिखा रहे हैं, जबकि गवर्नमेंट हमेशा जॉब्सब क्रियेट करने की बात करती है। कंफ्यूजन अच्छी चीज है अपनी बच्चों के कंफ्यूज होने पर भी हमें ओके रहना चाहिए। क्योंकि कंफ्युज रहेंगे तो माइंड खुला रहता है। फोकस करके कंफ्यूजन को दूर कर सकते हैं।

इन वाक्यों में कितने शब्द अंग्रेजी के हैं उसे देखकर लोगों का यह तर्क रहता है कि चाहे ये शब्द अंग्रेजी के हैं, पर इस्तेमाल तो अक्सर होते हैं। इसलिए इन्हें स्वीकार करने में क्या हर्ज है। कोई हर्ज नहीं। पर समस्याएं बहुत हैं। क्या इतने ज्यादा शब्द स्वीकार कर लिए जाएं पर क्रियाओं, कारकों, लिंग, वचन और वर्तनी का क्या किया जाए? बोलचाल में तो खैर व्याकरण को ताक पर रखा जा सकता है, बोलने वाला बिना पूछे ही रख भी देगा, पर लिखित भाषा का क्या? हिंदी और इसकी लिपि बहुत वैज्ञानिक मानी जाती है। फिर उसमें बहुवचन के रूप में एक्जाम्स लिखें या एक्जाम, बुक लिखें या बुकें, स्टाइल या स्टाइलें, ट्रिक या ट्रिक्स, थीम को पुल्लिंग मानें या स्त्रीलिंग। बैंक से बैंकिंग प्रचलित हो गया। आने वाली पीढ़ी 'बैंकिंग' को सिर्फ संज्ञा मानेगी जबकि यह तो क्रिया भी है। पहले इस तरह की बात उर्दू भाषा के शब्दों के बारे में की जाती थी कि 'कागज' का बहुवचन उर्दू के हिसाब से 'कागजात' हो या हिंदी के हिसाब से 'कागजों'। 'हाल' को बहुवचन में 'हालात' लिखना ठीक लगता है पर हिंदी व्याकरण लगा देने से 'हाल', 'हालें', 'हालों' या 'हालातों' लिख देने से हालत बिगड़ने लगती है। सारे प्रयोग ही बचकाने लगते हैं। जैसे बैंक से बैंकों चल निकला है पर बॉण्ड से बॉण्डों, चेक से चेकों, या डिविडेंड से डिविडेंडों लिखते-पढ़ते समय हिंदी प्रेमी न चाहते हुए भी नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं।

यूं तो भाषा हर वक्त बदलती है, लेकिन बाजार की शक्तियां कभी-कभी उसे बहुत तेजी से बदलती हैं और भाषा का बदलना और उसे अपनाना जरूरी हो जाता है। हिन्दी के साथ यही हो रहा है। ऐसे परिवर्तन को देखकर एक सहज प्रतिक्रिया भाषा के शुद्धतावादी आग्रह के रूप में प्रकट होती है। परंपरागत शब्द, वाक्या जब नए बनने लगते हैं तो परंपरागत शब्दों की आदी जुबान और कान कष्ट पाने लगते हैं।

चूंकि भाषा के बदलने का अर्थ 'जीवन का बदलना' भी है इसलिए 'न बदलने वाले तत्त्व' ऐसी परिवर्तनकारी स्थिति में बड़ा कष्ट पाते हैं। वे नहीं मानते कि कोई भी भाषा कभी भी 'शुद्ध' नहीं रही, न रह सकती है और बदलना उसकी प्रकृति है। भाषा के बदलने के हिमायती अक्सर यह तर्क देते हैं कि शब्द 'टेस्ट ट्यूब बेबी' नहीं हैं, जिन्हें सोच विचारकर प्रयोगशाला में पैदा किया जाये। शब्द तो अनायास ही जाने-अनजाने आस-पास की परिस्थितियाँ, जरूरतों से उपजते हैं, सजते-संवरते हैं, प्रचलित होते हैं, मरते हैं, पुनर्जन्म पाते हैं और इस तरह इनकी जीवन यात्रा अनवरत चलती रहती है। अलग-अलग शहरों, स्थानों में उनकी अलग-अलग भंगिमाएं, अलग-अलग अंदाज होते हैं, जो वहां की आबो-हवा से पैदा होते हैं। शब्दों ही नहीं, वाक्यों पर भी अलग-अलग संस्कारों परिवेशों का असर पड़ता है। दो भिन्न संस्कार और परिवेश वाले लोग किसी एक ही बात को अलग-अलग ढंग से बोलेंगे। हमारे बोलने का ढंग हमारी संस्कृति एवं जीवन पद्धति से जुड़ा होता है। यह बात हैदराबाद की हिंदी, दक्षिण भारतीयों की हिंदी या मुंबइया हिंदी में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

जोधपुर में लोग गाली भी जी लगाकर देते हैं, हमारी जीवन शैली भी हमारी भाषा को प्रभावित करती है, जैसे लखनऊ के खालिस नवाबी परिवेश में पला व्यक्ति गाली भी बेहद सभ्य एवं सलीके से देगा - जैसे 'जनाब, आपको शर्म आनी चाहिए', पहले जनाब कहा फिर लताड़ा। 'हुजूर आपका शराफत से ताल्लुक नहीं है।' इसी प्रकार पंजाब के परिवेश एवं रंग ढंग में पला-बढ़ा व्यक्ति खुशखबरी भी गाली के अंदाज में ही देगा। 'अबे पाजी! इधर आ, तू तो बड़ा शातिर निकला, तू फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ है।' या 'साले, तू विदेश में नौकरी के लिए जा रहा है।' जीवन और भाषा का अटूट रिश्ता होने के कारण जीवन के अनुकूल भाषा पर उसका प्रभाव दिखाई देता है। जैसे बनारस का आदमी किसी का हालचाल पूछेगा तो कहेगा- 'का गुरु, का हालचाल हय' इससे बनारस की जीवन शैली का बोध होगा, जहां किसी को किसी काम की जल्दी नहीं। सब कुछ इत्मीनान से अपने आप होता है। अतः उसकी भाषा में एक स्थिरता है, जल्दबाजी नहीं दिखती, किंतु यही हालचाल यदि मुंबई या दिल्ली का आदमी किसी से पूछेगा तो कहेगा- 'और क्या हाल, सब ठीक ठाक।' इसमें एक हड़बड़ी दिखाई पड़ती है। उसके प्रश्न में तेजी है। सवाल के साथ ही जवाब भी शामिल है, जवाब की प्रतीक्षा भी नहीं करता, बल्कि उसका उत्तर स्वयं देकर शीघ्रता से आगे बढ़ जाता है।

जाहिर है, भाषा-प्रयोग से वहां के लोगों की जीवन पद्धति का फर्क पता चलता है। मुंबई में बोलचाल की अपनी खास शैली है जिसमें कांदा-बटाटा, बनेला, बिगड़ेला, सड़ेला, खायेला, पियेला, मेरेकू, तेरेकू, जास्ती, बिंधास, घाई-घाई, भेजा, लफड़ा, खाली-पीली, नाका, फोकट में, चल-फुट, बोम काय को मारेला है जैसे तमाम शब्द यहां के लोगों की बोलचाल के अंग बन चुके हैं और अटपटा भी नहीं लगता, कुछ ही दिनों में ये शब्द बाहर से आकर यहां बसे लोगों की जबान पर भी चढ़ जाते हैं। हैदराबाद की हिंदी का भी एक अलग अंदाज है। पूरा वाक्य न कहकर चंद शब्दों में ही बात कह देना हैदराबादी हिंदी की खासियत है। लय, स्वर को खींच कर अपनी बात रखी जाती है- मेरु कू नको! तूमने क्यों कर करा? का बातां करी हऊ! क्या बोल रए भई! कहां कू जाना! बातां बड़े मजे करतां! इंगे कू जाके उंगे कू मुड़ जाना! हौ की जगह हऊ! बड़े मियां आदि। महमूद की फिल्मों में हैदराबादी हिंदी के मजेदार उदाहरण मिलते हैं।

स्पष्ट है कि भाषा किसी बने बनाये, रटे रटाये नियमों में बंधकर नहीं चलती, वह सहज स्वाभाविक रूप से अपने भौगोलिक परिवेश और सांस्कृतिक रंग में रंगकर उपजती जाती है। भाषा जानने के लिए बड़े-बड़े शब्दकोशों या पारिभाषिक शब्दों की दरकार नहीं होती। बस वह दिल से निकलनी चाहिए! यूं भी देखा जाये तो हम पाते हैं कि जब-जब हमारी जिंदगी बदलती है उसी के अनुरूप कई शब्द और अभिव्यक्तियां हमारे जीवन और जबान पर आ जाती है। हिंदी में धडल्ले से प्रयोग में आ रहे अंग्रेजी शब्दों को देखकर अक्सर कई लोग उत्तेजना से भर उठते हैं। किंतु आज के समय में यह जरुरी है कि जो हो रहा है उसे समझा जाये, क्योंकि जो हो रहा है उससे हिंदी भाषा का एक नितांत नया और जबरदस्त ढंग से सामर्थ्यवान और निर्भय रूप उभर रहा है।

हम दैनंदिन व्यवहार में उसी भाषा में बात करना पसंद करते हैं जिसमें बोलने, स्वयं को अभिव्यक्त करने में हमें कोई हिचक न हो, किसी प्रकार की कुंठा न हो, जिसमें हम बेझिझक खुल कर अपनी बात कह सकें और जब दो व्यक्तियों के बीच कोई एक सामान्य भाषा न हो तो जाहिर है उसे एक ऐसी सम्पर्क भाषा का सहारा लेना ही पड़ेगा जिसमें वे दोनों आपसी संप्रेषण कर सकें। भारत जैसे विविध भाषी देश में जहां केवल गिनी-चुनी जनता को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान है और जहां भाषागत स्वरूप में इतनी अधिक भिन्नता है और एक प्रांतीय भाषा जानने वाला दूसरे राज्य की भाषा का एक शब्द भी नहीं समझ सके तो

ऐसे में देश के सर्वाधिक क्षेत्र में, सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली-समझने वाली भाषा के रूप में हिंदी ही ऐसी कड़ी बन सकती थी। कहना न होगा कि हिंदी अपनी इस जन-सम्पर्क की भूमिका में पूरी तरह से खरी उतरी है।

सरकारी कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग एक ऐसा क्षेत्र रहा है जिसमें हिंदी का विकास सहज रूप से करने की बजाए निर्देशों और आदेशों के अर्थ में ज्यादा किया गया है। संविधान में हिंदी का राजभाषा का दर्जा देने, राजभाषा अधिनियम एवं नियम बनने के बाद 1970 से आज लेकर हिंदी के कार्य को लगभग पांच दशक पूरे होने को हैं। उस दौरान राजभाषा हिंदी का मूल उद्देश्य बैंकों की समूची कार्य संस्कृति में भाषिक परिवर्तन लाना था, ताकि देश की आम जनता के बीच संवाद एवं कामकाज की भाषा हिंदी हो सके। हिंदी अधिकारियों से संप्रेषण अधिकारी के रूप में काम की अपेक्षा थी जो दो भाषाओं को जोड़कर सेतु के रूप में काम करें। पर तमाम प्रयासों, नीति, नियमों के बावजूद बैंकों एवं सरकारी कार्यालयों में मूल रूप में हिंदी में कामकाज का दायरा काफी सीमित है। सदियों से अंग्रेजी में कामकाज की जो प्रथा बनी हुई थी उससे अलग हटकर हिंदी में स्वतंत्र रूप से काम करने की प्रवृत्ति आज भी नदारद है। संपर्क एवं व्यवहार में चाहे हिंदी का भरपूर इस्तेमाल हो रहा है पर हिंदी में जितना भी लिखित काम हो रहा है वह अनुवाद के जरिए ही हो रहा है। अनुवाद की इस संस्कृति की वजह से हिंदी अनुवाद आधारित पिछलग्गू भाषा बनकर ही रह गई है और हर काम को अनुवाद के जरिए करने के कारण सरकारी कार्यालयों एवं बैंकों में हिंदी का एक कृत्रिम, बोझिल और अटपटा स्वरूप ही दिखाई देता है। हिंदी के क्लिष्ट रूप को स्पष्ट करनेवाला एक चुटकुला प्रचलित है, एक बार एक सज्जन रेल्वे स्टेशन से बाहर आये और एक रिक्शेवाले से पूछा- परिसदन चलोगे? रिक्शे वाला चकरा गया बोला, साहब हम ठहरे अनपढ़, हमें अंगेजी नहीं आती, हिंदी में बोलिए, तब उन सज्जन ने कहा 'सर्किट हाउस' चलोगे? इस पर रिक्शेन वाला तुरंत समझकर बोला 'हां जरूर चलूंगा'।

इस बोझिल एवं अटपटे स्वरूप का मुख्य कारण है प्रशासन को दी गई हिंदी संबंधी औपचारिकताएं- कितना करना है, कब करना है, कैसे करना है आदि अर्थात आंकड़ों का खेल। कार्यालय के काम में स्वाभाविक भाषा की जगह अनूदित भाषा के प्रयोग के कारण 'विकृत हिंग्लिश' का एक रूप विकसित हो गया है। अंग्रेजी जानने वालों की बात तो दूर, हिंदी जानने वाले भी इस भाषा के बवंडर में गोते खाते नजर आते हैं और हिंदी के नाम पर क्लिष्टता का लेबल

चस्पा हो गया है। इसे कठिन बनाने में तथाकथित हिंदीदां ज्ञानवीरों का भी बड़ा हाथ है जो कथ्य की बजाए शब्दों से जूझते रहे और 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' वाली हिंदी गढ़ते रहे। लेकिन अब पिछले कुछ सालों से इसमें अनुवाद की जगह पुनर्सृजन या पुनर्लेखन की बात उठी है। जहाँ-तहाँ इस पर विचार भी हुआ है। कुछ सुपरिणाम भी देखने में आए हैं और लगता है कि यदि इस प्रक्रिया को सही रूप में अपना लिया जाए तो सरकारी हिंदी वाली बात खत्म हो सकती है और कामकाज में भाषा के उपयोग को लेकर नयी संभावनाओं को ढूंढ़ा जा सकता है।

भाषा की दृष्टि से भले ही कुछ सुधार की जरूरत हो किंतु इसे मानने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए कि प्रशासन के क्षेत्र में अपेक्षाकृत कठिन परिस्थितियों के चलते भी हिंदी किसी हद तक अपनी जगह बनाने में सफल हुई है। प्रशासन में हिंदी के प्रयोग की विफलता को लेकर कुछ लोग अक्सर विलाप-सा करते रहते हैं। ऐसा लगता है कि यह भी एक तरह की अतिवादी प्रतिक्रिया है। हमें समय के साथ उभर रही नयी संभावनाओं पर भी अपनी नजर रखनी चाहिए।

आज न्यायालयों ने संविधान में दर्ज क्षेत्रीय भाषाओं में कागज-पत्रों को स्वीकार करना शुरू कर दिया है। कुछ हिंदीभाषी राज्यों की अदालतों ने तो काफी कार्रवाई भी हिंदी में करनी आरंभ कर दी है जिनमें निर्णय देना तक शामिल है। पर देखा जाए तो यह सुधार अभी निचली अदालतों एवं जिला और सेशन अदालतों तक सीमित है। उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय के गलियारों में अभी हिंदी की गूंज नहीं है। धीरे-धीरे ही सही, पर न्याय के क्षेत्र में भाषा को भी न्याय की अपेक्षा है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जनता के बीच व्यवहार की भाषा के रूप में हिंदी के कामकाज का दायरा अत्यंत व्यापक और विविध है। इसमें केवल आपसी संप्रेषण नहीं बल्कि मार्केट में उत्पादों के विज्ञापन, जनता के बीच अपनी योजनाओं और उपलब्धियों का प्रचार, मनोरंजन और प्रौद्योगिकी के प्रयोग का क्षेत्र भी शामिल है। बैंकिंग क्षेत्र में वाणिज्य, लेखा, विधि, अर्थशास्त्र आदि विषयों से जुड़ी सामग्री के साथ साथ कृषि, लघु उद्योग और आम आदमी यानी ग्राहकों से जुड़े न जाने कितने क्षेत्र हैं, जो समूचे कामकाज का हिस्सा हैं।

प्रौद्योगिकी के विकास के साथ इंटरनेट, मोबाइल, एटीएम आदि न जाने कितनी तरह के और माध्यम हैं, जो ग्राहकों से संवाद के क्षेत्र हैं जहां इनसे जुड़ी

जानकारी को सहज सरल, समझने आनेवाली भाषा में अभिव्यक्त करना जटिल और चुनौतिपूर्ण है। ऐसे में स्वाभाविक रूप से उन क्षेत्रों में प्रचलित शब्द हिंदी में अपना लिये जाते हैं और अंतत: वे हिंदी का एक हिस्सा बन जाते हैं। यह सहज प्रयोग से विकसित हो रही भाषा का रूप है जो अनुवाद की भाषा से बहुत अलग है।

इस बात में दो राय नहीं हो सकती कि किसी उपभोक्ता वस्तु के विज्ञापन या उसके प्रयोग संबंधी निर्देश देने वाली भाषा और किसी सरकारी कार्यालय द्वारा जारी विज्ञापन की भाषा में जमीन आसमान का अंतर होता है। कारण बहुत ही सरल है - पहली स्थिति में उद्देश्य उपभोक्ता वस्तु की बिक्री और उस क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों की आम बोल चाल की भाषा में अपने सामान को जनता तक पहुंचाने का प्रयास है, जबकि दूसरी स्थिति में अंग्रेजी में मूल रूप से तैयार विज्ञापन को राजभाषा संबंधी अनुदेशों के कारण हिंदी में अनुवाद कर प्रस्तुत करना है। पहली स्थिति में स्व-भावना, स्व-प्रयास शामिल है, जबकि दूसरी स्थिति महज कागजी कार्रवाई के लिए की गयी लीपा-पोती है।

आज व्यवसाय की तेज शक्तियों ने जनता को लुभाने, आकर्षित करने के लिए भाषा को बदल दिया है। नई व्यावसायिक हिन्दी को इस तथ्य का नोटिस लेना चाहिए। जिस रूप में व्यावसायिक हिन्दी की कल्पना की जाती है वह नए बाजार की नई व्यावसायिक हिन्दी से मेल नहीं खाती। इस क्रम में उपलब्ध और निर्धारित व्यावसायिक हिन्दी को नए बाजार के अनुकूल दुरुस्त किया जाना चाहिए। कठिन अनुवादों की जगह प्राय: प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को यथावत या थोड़ा घिस के रखा जा सकता है। मसलन, कॉल मनी के लिए 'शीध्रावधि द्रव्य' मुद्रा की जगह 'कॉल मनी' ही चलाया जाए तो वह जुबान पर ज्यादा चढ़ेगा। 'कन्फिस्केमशन' के लिए 'अधिहरण' की जगह कन्फिमस्केशिन ही रहने दिया जा सकता है। कंपनी डिलीवरी, सप्लाई, प्रोजेक्शन, शेयर, स्टॉक, इन्फ्लेशन, हैकर्स, ई-कॉमर्स, ई-बिजनेस, अखबार, आदि शब्द देखते-देखते प्रचलन में आए हैं। बढ़ते भ्रष्ट्राचार से 'किक बैंक' मनी लांडरिंग, जैसे शब्द को हिन्दी में चला दिया। शेयरों के नाम, कंपनियों के नाम सभी अंग्रेजी में ही चलते हैं। इसी में से नई भाषा बनती है। आज वक्त की यही जरूरत है कि व्यवसायों और बाजार के बीच नयी बन रही हिन्दी का व्यापक सर्वेक्षण किया जाए और नई शब्दावली गढ़ी जाये।

अब प्रश्न यह उठता है कि खुले बाजार की अर्थव्यवस्था में हिन्दी का कामकाजी स्वरूप क्या होगा और कैसे होगा? सबसे पहले भाषा को 'बाजार-मित्र' बनना होगा। शब्दावली तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को अपने पुराने ढंग के भाषा बोध को छोड़कर यह समाजशास्त्री य एवं भाषा वैज्ञानिक सत्य स्वीकार करना होगा कि बनाई जाने वाली कार्यालयीन या कामकाजी भाषा किताबों और कोशों से नहीं बनाई जाती बल्कि स्थानीय वाचकों, बरतने वालों, बाजार के दुकानदारों, पल्लेदारों, मजदूरों, किसानों, व्यावसायियों, बैंकरों आदि के बीच कामकाज के विभिन्न स्तरों पर बन रही भाषा के बीच से स्तरीय शब्द चयन के जरिए बनती है और वहीं से उसे चुना जाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है तो खुले बाजार की अर्थव्यवस्था के मित्र के रूप में नई भाषा बनाई जा सकती है। मौजूदा व्यावसायिक अथवा प्रशासनिक या कामकाज की हिन्दी हालांकि धीरे-धीरे बदल रही है, किंतु इसे जल्द से जल्द बाजार-मित्र व बाजारनुकूल होना पड़ेगा।

इस क्रम में यह बात और ध्यान में रखी जानी चाहिए कि बाजारोन्मुख जनसंचार माध्यमों में भाषा रोज बनती बिगड़ती है और नये शब्दकोश यहीं से बनाए जा सकते हैं और उसी के अनुरूप कामकाज की शब्दावलियां एवं शब्दकोशों में निरंतर सुधार होना चाहिए। भविष्य में व्यावसायिक भाषा के रूप में हिंदी जितनी अधिक सहज और जीवंत होगी, उतनी ही यह जनसामान्य में अपनी जगह बनायेगी।

5

व्यावहारिक हिन्दी और राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका की बात को आज समाजशास्त्री और भाषा वैज्ञानिक समान रूप से स्वीकार करने लगे हैं। यह बात इसलिए भी महत्व की है कि भाषा अगर एक ओर राष्ट्रीय एकीकरण का महत्वपूर्ण उपादान बन सकती है तो वहीं दूसरी ओर वह समाज में तनाव द्वंद्व, विद्वेष और विघटन की प्रवृत्ति को भी जन्म दे सकती है। अत: यह आवश्यक है कि भाषा की इस दुहरी संभावना को हम सजग भाव से समझें और एक ऐसी भाषा नीति को अपनाएं जो देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में सहायक हो, हमारी बहुभाषिक यर्थाथता के अनुकूल हो और जो राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में साधक हो। इधर हाल में अंग्रेजी में प्रकाशित दो लेख सामने आए हैं जिनमें इस समस्या को उठाने का प्रयास किया गया है पर भारत की भाषायी समस्या की पकड़ ढीली होने के कारण जो निष्कर्ष उनमें निकाले गये हैं वे न केवल भ्रांतिपूर्ण हैं बल्कि घातक भी हैं।। इनमें पहला लेख सुनंदा सान्याल का 'इज लेंग्वेज युनाइट पीपुल?' (1981) है और दूसरा कुलदीप नैयर का है 'ए गवर्नमेंट शुड नॉट ग्लोरीफाइ ए लैंग्वेज' (1982)। इन दोनों लेखों की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में हिन्दी अंग्रेजी की भूमिका का प्रश्न रहा है। दोनों ही लेखों की ध्वनि यह रही है कि आज हम हिन्दी को जरूरत से ज्यादा महत्व दे रहे हैं और सरकार द्वारा हिन्दी को दिया जाने वाला समर्थन देश के हित में नहीं है। अपने पक्ष में इन दोनों सिद्धांतों ने कुछ निराले

तर्क दिये हैं, जिसकी छानबीन आज आवश्यक है क्योंकि ये ही तर्क प्रायः हमें अन्य व्यक्तियों द्वारा भी सुनने को मिलते रहते हैं।

सुनंदा सान्याल का यह मत है कि हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा सामाजिक नियंत्रण के कहीं अधिक अवसर प्रदान कर सकती है और यही कारण है कि आज कोई भी व्यक्ति आने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए बेहिसाब खर्च करने में संकोच नहीं करता। उनके मत में अंग्रेजी भी भारत के लिए उसी प्रकार स्वभाषा है जिस प्रकार हिन्दी, अहिन्दी-भाषिओं के लिए। मिसाल के तौर किसी तेलुगू या तमिल भाषी के लिए अगर अंग्रेजी परायी भाषा है तो हिन्दी भी उसकी अपनी भाषा नहीं है। यह एक साफ और सीधी बात है। यह कहना केवल एक वाक्छल ही है कि भारतीय भाषा होने के नाते हिन्दी पर अधिकार प्राप्त कर लेना अंग्रेजी के मुकाबले अधिक आसान होना चाहिए। इस तर्क में कोई बल नहीं है। कुलदीप नैयर यह तो स्वीकार करते हैं कि भारत में हिन्दी बोलने और समझने वालों की संख्या अन्य भाषाभाषियों की तुलना में सबसे अधिक है और लोकतन्त्र में संख्या को महत्व देना ही चाहिए। अतः हिन्दी को अन्ततः राजभाषा बनना ही है। लेकिन उनके अनुसार तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन को सफल बनाने की योजना वस्तुतः आग से खेलने जैसा है क्योंकि इससे भाषायी द्वेष बढ़ने की संभावना है। उनके अनुसार न तो हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की दृष्टि से सरकार को कोई कदम उठाना चाहिए और न ही भाषा को नियोजित करने के लिए प्रयत्न। हमें तो उस दिन की मात्र प्रतीक्षा करनी चाहिए जब दक्षिण के अहिन्दी भाषी प्रदेश स्वतः हिन्दी की स्वीकृति की घोषणा कर दें।

ऐसा लगता है कि कुलदीप नैयर 'भाषा नियोजन' की संकल्पना एवं प्रक्रिया से पूरी तरह अपरिचित हैं और सुनंदा सान्याल उनसे परिचित हैं, लेकिन भारत की भाषायी यर्थाथता को जानबूझकर नकारना चाहती हैं उनकी चिंता उस भाषा की खोज और स्थापना की तरफ सिमटी है, जो या तो विशाल सभा पर प्रभुत्व रख सके या जो सामाजिक नियंत्रण का साधन और शस्त्र बन सके। संप्रेष्णीयता, संचार और एकीकरण की प्रक्रिया आदि को भाषा नियोजन का लक्ष्य बनाने की अपेक्षा वे राज्यों के लिए प्रभुता संपन्न भाषा की बात उठाते हैं और अंग्रेजी को उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानते हैं।

अंग्रेजी बनाम हिन्दी और हिन्दी बनाम अन्य क्षेत्रीय भाषाओं पर विचार करते समय हम प्रायः यह बात भूल जाते हैं कि अंग्रेजी को मात्रभाषा के रूप में ग्रहण करने वालों की संख्या नहीं के बराबर है। 1971 की जनगणना के

अनुसार भारत की पूरी आबादी 548,195,652 है पर अंग्रेजी को मातृभाषा के रूप में घोषित करने वालों की संख्या मात्र 191,595 है। इसके अतिरिक्त हिन्दी को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करने वालों की संख्या 208,514005 है। हिन्दी कम से कम 6 राज्यों और 2 संघीय प्रदेशों की प्रमुख भाषा है, यथा राजस्थान (91. 73 प्रतिशत), हरियाणा (89.42 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (88.54 प्रतिशत), बिहार (79.77), दिल्ली (75.97 प्रतिशत) और चंडीगढ़ (55.96 प्रतिशत)। हिन्दी भाषी प्रदेशों मुख्यमंत्री अगर अपने क्षेत्रों में भाषा और संप्रषण की समस्या, उसके मानकीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तथा अन्य भाषाओं के साथ उसके सम्बंध के बारे में विचार करने के लिए किसी समय मिलते हैं तब कुलदीप नैयर ऐसे विद्वान चिंतित क्यों हो उठते हैं ? क्या उन्हें यह भय है कि बहुसंख्यक होने के बावजूद हिन्दी, जो अब तक प्रभुता-संपन्न अंग्रेजी के नीचे दबी सिसक रही थी, अपना नया व्यक्तित्त्व ग्रहण कर लेगी ?

इस तथ्य की ओर भी ध्यान देना होगा किसी भाषा का अपना अखिल भारतीय रूप क्या है? संख्या की दृष्टि से हिन्दी पंजाब (20.01 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (6.13 प्रतिशत), अंडमान निकोबार (16.07 प्रतिशत) में दूसरी प्रमुख भाषा के रूप में है और कम से कम पांच प्रदेशों में तीसरे स्थान पर है, यथा जम्मू-कश्मीर (15.07 प्रतिशत), असम (5.34 प्रतिशत), महाराष्ट्र (5.02 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (2.28 प्रतिशत) एवं त्रिपुरा (1.48 प्रतिशत)। अंग्रेजी की शक्ति भारत में द्वितीय भाषा के रूप में है, यद्यपि उसके मात्रभाषियों की संख्या नगण्य है। पर भारत के द्विभाषिक समुदाय के 25.7 प्रतिशत लोग अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी पिछड़ी भाषा नहीं है क्योंकि द्वितीय भाषा के रूप में इसको अपनाने वालों की संख्या 26.8 प्रतिशत है। इस संदर्भ में हमें अंग्रेजी और हिन्दी के आधार पर जन्मी द्विभाषिकता की प्रकृति पर भी ध्यान देना चाहिए जिसकी ओर सुनंदा सान्याल पूरी तरह बेखबर हैं (भले ही वह समाजभाषा वैज्ञानिकों के मत से अपनी बात को पुष्ट करना चाहते हैं) हिन्दी, प्रमुखत: आधारभूत द्विभाषिकता, सामाजिक संप्रेषण व्यवस्था के उस स्तर से संबंध रखती है जो जन जीवन की अपनी दैनिक आवश्यकताओं का परिणाम होता है। इस टाइप की द्विभाषिकता की जननी सामाजिक आवश्यकताओं का वह स्तर है जो न किसी औपचारिक भाषा शिक्षण की अपेक्षा रखता है और न ही किसी लिखित भाषा या साहित्यिक मानदंड का। हम इस अन्तर्राज्यीय बस अड्डों, रेलवे प्लेटफार्मों, विभिन्न धार्मिक स्थलो आदि पर समान व्यवहार की भाषा के रूप

में फलते फूलते देख सकते हैं। इसके विपरीत अंग्रेजी जिस संभ्रात टाइप की द्विभाषिकता को जन्म देती है, वह दो भाषाओं के मानक रूप की अपेक्षा रखती है। यह बहुत कुछ औपचारिक परिस्थितियों के बीच दूसरी भाषा के सीखने का परिणाम होती है। स्पष्ट है हिन्दी की शक्ति, भारतीय जनजीवन की अपनी आवश्यकता और सामान्य जीवन की संप्रेषण संबंधी अनिवार्यता के साथ है जब कि अंग्रेजी की शक्ति (?) बौद्धिक चिंतन और संभ्रांत व्यक्तियों के लिए 'प्रभुता' स्थापन में निहित है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि भारत एक बहुभाषीय देश है। इसीलिए राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में इसकी भाषायी समस्या जटिल रूप में हमारे सामने उभरती है। प्रायः हम इन दोनों भाषा प्रकार्यों के अंतर को पकड़ नहीं पाते इसलिए यह आवश्यक है कि हम संक्षेप में बहुभाषी देशों के संदर्भ में राजभाषा बनाम राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार कर लें।

बहुभाषी देश की संप्रेषण व्यवस्था अनिवार्यतः संपर्क भाषा अर्थात बृहत्तर परिणाम पर 'लिंगुआ फ्रैंका' को जन्म देती है। राष्ट्रीय संदर्भ में कभी इसका रूप राजभाषा को जन्म देता है और कभी राष्ट्रभाषा को। राजभाषा का संबंध राष्ट्रवादिता (नेशनेलिज्म) से रहता है, वह राष्ट्र को राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक सूत्रता में बांधने के काम में आने वाली प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा होती है। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि वह भाषा अपने देश की ही हो। राष्ट्रभाषा का संबंध राष्ट्रीयता (नेशनेलिज्म) से रहता है, उसके पीछे जातीय प्रमाणिकता और 'ग्रेट ट्रेडिशन' की शक्ति काम करती है और उसके सहारे समाज राष्ट्र के स्तर पर समाज और संस्कृति के संदर्भ में तादातम्य स्थापित करता है और अपनी सामाजिक अस्मिता सिद्ध करता है। प्रत्येक देश राष्ट्रीयता और राष्ट्रवादिता के द्वंद का समधान अपने ढंग से करता है। उदाहरण के लिए, घाना और गौंबिया ने राष्ट्रवादिता की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उस भाषा को देश की लिंगुआ फ्रैंका का स्तर दिया जो स्वतंत्रतापूर्वक शासकों (विदेशियों) की भाषा थी। इजरायल, थाइलैंड, सोमालिया, इथोपिया आदि देशों ने राष्ट्रीयता से अनुप्राणित होकर अंतरक्षेत्रीय स्तर पर फैली अपनी देश की लिंगुआ फ्रैंका को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया। पर भारत, श्रीलंका, मलेशिया आदि ऐसे देशों के सामने सामस्या जटिल थी क्योंकि परंपरा अर्जित और संस्कृति-समर्थित इसमें कई समुन्नत भाषाएं राष्ट्रभाषा की दावेदार बनकर आई। इन देशों ने अपना दूसरा ही रास्ता अपनाया।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार 'संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी' होगी' पर उसी अनुच्छेद के खंड 2 के अनुसार संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि के लिए उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए वह पहले से ही प्रयोग की जाती थी। ऐसा बताया जाता है कि अंग्रेजी के स्थान पर प्रशासनिक व्यवहार क्षेत्र में तत्काल प्रयोग में लाने के लिए हिन्दी भाषा को न तो समर्थ माना गया और न ही उतनी विकसित। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि इस एकाएक परिवर्तन से अहिन्दी भाषिओं को काफी असुविधा होगी जिससे प्रशासन तंत्र में काफी लंबी दरार पड़ जाएगी। इन सब बातों को ध्यान में रखकर यह व्यवस्था की गई कि 1965 तक स्थिति यथावत् बनी रहे ताकि एक तरफ हिन्दी को समृद्ध कर उसे प्रशासनिक प्रयोजनों की समर्थ भाषा भी बना लिया जाए और अहिन्दी भाषिओं को इतना समय भी मिल जाए कि वे अन्य भाषा के रूप में हिन्दी में व्यावहारिक दक्षता प्राप्त कर लें।

संविधान के अनुच्छेद 344 (2) के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि 'संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग' और 'संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी एक के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्वंधन (रिस्ट्रिकश्न)' के लिए आयोग संसदीय समिति का गठन करे। इस आधार पर सन 1955 में एक राजभाषा आयोग और उसकी सिफारिश पर विचार करने के लिए सन 1957 में एक संसदीय समिति का गठन किया गया। पूरी वस्तुस्थिति और सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए सन 1965 में आयोग और संसदीय समिति ने यह सिफारिश की कि अंग्रेजी का प्रयोग अभी भी यथावत् बना रहे और हिन्दी की समृद्धि और विकास में और गति लाने के लिए सरकार प्रयत्न करे। इन सिफारिशों को व्यावहारिक रूप से लागू करने के लिए संसद ने 1963 में एक राजभाषा अधिनियम पारित किया। इस राजभाषा अधिनियम की धारा 3 के अनुसार उन सभी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के प्रयोग की बात कही गई जिनमें वह प्रयुक्त होती आई थी। चार वर्ष बाद सन 1967 में राजभाषा (संशोधन) अधिनियम पारित हुआ। इस संशोधित अधिनियम के अनुसार यह छूट दी गई कि सरकारी कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में काम कर सकता है। जो क्षेत्र द्विभाषिकता के लिए अनिवार्य माने गये (जिनमें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रयोग को अनिवार्य माना गया है) वे हैं –

(क) संकल्प, सामान्य आदेश, नियम, अधिसूचना, तथा प्रेम विज्ञप्ति
(ख) संसदीय रिपोर्ट तथा सरकारी कागज पत्र और
(ग) संविदा, करारनामा, लाइसेंस, परमिट, टेंडर, नोटिस, और सरकारी फार्म।

राजभाषा संशोधन अधिनियम ने हिन्दी-अंग्रेजी द्विभाषिक स्थिति की ही पुष्टि की है। इस अधिनियम ने यह भी निर्धारित किया है कि केंद्र सरकार के जितने भी कार्यालय व मंत्रालय हैं वे आपस में हिन्दी भाषा में पत्राचार कर सकते हैं, लेकिन उनके अंग्रेजी का अनुवाद तब तक संलग्न कर भेजा जाए जब तक संबद्ध मंत्रालय या कार्यालय के अधिकारी हिन्दी की व्यावहारिक दक्षता प्राप्त नहीं कर लेते। संविधान के अनुच्छेद 347 के अनुसार एक राज्य तथा दूसरे राज्य तथा किसी राज्य और भारत संघ के बीच संप्रषण माध्यम के लिए वह भाषा, राजभाषा के रूप में व्यवहार में लाई जाएगी जो संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए उस समय प्राधिकृत भाषा होगी। लेकिन इसके साथ उसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि यदि दो या अधिक राज्य इस बात का करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच परस्पर संप्रेषण व्यवस्था के लिए भाषा हिन्दी होगी तो संप्रेषण में लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा। सन 1967 के राजभाषा संशोधन अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच पत्र व्यवहार अंग्रेजी में तब चलता रहेगा जब तक अहिन्दी भाषी राज्य हिन्दी में पत्र व्यवहार करने के लिए स्वयं निर्णय नहीं ले लेते। ऐसी स्थिति में अगर एक राज्य दूसरे राज्य के साथ हिन्दी में पत्राचार करता है तो उसके साथ अंग्रेजी अनुवाद की प्रति भेजना आवश्यक है।

राजभाषा संशोधन अधिनियम नें द्विभाषिक प्रक्रिया को बढ़ावा ही दिया। यह गौर करने की बात है कि स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी तथा मान्य कांग्रेसी नेता (महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय आदि) सभी यह मानते रहे कि भारतवर्ष की राजभाषा के लिए यदि कोई भाष सर्वाधिक उपयुक्त है तो वह एकमात्र हिन्दी ही है। महात्मा गांधी ने तो दूसरे गुजरात शिक्षा सम्मेलन के सभापति पद से बोलते हुए 1917 में यह कहा था कि राष्ट्रीय भाषा वही हो सकती है जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो, जो धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में माध्यम भाषा बनने की शक्ति रखती हो जिसको बोलने वाले बहुसंख्यक हों और जो पूरे देश के लिए सहज रूप से उपलब्ध हो अंग्रेजी किसी भी तरह इस कसौटी पर खरी नहीं उतरती। उनके अनुसार हिन्दी

ही एकमात्र वह भाषा थी जो उनके द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा करती थी जहां तक हिन्दी भाषा की व्यापकता और व्यवहार शक्ति की क्षमता का सवाल है गांधी जी के 1917 के भारत की स्थिति यह थी 'हिन्दी बोलने वाला जहां भी जाता है हिन्दी का प्रयोग करता है और कोई व्यक्ति इस पर आश्चर्य व्यक्त नहीं करता। हिन्दी बोलने वाले हिन्दू धर्मोपदेश और उर्दू बोलने वाले मौलवी संपूर्ण भारतवर्ष में धर्म और आचरण संबंधी अपने भाषण हिन्दी या उर्दू में देते पाये जाते हैं। औरों की बात तो दूर यहां तक कि अशिक्षित बहुसमाज भी उन्हें समझ लेता है। यह भी स्थिति है कि जब एक अशिक्षित गुजराती उत्तर भारत में आता है तो वह टूठी फूटी हिन्दी बोलने की कोशिश करता पाया जाता है पर जब उत्तर भारत का कोई भइया बंबई में दरबान का काम करता है, वह बंबई के सेठों से गुजराती में बात करने से इंकार कर देता है और ये उनके मालिक गुजराती सेठ हैं जो टूटी फूटी हिन्दी भाषा में उनसे बात करते पाए जाते हैं। गांधी जी के अनुसार यह कहना गलत है कि मद्रास में भी बिना अंग्रेजी के काम नहीं चलाया जा सकता। उन्होंने हिन्दी के सहारे मद्रास में भी सफलतापूर्वक अपना काम चलाया।

गांधी जी या अन्य कांग्रेसी नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दिलाए जाने की कोशिश की। राष्ट्रभाषा यदि राष्ट्रीयता की भावना के सूचक रूप में सिद्ध होती है तब उसके दो लक्षण आपस में गुँधे रूप में मिलते हैं भीतरी तौर पर देश को एकताबद्ध करने की प्रवृत्ति और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बाह्य रूप में देश को विशिष्ट सिद्ध करने की प्रवृत्ति। हॉगन (1966) किसी भी अन्य इकाई की तरह राष्ट्रभाषा का भी काम आभ्यंतर अंतर और और विभेद को कम करना ओर बाह्य अंतर और विभेद को उभारना होता है। इसका आदर्श होता है अभ्यांतर एकता और बाह्य विशिष्टता। आभ्यंतर एकता के लिए अगर बहुभाषी देशों में यह आवश्यक हो जाता है कि मातृभाषा के साथ ही एक अन्य भाषा 'लिंगुआ फ्रैंका' के रूप में उभरे तो बाह्य विशिष्टता के लिए यह भी जरूरी है कि 'लिंगुआ फ्रैंका' के रूप में राजभाषा का दर्जा पाने वाली भाषा स्वदेशी हो।

अभ्यांतर एकता और बाह्य विशिष्टता के रूप में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने का प्रयत्न स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भी होता रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का यह कहना था कि 'यह सच है कि कोई भी देश अपनी मातृभाषा के द्वारा ही आगे बढ़ सकता है। हम दूसरी भाषा सीख

सकते हैं, बोल सकते हैं, लेकिन नये विचार उससे पैदा नहीं होते। नए विचार केवल अपनी मातृभाषा के द्वारा ही निकल सकते हैं। इसलिए हमें भारत की सभी भाषाओं को आगे बढ़ाना है, प्रोत्साहन देना है और हिन्दी का तो एक विशेष स्थान है ही। हम चाहते हैं कि जल्दी से जल्दी भारत के सभी लोग अगर हिन्दी न बोल सके तो कम से कम समझ तो सके मैं समझतीं हूं, यह काम आगे बढ़ रहा है। इतने बढ़े देश में, जहां इतनी भाषाएं हैं वहां देश की एकता के लिए आवश्यक है कि कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सके, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला जुला कर रख सके। इसीलिए हिन्दी को बढ़ाना हम सब का काम है'।

यह गौर करने की बात है कि स्वतंत्रता पूर्व के सभी प्रयत्न राष्ट्रभाषा के लिए थे जो भाषा (हिन्दी) के माध्यम से देश को एकताबद्ध कर उसे अंतर्राष्ट्रीय नक्शे पर एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए थे। इसके भीतर अखिल भारतीय प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए सिद्ध भाषा प्राकार्य भी थे और संपूर्ण भूभाग की सांस्कृतिक एकता को एक ही सूत्र में आबद्ध करने वाले तत्त्व भी समाहित थे। पर भारतीय संविधान ने भाषा के संदर्भ में एकसूत्रता की कल्पना को केवल प्रशासनिक प्रयोजनों तक सीमित कर राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास को संघ की राजभाषा मात्र तक सीमित कर दिया। भारतीय संविधान में जहां भी अखिल अखिल भारतीय स्तर पर संघ की भाषा के रूप में हिन्दी की बात की गई है उसे राजभाषा ही घोषित किया गया है। सच तो यह है कि हिन्दी के रूप में सिद्ध आभ्यांतर एकता और बाह्य विशिष्टता की राष्ट्रीय चेतना पर स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही दुहरा दबाव पड़ा जिसके प्रभाव से भारतीय संविधान के भाषा संबंधी अधिकनियम भी सर्वथा मुक्त नहीं कहे जा सकते।

यह तथ्य भाषा की अन्तर्निहित संकल्पना के भीतर है कि भाषा अपने भाषायी समाज के सदस्यों के भीतर सामाजिक अस्मिता की भावना को प्रश्रय देती है। हर भाषा न केवल विभिन्न बोलियों को अपने भीतर समेट कर एक समग्र इकाई के रूप में उभरती है वरन् मात्रभाषा के रूप में बोलियों को स्वीकृति देते हुए भी सामाजिक धरातल पर उनके बोलने वालों के बीच न केवल संपर्क साधन का काम करती है वरन् उनके भीतर तादात्म्य भाव पैदा कर एक समाज के सदस्य होने की धारणा को चेतनाबद्ध करती है। सामाजिक स्तर पर एक होने की यह चेतनाबद्ध धारणा भी 'आभ्यंतर एकता अर्थात विभिन्न बोली भेद (अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी आदि) के बावजूद भी एकभाषी (हिन्दी) होने की धारणा और बाह्य विशिष्टता अर्थात एक ही भूभाग की अन्य भाषाओं (तमिल,

बंगला, गुजराती आदि) से भिन्न सिद्ध करने की प्रवृत्ति। बाह्य विशिष्टता जनपदीय उन समूहगत लक्षणों को उभारने का प्रयत्न करती है, जो स्थानीय संस्कृति और साहित्य के धरोहर होते हैं और जो उस भाषायी समाज की सुख समृद्धि की संकल्पना को साकर करने में सहायक होते हैं। इसीलिए जब प्रशासन की सुविधा के लिए भारत को विभिन्न जनपदीय प्रदेशों के रूप में पुनर्गठित कने का प्रयास हुआ तब उसके इस भाषायी आधार की उपेक्षा न की जा सकी। प्रदेशों का भाषायी आधार क्या रहा है उसके बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। हां, यह तथ्य अवश्य हमारे सामने है कि वे सभी प्रदेश बहुभाषी हैं। पर प्रदेशों के गठन और सीमा निर्धारण के समय 'डामिनेंट' भाषा की संकल्पना से हम कभी अपने को मुक्त नहीं कर सके हैं। यही कारण है कि जब किसी विकसित चेतना वाले भाषायी समाज को गौण स्थान मिला है और डामिनेंट भाषा का भाषायी समाज उसके प्रगति में बाधक हुआ है। भाषायी दंगे का वीभत्स रूप भी सामने उभरा है।

संविधान की अष्टम अनुसूची में इस प्रकार आज 15 मान्य प्रादेशिक भाषाएं हैं। जिनमें से अधिकांश भाषायी समाज की अस्मिता की साधक हैं और बाह्य विशिष्टता के रूप में अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व की आकांक्षी हैं। इतिहास की जनपदीय सह-अनुभूतियां ओर साहित्य की भाषाबद्ध चेतना उनकी आकांक्षाओं में अपना रंग भरती है। स्थानीय सुख समृद्धि की लालसा और क्षेत्रीय स्तर पर आर्थिक सुरक्षा की भावना उनकी अपन अस्मिता में प्राण फूंकती है। इसलिए जब कभी भी अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय भाषा के रूप में किसी एक भाषा (भले ही बृहत्तर भागों में समझी जाने वाली और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के समय सर्वाधिक प्रयोग में आने वाली हिन्दी भाषा ही क्यों न हो) को मान्यता देने की बात उठी है, अन्य भाषायी समाज ने इस शंकालुभाव से देखा है। कहीं इससे उनके भाषायी समाज की विशिष्टता खंडित तो नही हो रही ? कहीं इसके परिणाम स्वरूप उनके समाज से आर्थिक विकास का रास्ता अवरुद्ध तो नही हो रहा ? कहीं कोई और भाषायी समाज बढ़कर उनकी जातीय चेतना की हीन सिद्ध तो नहीं कर रहा है ? दूसरी भावना यह भी सामने उभरी है कि भारत अगर एक राष्ट्र है तो जिस प्रकार 'हिन्दी भाषायी समाज' उसका एक अंग है, उसी प्रकार हम भी उसके एक अंग हैं, फिर एक अंग की भाषा पूरे राष्ट्र का प्रतीक बन 'राष्ट्रभाषा' कैसे और क्यों न बने ? यह भी तर्क उभारा गया है कि जिस प्रकार किसी राष्ट्र के लिए यह आवश्यक नही है कि उसके सभी सदस्य एक धर्म के

मानने वाले हों, उनके खान पान, रीति-रिवाज और आचरण विचार रूढ़ियां एक हों, इसी प्रकार उसके लिए यह भी जरूरी नहीं कि उसके लिए एक ही राष्ट्रभाषा (भाषा नहीं ?) हो। पर यह भी सच है कि भाषाओं की इस भिन्नता और सामाजिक अस्मिताओं के भेद के बावजूद यह हमेशा अनुभव किया जाता रहा है कि अलग अलग भाषाओं के बीच कड़ी के रूप में कोई भाषा अवश्य होनी चाहिए। प्रशासन की सुविधा और अखिल भारतीय स्तर पर संप्रेषण व्यवस्था के लिए एक संपर्क भाषा देश की नियति है। इसलिए हिन्दी को एकनिष्ठ 'राष्ट्रभाषा' के रूप में मान्यता देने के पक्ष के समर्थक भी अधिकांशत: उसे प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए सिद्ध 'राजभाषा' का दर्जा देने के लिए सहमत हो गये।

लेकिन इसके साथ पाश्चात्य शिक्षा के वातावरण में पला और स्वतंत्रता पूर्व की विदेशी प्रशासन व्यवस्था का संस्कारग्रस्त व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग भी है जो राष्ट्रभाषा या राजभाषा की समस्या को हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के संबंधों में न ढूंढ़कर हिन्दी और अंग्रेजी की प्रतिद्वंद्विता के रूप में उभारना चाहता है। उनके तरकश के तीर रहे है अंतर्राष्ट्रीय संबंध, वैज्ञानिक उपलब्धियां, आर्थिक विकास, विकसित भाषा रूप आदि। इनके साथ उनका यह भी कहना है कि राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र को एक होने के लिए यह जरूरी नहीं कि उसकी राजभाषा, उस देश की ही कोई भाषा है। आखिर स्विट्जरलैंड में तीन राजभाषाएं हैं और उनमें से कोई भी उस देश की नहीं है। इसी प्रकार बेल्जियम की स्वीकृत दानों राजभाषाओं में से दोनों ही तो उस देश की अपनी भाषाएं नहीं हैं और मान भी लें कि राजभाषा, उसी देश के बोलने वालों की कोई भाषा हो, तो अंग्रेजी भाषा को अब भारत की एक भाषा के रूप में ही मान लेना चाहिए क्योंकि एक ओर तो अखिल भारतीय स्तर पर प्रशासन के लिए यह पहले से ही सिद्ध भाषा है और दूसरी ओर यह भारतवर्ष के पूरे बुद्धिजीवी वर्ग की वह भाषा है जिसके माध्यम से वह आधुनिकतम ज्ञान ग्रहण और अभिव्यक्त करती है (ये सभी तर्क समस्या के एक आंशिक पक्ष को उभारते हैं और सोंचने समझने की एक भ्रामक दिशा के परिणाम है।) यह अन्यत्र दिखलाया जा चुका है। यहां इतना कहना ही अलग होगा कि ये सभी तर्क उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक बहुत ही सीमित वर्ग की अधिकार रक्षा और प्रभुता शक्ति को अपने स्वार्थ हितों तक बांध रखने की भावना से मूलत: प्रेरित हैं। शासन तंत्र का प्रसार कर अगर उसमें जनता के अधिक से अधिक सहयोग लेने और उससे संबंध स्थापित करने की बात

लोकतन्त्र की ध्वनि में है तो किसी ऐसी ही भाषा को राजभाषा के पद पर उठाना होगा जिसके बोलन समझने वाले सबसे अधिक हों और जिसका प्रचार और प्रसार बहुआयामी हो। आज की स्थिति में वह हिन्दी भाषा ही है। पर इसके साथ यह भी सच है कि उच्च शिक्षा प्राप्त यह अधिकारी वर्ग ही भारतीय प्रशासन की धुरी बना बैठा है और मात्र हिन्दी को राजभाषा का माध्यम बनाने से अगर किसी के हितों पर सबसे करारी चोट पड़ेगी तो वह यही वर्ग होगा। शासनतंत्र की व्यवहारिक सुविधा के लिए ही मूलत: हिन्दी अंग्रेजी की द्विभाषिक स्थिति संवैधानिक आवाज की विडंबना के रूप में सुनी जा रही है।

राजभाषा (प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा) और राष्ट्रभाषा (सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा) के बीच के यर्थाथ साधनों के रूप में हिंडोलें लेती हिन्दी की नियति की यही आवाज संविधान के अनुच्छेद 351 में मिलती है जहां उसकी भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम बनाने की बात की गई पर जिसको औपचारिक दृष्टि से केवल राजभाषा के दायित्व और सूचक तत्त्व के रूप में मान्यता दी गई हैं।

जैसा पहले संकेत दिया जा चुका है, फिशमैन (1971) ने इस नीति निर्णय के आधार पर कि किस भाषा को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया जाए राष्ट्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया है। उनके अनुसार क-टाइप के निर्णय लेने वाले राष्ट्रों का वर्ग है जो जातीय प्रमाणिकता और 'ग्रेट ट्रेडिशन' की शक्ति के दबाव से मुक्त होकर अपने देश को एक सूत्रता में बांधने की ओर प्रवृत्ति हैं। इस वर्ग में उनके बुद्धजीवियों की आवाज सुनी जाती है जो 'आधुनिकता' से प्रभावित होकर अपने देश को समुन्नत करना चाहते हैं। इसके विपरीत ख-टाइप के निर्णय लेने वाले राष्ट्रों का वर्ग अपने चिंतन के पीछे हमेशा जातीय प्रामाणिकता और 'ग्रेट ट्रेडिशन' का दबाव महसूस करता है। यह वर्ग इस विचार से प्रेरित रहता है कि सामाजिक एकता और जातीय सामांजस्य की भावना को जाग्रत करने के लिए कोई एक स्वदेशी भाषा ही राष्ट्रभाषा की दावेदार बना सकती है। ग-टाइप के निर्णय लेने वाले राष्ट्रों की चिंतन प्रक्रिया जटिल होती है। ऐसे राष्ट्र यह मान कर चलते है कि क्षेत्रीयता की स्थानिक प्रवृत्ति से प्रेरित सामाजिक वर्ग का युग बीत गया और उससे ऊपर उठने का अर्थ ही होता है द्विभाषिक बनना। इस दृष्टि से द्विभाषिकता की स्थिति आज सामान्य व्यक्ति की ही नियति नहीं है अपितु यह स्थिति पूरे राष्ट्र की है। केवल राष्ट्र के धरातल पर सिद्ध प्रादेशिक (क्षेत्रीय) भाषाओं और अंतर क्षेत्रीय संपर्क सूत्र स्थापित करने वाली भाषा के बीच की

द्विभाषिकता जरूरी नहीं अपितु देश को आधुनिक बनाने और दुनिया के अन्य देशों से संबंध स्थापित करने के लिए भी यह जरूरी है कि किसी एक विदेशी पाश्चात्य भाषा को स्वीकार कर दुहरी द्विभाषिकता को हम बढ़ावा दें।

निश्चय ही भारतवर्ष अगर किसी वर्ग में रखा जा सकता है, तो वह 'ग–टाइप' के निर्णय लेने वाले देशों का वर्ग। पर यहां की स्थिति उतनी सरल नहीं जितनी कि फिशमैंन समझते हैं। राष्ट्रभाषा के चुनाव के पीछे यहां अनेक ऐसी प्रवृत्तियां काम करती रहीं है जिनका आपस में तालमेल बैठाना बहुत सरल न था। कम से कम चार निश्चित धाराएं तो सामने उभर कर आतीं हैं–

(1) राष्ट्रीयतावादी धारा यह मानकर चलती है कि संस्कृत भाषा संस्कृति सभ्यता की ही नहीं वरन् अनेक भारतीय भाषाओं की जननी है जिन भाषाओं इसका पारिवारिक संबंध नहीं भी रहा उसको भी यह प्रभावित करती रही है। जातीय प्रामाणिकता के ऐतिहासिक गौरव स्तंभ के रूप में यह भाषा आधुनिक सभी भारतीय भाषाओं का हृतकंपन है इसलिए एक राष्ट्र और उसके हृतकंपन को मूर्तमान करने वाली राष्ट्रभाषा संस्कृत भाषा के रूप में ही सिद्ध हो सकती है।

(2) अंतर्राष्ट्रीयतावादी धारा यह मानकर चलती है कि राष्ट्र को प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टि से एक तो होना ही है। इसके साथ उसे आर्थिक दृष्टि से समृन्नत और शैक्षिक दृष्टि से सुदृढ़ होने के लिए यह जरूरी है कि वह आधुनिक ज्ञान विज्ञान की उपलब्धियों से परिचित हो। ऐसा तभी संभव है जब हम अधिक विकसित और वैज्ञानिक चिंतन प्रणाली को अधिक क्षमता से व्यक्त करने वाली अंग्रेजी भाषा को स्वीकार करें जो अब तक उच्च शिक्षा की माध्यम भाषा होने के कारण शिक्षित वर्ग के लिए सहज ही उपलब्ध है। इस विचारधारा के अनुसार आज कोरी राष्ट्रीय भावुकता से काम नहीं चल सकता। संपर्क और सहयोग के कारण अब तक विभिन्न राष्ट्रों से समूह के रूप में फैला संसार अब सिमटता जा रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के बिना आज किसी भी राष्ट्र के विकास की संभावना दु:स्वप्न मात्र है। इसके लिए हमें जो राष्ट्रभाषा चुननी है उसको एक आयाम पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को भी छूने की शक्ति रखनी चाहिए।

(3) क्षेत्रीय धारा वाले राष्ट्र का राजनीतिक इकाई मानते हैं और उसे इकाई मानते हुए भी अपनी प्रादेशिकता सत्ता और क्षेत्रीय अधिकारों के प्रति सजग और सतर्क हैं, उनके अनुसार जिस प्रकार भारतवर्ष अनेक धर्मों और अनेक

प्रजातियों का देश है उसी प्रकार वह ऐसा बहुभाषायी देश भी जहां अनेक भाषाएं अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक संपदा के साथ फल फूल रहीं हैं। इन सभी को अपनी सार्थकता है, अपने संदर्भ हैं और ये सभी राष्ट्रीय चेतना के सिद्ध रूप हैं। इनमें से किसी एक को राष्ट्रपद पर बैठाने पर अन्य सभी भाषायी समाजों के अपने विकास का रास्ता सापेक्षतया कठिन हो जाएगा। भारतवर्ष ऐसे लोकतांत्रिक देश में ऊपर उठने के लिए सबको समान सुविधा मिलनी चाहिए। इसलिए निष्कर्षत: इस धारा के समर्थक यह मानते पाए जाते हैं कि सभी प्रादेशिक भाषाएं भारत की राष्ट्रीय भाषाएं हैं।

(4) लोकवादी जनतांत्रिक धारा यह मानती है कि भारतवर्ष अनेक प्रदेशों का एक समुच्चय है पर इस समुच्चय की सिद्धि एक संघ के रूप में है। यह संघ ही है जो एक ओर भारत को राजनीतिक इकाई का रूप देता है और दूसरी ओर राज्यों के अंतससंबंधों के बीच कड़ी का काम भी करता है। इसी प्रकार प्रादेशिक भाषाओं की सता और सार्थकता को स्वीकार करती हुई वह उसके बीच कड़ी के रूप में सिद्ध होने वाली एक भाषा की धारणा को बढ़ावा देता है। उसके अनुसार भारत लोकतंत्र के सिद्धांत का प्रबल समर्थक भी है, अत: अखिल भारतीय स्तर पर संपर्क सूत्र के रूप में स्वीकृत वही भाषा हो सकती है जिसके सामाजिक आयाम बहुमुखी और बहुस्तरीय हों, जिसको अन्य भाषा के रूप में बोलने और समझने वालों की संख्या सबसे अधिक हो और जो भारतीय संस्कृति की लोकवादी चिंतन धारा को मूर्तमान करने में सक्षम हो। ऐसी भाषा संप्रति हिन्दी ही है।

भारतीय संविधान में भाषा संबंधी अनुच्छेदों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माता इन चारों प्रवृत्तियों से अपरिचित न थे और उनका प्रयास यही रहा है कि जहां तक हो सके, इन चारों धाराओं के बीच एक सामंजस्य पैदा कर कम से कम भाषायी तनाव की स्थिति पैदा की जाए। लोकवादी और अन्तर्राष्ट्रीयवादी धारा को एक साथ समेटने को कोशिश का यह परिणाम है कि प्राथमिक राजभाषा के रूप में 'हिन्दी' और सहयोगी राजभाषा के रूप में अंग्रेजी को संविधान में स्वीकृत पाते हैं। इसी प्रकार क्षेत्रीय धारा के साथ समझौता करने के प्रयत्न को हम इस रूप में पाते हैं कि किसी भाषा को यहां तक कि हिन्दी को भी, राष्ट्रभाषा के नाम से संबोधित या परिभाषित नहीं किया

गया है, और अष्टम अनुसूची में स्वीकृत भाषाओं के रूप में संस्कृत, उर्दू और सिंधी के साथ प्रादशिक (राज्य भाषाओं) भाषाओं का नाम लिखा पाते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीयतावादी धारा को इसके साथ मिलाकर रखने की प्रवृत्ति को हम अनुच्छेद 351 में पाते हैं, जो हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश रूप में यह विचार व्यक्त करता है कि हिन्दी को अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए विकसित किया जाए।

6

हिन्दी की भावी अंतर्राष्ट्रीय भूमिका एवं लिपि

आधुनिक हिन्दी की यह असाधारण विशेषता है कि वह अपने वर्तमान रूप में किसी क्षेत्र विशेष की बोली नहीं है। उन्नीसवीं सदी से प्रचलित खड़ी बोली नाम से उसके किसी क्षेत्र की बोली होने का संकेत नहीं मिलता। यह नाम वास्तव में उसे ब्रजभाषा से भिन्न सूचित करने के लिए दिया गया था। ब्रज की 'ओ' कार बहुलता की जगह उसमें 'आ' कार की प्रधानता है और ब्रज की मधुरता के विपरीत उसमें खरापन या खड़खड़ाहट अधिक है। मेरठ-दिल्ली के अतराफ की बोली से उसका उदय अवश्य हुआ, पर उस क्षेत्र की खड़ी बोली क्षेत्र का नाम भाषा के नामकरण के बाद मिला।

बाँगरु, कौरवी और हरियाणवी नाम भी बाद में दिए गए। सबसे पहले इस भाषा को सिंधु के पार के देश 'हिन्द' और उसके निवासी 'हिन्दू' 'हिन्दुई' और 'हिन्दवी' ये सब नाम आठवीं से लेकर ग्यारहवीं-बारहवीं सदी तक लगातार आक्रमण करने वाले अरब, तुर्क, ईरानी और अफगानों ने दिए थे। इस तरह हिन्दी भाषा को संपूर्ण देश की भाषा के रूप में सबसे पहले विदेशियों ने पहचाना और उसी के अनुरूप उसे नाम दिया। 'हिन्दुई', 'हिन्दवी' के साथ 'हिन्दी' नाम भी काफी पुराना है, जैसा कि अमीर खुसरो (1253-1325) के उल्लेख से सिद्ध होता है, हालांकि अमीर खुसरो ने 'हिन्दी' नाम से, जान पड़ता है, संस्कृत का भी संकेत किया था, क्योंकि हिन्दी को अरबी के समान कहकर उन्होंने जो प्रशंसा की, वह संस्कृत पर अधिक लागू होती है।

बारहवीं-तेरहवीं सदी से शुरू होकर जब वह अपभ्रंश से निकलकर स्वतंत्र भाषा बन रही थी, तभी से हिन्दवी ने अठारहवीं सदी तक सारे देश में दूर-दूर फैलकर संपर्क भाषा का दायित्व संभाल लिया था। विचित्र संयोग है कि उस समय तक और उसके बाद उन्नीसवीं सदी के अंत तक वह हिन्दी साहित्य की मुख्य भाषा भी नहीं थी। अवधी और ब्रज और अंततः ब्रज का हिन्दी का काव्य भाषा के रूप में पांच सौ वर्ष तक वर्चस्व बना रहा। परंतु अठारहवीं शताब्दी से जो नई सामाजिक चुनौतियां आने लगीं, उनका सामना करने में अपने व्यापक प्रसार के बावजूद ब्रजभाषा असमर्थ सिद्ध हुई। यह भारी जिम्मेदारी उठाने का सौभाग्य हिन्दवी नाम से प्रचलित भाषा को ही मिला। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से ही विदेशी विजेताओं के द्वारा राज्य विस्तार के लिए जो सैनिक अभियान किये गए, उनमें यही भाषा जन संपर्क का माध्यम रही। इस कारण शुरू से ही उसकी क्षेत्रीय विशेषताएँ घिसने लगीं और अंतरप्रांतीय व्यवहार में आकर उसका नया रूप निखरने लगा। हिन्दी क्षेत्र की बोलियों के अलावा उसने भारत की प्रायः सभी मुख्य भाषाओं के अनेक तत्त्व आत्मसात् किए और अपनी असीम ग्रहणशीलता के बल पर उसने सारे देश में स्वेच्छा से अपनाए जाने की योग्यता पैदा कर ली। हिन्दी की यही शक्ति उसकी भावी संभावनाओं का स्रोत है।

जिस तरह उत्तर-पश्चिमी स्थल मार्गों से आए विदेशियों ने उसे हिन्दी नाम देकर पूरे देश की प्रमुख भाषा बनाया और उसी के माध्यम से अपना शासन उत्तर-पूर्व, दक्षिण और पश्चिम सभी ओर बढ़ाया, उसी तरह दक्षिण-पश्चिमी समुद्री रास्तों से आए यूरोप के व्यापारी, राजनीतिक विजेताओं ने भी हिन्दुस्तानी नाम से उसकी पहचान की। इस तरह दोनों नाम हिन्दी और हिन्दुस्तानी भाषा की अक्षेत्रीय, अंतरप्रांतीय और सर्व भारतीय व्यवहार योग्यता के सूचक है। इसी योग्यता के बल पर और अपनी मूल प्रकृति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुराग से यह भाषा अंतर्राष्ट्रीय मान्यता की अधिकारी बन जाती है। हर नए राजनीतिक दौर में विदेशियों के द्वारा प्रतिष्ठा पाना इस मान्यता की गारंटी है।

सर्वसाधारण के व्यवहार की हिन्दी या हिन्दुस्तानी अपने दो भिन्न परिनिष्ठित और साहित्यिक रूपों में भारत और पाकिस्तान दो देशों की राजभाषा है। हिन्दी और उर्दू दो स्वतंत्र भाषाओं के रूप में भारतीय संविधान में भी स्वीकृत है। परन्तु यह सर्वविदित है कि उनकी भिन्नता और अभिन्नता, पृथकता और एकता के बीच लगभग एक सौ वर्ष तक जो मीठा-कड़ुवा विवाद चलता रहा और भारत में जो उनका मिला-जुला व्यवहार होता रहा और हो रहा है, उससे

यह साफ प्रकट होता है कि हिन्दी और उर्दू ऐसी भिन्न और परस्पर अनमिल भाषाएँ नहीं हैं कि उनमें परस्पर संवाद संभव न हो। हिन्दी और उर्दू के भारत में कोई अलग-अलग क्षेत्र नहीं हैं। यदि उर्दू पाकिस्तान की राजभाषा है, तो भारत के भी कई राज्यों में उसे यह दर्जा मिला हुआ है। जिस तरह भारत के विभिन्न भाषा क्षेत्रों में हिन्दी कहीं भी अजनबी नहीं है और उसके माध्यम से हर हर जगह सामान्य व्यवहार संभव है, उसी तरह बल्कि उससे भी अधिक पाकिस्तान की सभी भाषाओं- पंजाबी, सिंधी और पश्तों के क्षेत्रों में हिन्दी के लिए सहज अनुकूलता है।

भारत के हिन्दी भाषी को पाकिस्तान बनने के पहले से इन भाषा-भाषियों के साथ आत्मीयता स्थापित करने में जो आसानी होती थी, उसमें भी कोई फर्क नहीं पड़ा। विदेशों में हिन्दी भाषी भारतीय और पाकिस्तान के बीच भाषा का कोई अंतर नहीं रहता। फिर भी, हिन्दी और उर्दू नाम से दो भाषाओं वाले देशों की ये भाषाएँ अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की भाषाएँ कही जा सकती हैं। इतना ही नहीं, भारत के पास-पड़ोस के देशों नेपाल, अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका में हिन्दी के सरल रूप का सामान्य व्यवहार किसी न किसी स्तर पर कमोबेश सीमा में प्रचलित है। हिन्दी के इस सरल रूप को हिन्दुस्तानी कहना अधिक उपयुक्त है। विशेष रूप से उर्दू के साथ अधिक निकटता प्रकट करने के लिए। भारत और पाकिस्तान दोनों की इस सम्मिलित भाषा की अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की संभावनाएँ असीम हैं। पश्चिम एशिया के देशों में जहाँ पर इस समय भारतीयों और पाकिस्तानियों के आवागमन का क्रम बढ़ता जा रहा है, इसका स्पष्ट संकेत मिल रहा है। ज्यों-ज्यों हिन्दी, उर्दू भाषी व्यापार, कारोबार मजदूरी और तकनीकी और गैर तकनीकी पेशों के सिलसिले में फैलते जाएंगे, हिन्दी-हिन्दुस्तानी का व्यवहार जोर पकड़ता जाएगा। पश्चिम एशिया के देशों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी में अरबी-फारसी मूल के शब्दों की अपेक्षा बहुलता रहेगी। भारत बढ़ने पर दोनों देशों की निकटता में भी वृद्धि हो सकती है। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के अंतर्राष्ट्रीय प्रसार में फिल्मों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी फिल्मों और सुगम संगीत की लोकप्रियता पाकिस्तान और पश्चिम एशिया के देशों में निरंतर बढ़ रही है। भाषा के प्रसार में इसमें अनायास सहायता मिलती है।

भारतीय संस्कृति का प्रसार किसी समय दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में हिन्देशिया, मलेशिया, कम्बोज, हिन्द-चीन से लेकर जापान, कोरिया और मंगोलिया तक था। चीन में भी बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ था। इस सांस्कृतिक

अभियान की आधार भाषाएँ संस्कृत और पालि थीं। इन देशों की भाषाओं में संस्कृत और पालि का प्रभाव आज तक मौजूद है। श्रीलंका की सिंहली भाषा उसी वर्ग की है, जिसकी हिन्दी। संस्कृत और पालि के माध्यम से सिंहली और हिन्दी की निकटता है। इस प्राचीन सांस्कृतिक और भाषिक दाय को हिन्दी ही वहन कर सकती है। इन देशों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का अंतर्राष्ट्रीय रूप अपेक्षाकृत संस्कृतनिष्ठ होगा।

प्रवासी भारतीय दुनिया के अनेक भागों में काफी बड़ी संख्या में फैले हुए हैं। इनमें हिन्दी के अलावा अन्य भाषा-भाषी भी हैं। पर अधिकांश में उनकी समान संप्रेषण भाषा हिन्दी बन गई है। मॉरीशस, फीजी, ट्रिनिडाड, गुयाना आदि भूतपूर्व ब्रिटिश उपनिवेशों में बहुत बड़ी संख्या हिन्दी क्षेत्र के भोजपुरी बोली बोलने वालों की है। अन्य बोलियों और भाषाओं के बोलने वाले भी हैं और हिन्दुओं के अलावा मुसलमान भी हैं। सामान्य संप्रेषण के लिए इन सबने हिन्दी-हिन्दुस्तानी को ही अपनाया है। अफ्रीका के कुछ देशों दक्षिण अफ्रीका, केनिया, युगांडा आदि में भी जहाँ गुजराती भाषियों की संख्या अधिक है हिन्दी भाषा भारतीयों के सामान्य व्यवहार में अधिक आती है। इन देशों में आर्य समाज ने हिन्दी के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत में हिन्दी की पूर्व प्रतिष्ठा होने पर इन देशों के मूल निवासी भी अधिकाधिक संख्या में हिन्दी को अपनायेंगे।

भारत की जनसंख्या बढ़ती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप अन्य भाषा-भाषियों की तरह हिन्दी भाषियों की प्रवासभीरुता कम होती जाएगी। तमिल भाषी तो कई शताब्दियों पहले दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में जा बसे थे। मलयालम भाषी केरलीय भी हाल में ही विदेशों में जाने लगे हैं। इधर कुछ दिनों से वे हजारों की तादाद में पश्चिम एशिया के देशों में भरते जा रहे हैं। पंजाबी भाषी दुनिया में हर जगह फैल गए हैं। अमरीका के पश्चिमी तट पर कैलिफोर्निया में उन्होंने बड़े-बड़े फार्म बनाए हैं। इन सब की तुलना में हिन्दी भाषी शायद समुद्र तटों से बहुत दूर स्थल में सिमटे रहने के कारण और पंजाबियों की तुलना में साहसिकता और कर्मठता की दृष्टि से पिछड़े होने के कारण अधिक संतोषी प्रवासभीरु हैं। परंतु आबादी का दबाव और बेरोजगारी जैसे उन्हें कलकत्ता और बंबई जाने के लिए विवश करती है। विदेशों की ओर से आकृष्ट करेगी और भविष्य में जब भारत की विभिन्न भाषाओं वाले विदेशों में बसेंगे, तब अपने सामान्य आपसी व्यवहार के लिए हिन्दी-हिन्दुस्तानी का ही सहारा लेंगे। इंग्लैंड

में जा बसे भारतीयों और पाकिस्तानियों का व्यावहारिक भाषा-सर्वेक्षण किया जाए तो कुल मिलाकर निष्कर्ष हिन्दी-हिन्दुस्तानी के पक्ष में ही निकलेगा। यह स्थिति इंग्लैंड के अलावा यूरोप के अन्य देशों में, अमरीका में और अन्यत्र भी होगी। इस संबंध में उच्च शिक्षा प्राप्त भारतीयों, विशेष रूप से हिन्दी भाषियों का अंग्रेजी के प्रति दासभाव जैसा लगाव बहुत बड़ी बाधा है। पढ़े-लिखे, यानी अंग्रेजीदां हिन्दी भाषियों की अपनी भाषा के प्रति विशेष उदासीनता वास्तव में चिंत्य है।

सामान्य व्यवहार की भाषा के रूप में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रसार हिन्दी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का प्रबल और मूलभूत अंग है। इस संबंध में भारत के विभिन्न भाषा क्षेत्रों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी के व्यवहार रूपों की विविधता को ध्यान में रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी अंग्रेजिया हिन्दी की न तो लिपि अलग है और न इसका समर्थक रही दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल, पूर्व भारत के बंगाल, असम और उड़ीसा, उत्तर भारत के कश्मीर और पश्चिम भारत के पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र के अनेक मुस्लिम बहुत छोटे-छोटे क्षेत्रों की हिन्दी, कलकतिया हिन्दी, बंबइया हिन्दी, कुछ फिल्मों के मजाक के तौर पर प्रयुक्त दक्षिणी भारतीयों की हिन्दी, पंजाबी हिन्दी, गुजराती हिन्दी, बंगाली हिन्दी आदि की तरह भिन्न-भिन्न देशों में प्रयुक्त हिन्दी-हिन्दुस्तानी में उन-उन देशों की भाषाओं का रंग आना अनिवार्य है। मानक हिन्दी में भी डच, फ्रेंच, पुर्तगाली और अरबी, फारसी-तुर्की भाषाओं के न जाने कितने शब्द और कुछ भाषिक तत्त्व भरे पड़े हैं। वर्तमान समय में हिन्दी के देश व्यापी प्रसार के साथ भारतीय भाषाओं के प्रभाव से उसके रूपों में विविधता आती जा रही है। इसमें भी अधिक विविधता उसके सामान्य व्यवहार के अंतर्राष्ट्रीय प्रयोगों में आयेगी। उसके लक्षण आज भी देखे जा सकते हैं। हिन्दी की यह ऐतिहासिक उदारता बनी रहेगी। अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में इस तरह की उदारता अंग्रेजी में सबसे अधिक है और शायद फ्रेंच में सबसे कम। जिस तरह इंग्लैंड जैसे छोटे से देश में क्षेत्र भेद के अनुसार भाषा का प्रयोग भेद पाया जाता है, और जिस प्रकार अमरीका के भिन्न-भिन्न यूरोपीय भाषाओं के बोलने वालों की अमरीकी अंग्रेजी में विविधता पाई जाती है, उसी तरह भूतपूर्व अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन देशों की अंग्रेजी में संबंधित भाषाओं का रंग लिए अंग्रेजी के तरह-तरह के रूप देखे जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की हिन्दी-हिन्दुस्तान की भी कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति रहेगी। एक अंतर इस कारण अवश्य रहेगा कि अंग्रेजी का प्रसार शासन के बल पर हुआ, इसलिए सभी देशों की अंग्रेजी को उसके स्टैंडर्ड रूप की ओर उन्मुख

बनाए रखने के प्रयास किए जाते रहे। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के विविध रूपों को हिन्दी के परिनिष्ठित रूप की ओर उन्मुख होने की उस तरह की मजबूरी कभी नहीं हो सकती। राजभाषा हिन्दी के परिनिष्ठित रूप की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता और उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा ही इस संबंध में नियामक अधिकरण की भूमिका निभा सकती हैं।

व्यावहारिक हिन्दी की एक और प्रवृत्ति गत पचास-साठ वर्षों से तेजी से बढ़ती जा रही है। वह है, अंग्रेजी शब्द ही नहीं पदबंधों तक की ज्यों का त्यों हिन्दी वाक्यों में ठूँसने की प्रवृत्ति। भाषा व्यवहार के सभी स्तरों पर अंग्रेजी से परिचित हिन्दी भाषियों की हिन्दी-हिन्दुस्तानी में मिश्रण की यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ती जा रही है कि अक्सर क्रिया रूप और उसमें भी केवल सहायक क्रिया के रूप, परसर्ग और शायद क्रिया विशेषण ततो हिन्दी के रहते हैं, वाक्य के अन्य सभी घटक अंग्रेजी से लेकर प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी के इस रूप को उस तरह का अभी कोई नाम नहीं दिया गया, जिस तरह अरबी-फारसी शब्दावली के अतिशय बोझ से लदी हिन्दी को उर्दू नाम से अलग कर लिया गया था। इसका कारण शायद यही है कि उर्दू की तरह इस अंग्रेजी हिन्दी की न तो लिपि अलग है और न इसका समर्थक कोई अलग सांस्कृतिक या धार्मिक समुदाय। परन्तु भाषा प्रयोग के आधार पर समाज में वर्ग विभाजन तो इस प्रवृत्ति के कारण बढ़ ही रहा है। आजादी के बाद अंग्रेजी का प्रभाव और उसकी आतंकपूर्ण प्रतिष्ठा घटने के बजाए बढ़ती ही गई है। इस कारण इस अस्वस्थ और कुंठाजनक भाषा मिश्रण को रोकना कठिन जान पड़ता है। हिन्दी ही नहीं भारत की सभी भाषाएँ इस रोग की शिकार हो रही हैं। कोई देशव्यापी जन आंदोलन ही इस प्रवृत्ति को निरुत्साहित कर सकता है। हिन्दी में अंग्रेजी का यह मिश्रण उसके अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी की तकनीकी शब्दावली अवश्य एक सीमा तक हिन्दी के मौखिक व्यवहार में सहायक होगी। बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त विभिन्न व्यावसायिक वर्गों के परस्पर संवाद की अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी में निश्चय ही मुख्य रूपों से अंग्रेजी और सामान्य रूप से अन्य यूरोपीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली का प्रयोग अधिक सुविधाजनक और प्रायः अनिवार्य होगा।

सामान्य व्यवहार की हिन्दी-हिन्दुस्तानी विविध रूपों की स्थिति देश में प्रचलित उसके विविध रूपों के समान स्टैंडर्ड हिन्दी से नीचे के स्तर की होगी। उच्च स्तर की हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय प्रयोग के दो मुख्य संदर्भ हैं और अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी पर विचार करते समय प्रायः उन्हीं पर अधिक ध्यान जाता है। पहला संदर्भ

शैक्षणिक प्रयोगों का है और दूसरा राजनैतिक मान्यता का। शैक्षणिक संदर्भ में शिक्षा और उसके विभिन्न स्तर और ज्ञान-विज्ञान संबंधी विविध विद्वत कार्य आते हैं। भाषा की वास्तविक प्रतिष्ठा मुख्य रूप से इस पर निर्भर होती है। राजनीतिक संदर्भ के अंतर्गत वह सब अंतर्राष्ट्रीय कार्य आता है, जिसका संबंध विभिन्न देशों के साथ कूटनीतिक संपर्क और वाणिज्य व्यवसाय से है। राष्ट्रसंघ और उसके अंतर्गत विभिन्न राजनीतिक, शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन भी इसी से संबंधित हैं। भाषा के अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की यह सर्वोच्च स्थिति है और शैक्षणिक मान्यता बहुत कुछ उस पर निर्भर होती है।

शैक्षणिक दृष्टि से हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय प्रसार की कई स्थितियाँ हैं। उन देशों में, जहाँ भारतमूल के निवासी अधिक संख्या में हैं, जैसे, फीजी, मॉरीशस, ट्रिनिडाड, सुरीनाम, गुयाना, वहाँ प्रवासी भारतीयों के बीच हिन्दी सीखने-सिखाने की औपचारिक व्यवस्था काफी अर्से से चल रही है। दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में भी जहाँ भारतीय आबादियाँ एक साथ बसी हुई हैं, यह व्यवस्था पाई जाती है। अधिकतर यह कार्य स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा होता है। पर कहीं-कहीं शासन द्वारा भी सहायता और मान्यता प्राप्त हुई है। परंतु यह शिक्षण शिक्षा के उच्च स्तर पर नहीं है, क्योंकि हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने से किसी प्रकार की उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। इसे हिन्दी के शैक्षणिक व्यवहार का एक सीमित अंग ही कह सकते हैं, क्योंकि इसका उपयोग वही करते हैं, जो हिन्दी को अपनी भाषा मानते हैं। जब इन देशों के मूल निवासी भी इसका लाभ उठाने लगेंगे, तभी इसे वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार कहा जा सकेगा। वर्तमान रूप में इसे हिन्दी की भावी अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का प्रबल साधन अवश्य कहा जा सकता है। क्योंकि इसका असर हिन्दी-हिन्दुस्तानी के सामान्य व्यवहार पर पड़ता है और उससे गैर-हिन्दी भाषी मूल निवासी भी हिन्दी को अपनाने की ओर उन्मुख होते हैं। हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था के साथ-साथ अन्य शैक्षणिक कार्य, साहित्यिक क्रियाकलाप, सामयिक साहित्य, साहित्यिक सांस्कृतिक संस्थाएँ, प्रकाशन कार्य आदि के द्वारा भी हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण बनता है और उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की पृष्ठभूमि तैयार होती है। हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य में इन देशों में हिन्दी को राजनीतिक मान्यता मिलेगी और शासन की सहभाषा के रूप में उसका प्रयोग होने लगेगा। अभी केवल फीजी के संविधान में संसद में भाषण देने के लिए हिन्दुस्तानी की छूट मिली है। उच्च शिक्षा की लालसा

पूरी करने के लिए इन देशों के नवयुवक अच्छी संख्या में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग और राष्ट्रभाषा समिति वर्धा की परीक्षाओं में बैठते हैं।

शैक्षणिक हिन्दी का वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय प्रसार यूरोप, अमरीका और एशिया के कुछ देशों में हुआ है। पश्चिमी और पूर्वी यूरोप में मिलाकर कम से कम एक दर्जन देशों में तीन दर्जन विश्वविद्यालय और संस्थानों में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था है। कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका में लगभग चार दर्जन विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और रूसी में हिन्दी की अनेक कृतियों के अनुवाद हुए हैं। इन भाषाओं में हिन्दी के द्विभाषी कोश, व्याकरण, इतिहास और समीक्षा संबंधी महत्त्वपूर्ण शोधपरक और परिचयात्मक प्रकाशन भी हुए हैं। प्राच्य शिक्षा और भारतीय विद्या सम्मेलनों में हिन्दी और उर्दू को भी स्थान मिलने लगा। एशिया में नेपाल ही ऐसा देश है, जहाँ हिन्दी को उच्चतम शिक्षा तक स्थान मिला है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग की प्रतिष्ठा है। श्रीलंका के कोलम्बो विश्वविद्यालय में भी इस तरह की व्यवस्था हुई है। जापान में भी कम से कम आधे दर्जन विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिन्दी के पाठ्यक्रम चलते हैं, जिनमें कई में उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिन्दी-उर्दू के सम्मिलित विभाग हैं। कुछ देशों में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ भी मुद्रित या हस्त लिखित रूप में प्रकाशित होती हैं। परन्तु रूस और पूर्वी यूरोप के अन्य देशों को छोड़ सभी पश्चिमी देशों में हिन्दी शिक्षण या तो दक्षिण-पूर्व एशिया संबंधी अध्ययनों या भाषा विज्ञान विभागों के एक अंग के रूप में होता है। निश्चय ही हिन्दी को उन्नत देशों की भाषाओं के समान आदर नहीं मिला है। चीनी और अरबी भाषाओं की भी अंतर्राष्ट्रीय शैक्षणिक स्थिति हिन्दी से बेहतर है। जब तक शैक्षणिक, प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टि से स्वयं देश में अंग्रेजी का स्थान हिन्दी से ऊँचा रहेगा। अभी तो यही आशा की जा सकती है कि हिन्दी भाषा और साहित्य स्वयं अपने बल पर, अर्थात् समृद्धि और गौरव अर्जित करके सम्मान प्राप्त करता जाएगा। यही वास्तव में स्थायी प्रतिष्ठा का मूल आधार है।

अंतर्राष्ट्रीय भूमि का अंतिम लक्ष्य हिन्दी के विश्वव्यापी राजनीतिक और कूटनीतिक व्यवहार और राष्ट्र की वास्तविक मान्य भाषा के रूप में विदेशों द्वारा उसे स्वीकार किया जाना है। राष्ट्रसंघ की अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, स्पेनिश, चीनी और अरबी भाषाओं के साथ उसे सातवीं भाषा के रूप में मान्यता मिलना, उसी व्यवहार का तर्क सम्मत प्रतिफल हो सकता है। परन्तु उपर्युक्त छह भाषाओं में

अंतिम दो चीनी और अरबी का राष्ट्रसंघ के कार्यों में अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है। प्रधानता केवल पहली तीन अंग्रेजी, रूसी और फ्रेंच की है। कहना न होगा इसका कारण राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक और सामरिक शक्ति ही है। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले फ्रेंच और जर्मन का जो महत्त्व था, वह बाद में नहीं रहा। अंग्रेजी को फ्रेंच के बराबर का दर्जा मिल गया और जर्मनी की पराजय जर्मनी भाषा के राजनीतिक पराभव का कारण बन गई। द्वितीय विश्वयुद्ध में फिर पराजित होकर जर्मनी के दो खंडों में विभाजित होने पर जर्मन भाषा विश्व के राजनीतिक मंच से विदा हो गई। इसके विपरीत अंग्रेजी ने फ्रेंच को भी पीछे ढकेलकर विश्व भाषाओं में पहला स्थान प्राप्त कर लिया। इसका कारण अमरीका का राजनीतिक प्रभुत्व है, यद्यपि अंग्रेजी के पीछे खिसकती जा रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले दुनिया के भाषा मानचित्र पर रूसी का महत्त्व नहीं था, पर द्वितीय युद्ध के विजेताओं में अमरीका के साथ रूस का बराबरी का स्थान हो गया और रूसी भाषा भी दुनिया की दो महान भाषाओं में गिनी जाने लगी। फ्रेंच भाषा की महत्ता बनाए रखने के अनेक कारण हैं। फ्रेंच की अपनी भाषिक, विशेषताएँ विशेष रूप से उसकी अर्थभ्रम से रहित अपेक्षाकृत सुनिश्चित अभिव्यक्ति क्षमता उसकी अंतर्राष्ट्रीय उपयोगिता को कायम रखने का बहुत बड़ा कारण है। साथ ही राजनीतिक दृष्टि से यूरोप में फ्रांस का महत्त्व अद्वितीय रहा है। आधुनिक काल में उसका गौरवपूर्ण इतिहास जर्मनी की विश्वविजय का महत्त्वकांक्षा की पूर्ति में उसके द्वारा उपस्थित की गई बाधाएँ और अदम्य साहस के साथ जर्मनी का मुकाबला करते रहने की उसकी संकल्प शक्ति आदि अनेक कारणों से फ्रांस की राजनीतिक प्रतिष्ठा स्थिर बनी रही। उसकी भाषा की प्रतिष्ठा के पीछे इन राजनीतिक घटकों का बहुत बड़ा हाथ है। स्पेनिश भाषा की मान्यता के पीछे जो ऐतिहासिक कारण हैं, उनमें दक्षिण अमरीका के अनेक देशों में उसके एकाकी प्रभुत्व का सबसे अधिक महत्त्व है। द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के विरुद्ध चीन के अमरीका-रूस के मित्र पक्ष में रहकर विजयी होने से चीन का राजनीतिक महत्त्व बढ़ने के साथ चीनी भाषा को भी महत्त्व मिला। साथ ही भौगोलिक विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से भी चीन का पहला स्थान रहा है। अरबी भाषा अपने प्राचीन गौरव के बावजूद सदियों तक दबी रही, क्योंकि आधुनिक काल में अरब देशों की राजनीतिक स्थिति दुर्बल और पराधीनतापूर्ण थी। पर तेल भंडारों के धन से अरबों के भाग्य पलट गए और अचानक उनका महत्त्व बढ़ गया। धन के जोर से ही अरबी भाषा राष्ट्रसंघ की छठी अधिकृत भाषा हो गई।

भाषाओं की सर्वोच्च अंतर्राष्ट्रीय मान्यता की उपरिलिखित परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में भारत और उसकी राजभाषा-राष्ट्रभाषा हिन्दी को देखने पर दोनों के अंतर्राष्ट्रीय मान और महत्त्व का मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले ही भारत ने दुनिया की बड़ी शक्तियों का ध्यान आकर्षित कर लिया था। भारतीय राजनेताओं में महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू के नाम विशेष रूप से विश्व विख्यात होने लगे थे। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उसका राजनीतिक, आर्थिक स्वाधीनता का संघर्ष विश्व के इतिहास में अद्वितीय था। आजादी के बाद उसकी राजनीतिक सुस्थिरता, वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति विश्व की परस्पर संघर्षशील शक्तियों के राजनीतिक, सामरिक प्रभावों से मुक्त उसकी स्वतंत्र विदेश नीति और एशिया और हिन्दी महासागर के देशों में उसकी भौगोलिक स्थिति आदि अनेक कारण हैं, जिनसे अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत का सम्मान ऊँचा हुआ। क्षेत्रीय विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया में वह दूसरे स्थान पर है। लोकतांत्रिक व्यवस्था वाला वह सबसे बड़ा देश है। नव स्वतंत्रता प्राप्त विकासशील देशों को गुटनिरपेक्ष विदेश नीति के आधार पर संगठित करने और उनके साथ मिलकर सामूहिक रूप में विश्वशांति, समता, बंधुत्व मानवता और आर्थिक न्याय का प्रबल आंदोलन चलाने में उसकी शानदार भूमिका रही है। विश्व की राजनीति में उसकी बात का वजन है। ऐसे महान देश की भाषा आदर होना अवश्यंभावी है। इस प्रतिष्ठा के कारण स्वतंत्र भारत की संविधान स्वीकृत राजभाषा हिन्दी का सम्मान भी अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बढ़ा है। यह सम्मान कहीं अधिक बढ़ गया होता, अगर हिन्दी को पूरे तौर पर राजभाषा का दायित्व निभाने का अवसर मिल जाता। राजकीय कार्यों में अंग्रेजी का साम्राज्य अब भी कायम है। विदेश नीति और कूटनीति संबंधी सभी कार्य अंग्रेजी में होते हैं। भारतीय दूतावासों में अंग्रेजी ही चलती है। हिन्दी का प्रयोग केवल औपचारिक प्रतीक रूप में होता है। परन्तु यह आशा निराधार नहीं है कि हिन्दी अंग्रेजी के द्वारा अपहृत अपना पद अवश्य प्राप्त कर लेगी। जब कभी ऐसा हो सकेगा, हिन्दी विश्व भाषाओं के मंच पर ऊँचा स्थान पाएगी और तब वह दिन दूर न रहेगा, जब राष्ट्रसंघ में उसका वही स्थान होगा, जो अंग्रेजी, रूस और फ्रेंच को प्राप्त है। चीनी और अरबों की तुलना में एशिया के देशों में उसका प्रसार और सम्मान अधिक होगा। इसका संकेत उसके सरल हिन्दी-उर्दू के मूल रूप हिन्दुस्तानी के संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप और उसके पास-पड़ोस के देशों में व्यापक प्रचलन में मिलता है। इसकी अपरिचित संभावनाओं का उल्लेख पीछे किया गया है। परंतु

भारत को अपनी भाषा नीति के निर्धारण, नियोजन और राजकीय हिन्दी के स्वरूप पर व्यावहारिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण से सतत विचार और पुनर्विचार करते रहना जरूरी है।

यह बारम्बर समझते रहने और स्मरण रखने की बात है कि हिन्दी गत आठ सौ वर्षों से देश व्यापी संपर्क की भाषा राष्ट्रभाषा के पथ पर अग्रसर होती रही है। औपचारिक राजकीय मान्यता भी उसे मिली और यह मार्के की बात है कि इसे मान्यता दूर दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में मध्य युग में ही मिल गई थी। लगभग तीन सौ वर्ष तक बहमनी सल्तनत में वह पद पर आसीन रही। लिपि अवश्य उसकी देवनागरी नहीं थी और उसका नाम दकनी या दक्खिनी हिन्दी था। परंतु उसी भाषा का उत्तर भारतीय आधुनिक रूप सामान्य संपर्क भाषा की तरह कमोबेश देश भर में प्रचलित रहा। इसी ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण उसे राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, महात्मा गांधी और अनेक गैर हिन्दी क्षेत्र के सामाजिक नेताओं ने अखिल भारतीय भाषा के रूप में पहचाना। आगे चलकर वह स्वाधीनता संग्राम की मुख्य माध्यम भाषा बनी और अंत में स्वतंत्र भारत की राजभाषा चुनी गई। हिन्दी उसका प्राचीनतर नाम है, जो मध्य युग में उसके अधिक प्रचलित नाम हिन्दुई या हिन्दवी जितना ही पुराना है। फारसी-अरबी की शब्दावली और उसकी साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा के अधिक मिश्रण से हिन्दी की जो शैली अठारहवीं सदी में अलग उभर कर आई, उसका नाम उर्दू हो गया। लिपि की भिन्नता के कारण भाषा के दो रूपों का अलगाव अधिक स्पष्ट और स्थायी जैसा हो गया। परंतु दोनों के मूल में भाषा का जो एक ही सामान्य रूप विद्यमान है, उसे हिन्दुस्तानी नाम देना स्वाभाविक ही है। पूरे हिन्दुस्तान में वही प्रचलित है। उसके द्वारा हिन्दी का भारत की भाषाओं विशेषकर उर्दू के साथ सम्मिलन सहज हो जाता है। साथ ही वह भारत और पाकिस्तान के बीच भावनात्मक एकता स्थापित करने का साधन भी है। संविधान की 351 वीं धारा में हिन्दी के विकास के लिए दिये गए निर्देश में हिन्दुस्तानी शैली का उल्लेख भारत की मिली-जुली संस्कृति के संदर्भ में किया जाना महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुस्तानी उस संस्कृति की वाहक, संरक्षक और उन्नायक है। उसकी ग्रहण शीलता उसे एशिया की अनेक भाषाओं से अपनी भाषा संपदा बढ़ाते हुए बड़े विस्तार में ग्राह्य बनने में सहायक होती रहेगी।

परन्तु हिन्दुस्तानी कोई अलग भाषा नहीं है। इसी कारण संविधान की अष्टम अनुसूची में उसे नहीं दिखाया गया। हिन्दुस्तानी एक भावना है। देश के

विभाजन को उस भावना द्वारा बचाने के उद्देश्य से ही उस पर अधिक जोर दिया गया था और भावनात्मक उद्देश्य से ही संविधान में हिन्दी के स्थान पर राजभाषा हिन्दुस्तानी नाम से अंकित कराने के प्रयास किये गए थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी इस भावना के प्रेरणा स्रोत थे, परन्तु उसे पूर्ण भाषा के रूप में विकसित करना संभव नहीं था। हिन्दी और भारत की सभी विकासशील भाषाओं का संस्कृत के साथ ऐसा स्वाभाविक संबंध है कि उसे तोड़ने का प्रयास करना भाषा प्रवाह के स्रोत पर ही बाँध बनाने के समान है। संस्कृत का मुख्य उत्तराधिकार हिन्दी को ही मिला है। महात्मा गांधी की हिन्दुस्तानी भावना को भाषा रूप देने के उद्देश्य से संस्कृत की तत्सम शब्दावली को अरबी-फारसी की शब्दावली के साथ बराबरी का संबंध जोड़ते हुए हिन्दी से दूर रखने के जो प्रयास किये गए उनकी परिणति हास्यास्पद ही रही। आधुनिक युग में हिन्दी के नये पथ पर चलने के शुरू में 1800 के आस पास मुंशी इंशा अल्ला खघँ ने 'हिन्दवी छुट किसी और बोली का पुट' न आने देकर अरबी, फारसी, संस्कृत और ब्रजभाषा आदि के प्रभावों से मुक्त भाषा गढ़ने का जो प्रयोग 'उदयभान चरित' में किया था, वह भी विफल रहा था। इसके बाद बीसवीं सदी के दूसरे दशक में संस्कृत की घनघोर तत्समप्रधान शैली में रचित 'प्रियप्रवास' के प्रसिद्ध कवि पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', 'चौखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' लिखकर इसी प्रकार के जो नमूने पेश किए उन्हें भी गंभीरता से नहीं लिया गया। भाषा की जिमनास्टिक कभी सफल नहीं हो सकती।

भाषा को उसकी परम्परा से काटा नहीं जा सकता। हिन्दी ने अपभ्रंश की गोद से उठकर चलना शुरू करते ही संस्कृत की संचित संपदा से पोषण पाना आरंभ कर दिया था। मध्य युग के संपूर्ण साहित्य में कबीर से लेकर पद्माकर तक संस्कृत की शब्द संपत्ति का जो प्रयोग हुआ, उसके बगैर साहित्य की रचना और भाषा का विकास हो ही नहीं सकता था। अरबी और फारसी के प्रभाव से भी उसने बहुत लाभ उठाया। परंतु किसी भाषा के विकास में स्वयं उसकी ऐतिहासिक परंपरा और आगत विदेशी प्रभावों की बराबरी नहीं हो सकती। अरबी और फारसी के अतिशय प्रभाव ग्रहण करने का परिणाम भाषा विभाजन और उर्दू नाम से एक नई भाषा के उदय में हुआ। जिस तरह मध्य युग के पुनरोदय और नव जागरण को प्रभावशाली वाणी देने के लिए संस्कृत का आश्रय आवश्यक था, उसी प्रकार उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के आधुनिक नव जागरण की अभिव्यक्ति के लिए वही अक्षय कोश काम आया। स्वतंत्र भारत की अनेकविध मांगों की

पूर्ति भी उसी स्रोत से हो सकती है। यही अनुभव करते हुए संविधान की 351 वीं धारा में हिन्दी के विकास के लिए मुख्य रूप से संस्कृत से लाभ उठाने का निर्देश किया गया है। इस अनिवार्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साथ ही, यह भी सहज अनिवार्यता है कि संपूर्ण देश की नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हिन्दी सभी सहभाषाओं के संपर्क सहयोग से लाभ उठाए। परंतु अपने विकास क्रम में सहजभाव से संस्कृत के स्रोत और अन्य भाषाओं के सहचरजन्य प्रभावों का उपयोग करते हुए हिन्दी को अपनी आत्मा-अस्मिता या निजता को सुरक्षित रखना जरूरी है।

हिन्दी की निजता को सबसे बड़ा खतरा अंग्रेजी के अत्यधिक दबाव से पैदा हुआ है। अंग्रेजी की अनुवाद भाषा के रूप में उसके प्रयोग में संस्कृत की शब्दावली का बोझ लदता जा रहा है। इस क्रम में उसके सामान्य जन से कट जाने का भी खतरा है। अपनी बोलियों से भी वह अलग होती चली जा रही है। इसीलिए यह जरूरी है कि उसे अपने सरल सहज रूप में विकास करने दिया जाए। उसे अपने आधारभूत सामान्य भाषा रूप से, जिसका उल्लेख संविधान में हिन्दुस्तानी शैली नाम से किया गया है, लगाव बनाए रखना जरूरी है। तकनीकी और पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग के अलावा अनावश्यक संस्कृत तत्समता से भाषा को बोझिल न बनाकर अगर उसे जहाँ तक संभव हो सरल, सहज रूप में हिन्दी-हिन्दुस्तानी के नजदीक रखा जाए तो वह उर्दू का भी बहुत सा साहित्य आत्मसात कर सकती है। इससे देश में हिन्दी-उर्दू के वर्तमान भाषा विभाजन से उत्पन्न तनाव को दूर किया जा सकता है। यह भी संभव है कि पाकिस्तान के साथ भाषा संपर्क स्थापित हो जाए और भविष्य में भारत और पाकिस्तान इस उपमहाद्वीप की दो प्रधान भाषाओं हिन्दी और उर्दू की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता के लिए मिलकर प्रयास करें। कम से कम तीन और राष्ट्र नेपाल, फीजी और मॉरीशस इस प्रयास में शामिल हो सकते हैं।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देवनागरी लिपि

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर उसे अपने नित्य के कार्य करने पड़ते हैं और उनके लिए उसे अन्य व्यक्तियों के साथ विचार विनमय करना होता है। विचार विनमय के माध्यम अनेक हैं, जिनमें भाषा सबसे प्रमुख और सबसे सरल माध्यम है। विभिन्न संकेतों द्वारा भी भाव प्रकट किए जाते हैं। सिर को आगे हिलाना स्वीकृति का सूचक है, दाएं बाएं हिलाना इनकार का द्योतक है। आंखे

तरेर कर देखना अथवा मुट्ठी बांध कर तानना क्रोध का सूचक है। इन विभिन्न संकेतों से भाव प्रकट किए जाते हैं और दूसरे लोग उन्हें समझ भी लेते हैं।

प्रतीकों द्वारा भी संदेश भेजने की प्रथा तो अति प्राचीन काल से विभिन्न देशों में प्रचलित है। संकेतों द्वारा अथवा प्रतीकों द्वारा भाव या विचार प्रकट किए जाते हैं, फिर भी यह कहना ही होगा कि भाव और विचार प्रकट करने का सबसे सरल साधन भाषा है।

भाषा का जन्म कैसे हुआ, कब हुआ, कैसे भाषा विकसित हुई इस सबकी कहानी कम रोचक नहीं है, किंतु यहां उसकी चर्चा करना विषयांतर हो जाएगा। निश्चित प्रयत्नों के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि समष्टि भाषा से बहुत दिनों तक काम चलता रहा होगा। लिपि का जन्म भाषा के जन्म के बहुत समय बाद हुआ होगा। आज भी ऐसे अनेक जन समाज हैं, जिनके पास उनकी अपनी भाषाएं हैं, किंतु लिपि नहीं है।

भाषा से अपना काम चलाते रहने के बाद आगे चलकर ऐसी आवश्यकता अनुभव हुई होगी कि कोई ऐसा माध्यम मिले, जिसके द्वारा मनुष्य मुख से निकली वाणी, स्थान और कालगत दूरी को पार कर सके।

मनुष्य की वाणी एक निश्चित दूरी तक ही सुनी जा सकती है। आधुनिक युग में और वह भी अभी अभी वैज्ञानिक अन्वेषकों ने लाउडस्पीकर का आविष्कार कर ध्वनि को कुछ अधिक दूर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। ईथर की लहरों का सहारा लेकर रेडियो काफी दूर की ध्वनियों को खींच लाता है। इस तरह ध्वनि के लिए स्थानगत दूरी सिमट रही है। कालगत दूरी की समस्या अब भी बनी हुई।

प्राचीन काल में इस स्थानगत और कालगत दूरी को समाप्त करने के लिए, दूरस्थ व्यक्ति तक अपनी बात पहुंचाने के लिए तथा अपनी अगली पीढ़ियों के लिए अपने अनुभव, अपनी मान राशि स्थिर करने के लिए एक माध्यम की खोज शुरू हुई होगी। इस दिशा में जो प्रयत्न हुए, जो सफलता मिली उसी से लिपि के जन्म और उसके विकास की कहानी शुरू होती है। आज हम बाल्मीकि के कथन को पढ़ सकते है, तुलसी की रामकथा का रसास्वाद ले सकते हैं, शेक्सपियर के नाटकों से परिचित हो सकते हैं। यह सब लिपि का ही प्रसाद है।

लिपि की उत्पत्ति के विषय में सबका मत एक सा नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि लिपि भी भगवान की ही कृति है। यह मान्यता केवल भारत में ही नहीं, वरन विदेशों में भी पाई जाती है, किंतु मानना होगा कि इस मत में सार

नहीं है। तथ्य यह है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए लिपि को जन्म दिया है।

लिपि के जन्म की खोज करते करते हम वहां पहुंचते हैं, जहां मनुष्य जादू टोने के लिए, अथवा किसी देवता का प्रतीक बनाने के लिए, अथवा स्मरण रखने के लिए कुछ चिन्हों का प्रयोग किया करता था। आज भी अनपढ़ धोबी भिन्न भिन्न घरों के कपड़ों पर भिन्न प्रकार के चिन्ह बना देते हैं, ताकि उन्हें आसानी से खोजा जा सके।

लिपि का आदि रूप चिन्ह या चित्रलिपि ही है। चित्रलिपि में किसी वस्तु का बोध कराने के लिए उसका चित्र बनाया जाता है। चित्रलिपि का अपना महत्व है। उसके द्वारा ध्वनि बोध भले न हो, अर्थ बोध हो जाता है। किसी भी देश के समाचार पत्र में छपे कार्टून चित्र के अर्थ को उस देश की भाषा न जानने पर भी सहज ही समझा जा सकता है। इस अर्थ में लिपि को 'अंतर्राष्ट्रीय लिपि' कह सकते हैं। चित्रलिपि का प्रयोग प्रायः प्रत्येक देश में पाया जाता हैं।

चित्रलिपि अपने में सरल लिपि नहीं है। भावों और विचारों को प्रकट करने के लिए सरल माध्यम की खोज होती रही। फलस्वरूप ध्वन्यात्मक लिपि सामने आई। इस लिपि में चिन्ह का संबंध ध्वनि से जुड़ा रहता हैं ध्वन्यात्मक लिपि में चिन्ह कोई चित्र नहीं बनाते, वे मात्र ध्वनियों को प्रकट करते हैं। परिणाम यह होता है कि एक व्यक्ति जिन शब्दों को कहना चाहता है, उन्हें वह उस लिपि में लिख देता है, इसलिए पढ़ने वाला पढ़ते समय उन्हीं ध्वनियों को करता है। 'राम' लिखा जाता है, 'राम' ही पढ़ा जाता है। ध्वन्यात्मक लिपि में अक्षरों का संबंध ध्वनि से होता है, इसलिए किसी भी भाषा को उसमें लिखा जा सकता है।

भारतीय लिपियों का इतिहास काफी पुराना है। ऐसा माना जाता है कि भारत में लेखन पद्धति का प्रचार चौथी शताब्दी के पहले भी मौजूद था। प्राचीन काल में भारतवासी अपने विचारों को किसी न किसी लिपि में शिलाओं पर, धातुपत्रों पर, ताड़पत्रों पर, भोजपत्रों पर प्रकट किया करते थे। प्राचीन सूत्रग्रंथों में लेखन कला का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी, खरोष्ठी और सिंधु घाटी की लिपियां प्रचलित थी। पहली दो लिपियों की जानकारी तो विद्वानों को पहले से ही थी, किंतु मोहन जोदड़ो की खुदाई में प्राप्त मुद्राओं से तीसरी लिपि का भी पता चला है।

ब्राह्मी ओर खरोष्ठी लिपियों की जन्म भूमि भारत ही है अथवा कोई अन्य देश, इस संबंध में विद्वान एक मत नहीं हैं। भारत के प्रसिद्ध विद्धान श्री गौरीशंकर हीरानंद ओझा का स्पष्ट कथन है कि 'ब्राह्मी लिपि आर्यों की अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग सुंदरता से इसका कर्ता ब्रह्मा देवता मानकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। चाहे साक्षर ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो, पर इसमें संदेह नहीं है कि इसका जन्म भारत में ही हुआ था' सर्वश्र टामस, डासन और कनिंघम आदि विद्वान श्री ओझा जी के विचारों से सहमत हैं।

खरोष्ठी लिपि के जो प्राचीनतम लेख मिले हैं, उनसे पता चलता है कि इसका प्रयोग भारत के कुछ हिस्सों में चौथी सदी (ई. पू.) से लेकर होता रहा है। खरोष्ठी लिपि निर्दोष नहीं है इसमें स्वरों की अव्यवस्था है और दीर्घ स्वरों का अभाव है। सदोष होने के कारण खरोष्ठी लिपि भारत में व्यापक न बन सकी और न स्थायी बन सकी। उसका शीघ्र लोप हो गया खरोष्ठी की अपेक्षा ब्राह्मी अधिक व्यापक हुई और विकास करती हुई आगे बढ़ी। खरोष्ठी की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि अधिक सुंदर और अधिक गठी हुई थी इसलिए वह लोकप्रिय होती गई। ब्राह्मी में गोलाई का और छोटी लकीरों का प्रयोग होता है जिससे यह लिपि सुंदर लगती है।

ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम नमूने 5वीं सदी (ई. पू.) के मिले हैं। यह लिपि अपने गुणों के कारण फैलती हुई विकसित होती गई और लोकप्रिय होती गई। उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक इस लिपि का प्रयोग होता था। आगे चलकर उत्तर भारत और दक्षिण भारत की ब्राह्मी में भिन्नता आ गई और यह भिन्नता इतनी बड़ी हो गई कि दोनों की समानता में भी संदेह होने लगा। ब्राह्मी लिपि प्रदेशों में पहुंचकर कुछ कुछ भिन्न रूप धारण करने लगी और भिन्न नामों से जानी जाने लगी।

उत्तर भारतीय ब्राह्मी लिपि का विकास होता गया। गुप्तलिपि, कुटिल लिपि का रूप धारण कर अंत में वह नागरी लिपि कहलाई। संपूर्ण उत्तर भारत में इसका प्रचार था, महाराष्ट्र में भी इसी का व्यवहार होता था। इतने बड़े भू-भाग की लिपि होने के कारण भारत की लिपियों में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इसमें लिखित जो प्राचीनतम लेख प्राप्त हुआ है, वह सातवीं सदी का है।

भारत के पूर्वांचल में चलने वाली लिपियां बंगला, असमिया, मणिपुरी, उड़िया देवनागरी से बहुत ही अधिक मिलती है। उड़िया लिपि के अनेक अक्षर

तो देवनागरी लिपि जैसे ही हैं। भेद केवल शिरोरेखा का है। जब कागज उपलब्ध नहीं होता था, तब उत्कल प्रदेश में ताड़पत्रों का उपयोग किया जाता था। ताड़पत्र पर लिखते समय यदि शिरोरेखा सीधी खींची जाए तो ताड़पत्र फटने का डर रहता है इसीलिए वहां शिरोरेखा गोलाकार लगाई गई।

दो तीन अक्षरों को छोड़कर गुजराती की संपूर्ण लिपि शिरोरेखा विहीन देवनागरी ही है। सिंधी भाषा की लिपि पहले देवनागरी ही थी। मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण उसने सुधरी हुई फारसी लिपि अपना ली थी। देश विभाजन के पश्चात उसने फिर देवनागरी को अपना लिया है। लगभग 500 सिंधी के साहित्यिक ग्रंथ देवनागरी लिपि में लाए जा चुके है। अजमेर की सिंधी देवनागरी प्रचारिणी सभा तथा बंबई की एक सिंधी संस्था ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। पाठ्य-पुस्तकें देवनागरी में छापी गई है, कई पत्र देवनागरी लिपि में निकल रहे है।

इतिहास बताता है कि गुप्त साम्राज्य बंगाल से लेकर दक्षिण तक फैला था, अतः गुप्त लिपि, जो कि ब्राह्मी लिपि का ही विकसित रूप था, दक्षिण में भी व्यवहार में आती थी। दक्षिण में पल्लव राजाओं के शिलालेखों में ग्रंथ लिपि और तमिल लिपियों के अतिरिक्त नागरी लिपि का भी प्रयोग होता था। पल्लवों के परवर्ती चोल राजाओं ने भी अपने सिक्कों पर नागरी लिपि का प्रयोग किया था। दक्षिण में इस लिपि का इतना प्रभाव था कि चोल राज्य से आगे उन द्वीपों में भी यह लिपि चलाई गई, जिन्हें चोल राजाओं ने जीता था।

पश्चिमी चालुओं ने भी अपने शिलालेखों में कन्नड़ लिपि के साथ साथ देवनागरी लिपि का प्रयोग किया था। दक्षिण के राष्ट्रकूट के अधिकांश शिलालेख नागरी में ही मिलते हैं।

दक्षिण के विजयनगर राज्य में भी देवनागरी का प्रयोग होता था। 15वीं शताब्दी के बाद तो उस प्रदेश की प्रधान लिपि देवनागरी ही थी। 18वीं सदी में तंजाउकर के पहले राजा शिवजी के सौतेले भाई व्यंकोजी ने प्रजा के साथ समरस होने के लिए अपनी मातृभाषा मराठी के साथ स्थानीय भाषाओं को सीखा था और अपनी मातृभाषा मराठी के साथ स्थानीय भाषाओं को सीखा था और उनमें साहित्य की रचना की थी। ये संपूर्ण ग्रंथ देवनागरी में प्रकाशित किए गए। जो तंजाउर के सरस्वती महल ग्रंथ संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। 'पंचभाषा विलास' नामक नाटक में तो तेलुगू, तमिल, मराठी, हिन्दी तथा संस्कृत, पांच भाषाओं का प्रयोग किया गया है। सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के दक्षिण प्रदेशों में भी देवनागरी लिपि का प्रचलन था और वहां की प्रबुद्ध जनता देवनागरी से परिचित थी। दक्षिण की पढ़ी लिखी जनता एक दूसरे माध्यम से भी देवनागरी लिपि से परिचित है। संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी है। दक्षिण में देवनागरी जानने वाले और उसके विद्वानों की संख्या उत्तर भारत की अपेक्षा कहीं अधिक है। दक्षिण में संस्कृत का इतना प्रचार है कि वहां 'सुधर्मा' नाम की एक दैनिक पत्रिका तक निकलती है। अत: दक्षिण में देवनागरी लिपि जानने वालों की संख्या कम नहीं है।

भारतीय भाषाओं के लिए जब एक लिपि का समर्थन किया जाता है तब उसमें एक और बात पूर्ण रूप से सहायक होने वाली है। भारत में भाषाओं की लिपि भिन्नता होने पर भी सर्वत्र वर्णमाला की एकता विद्यमान है। भारतीय वर्णमाला के सभी स्वर और व्यंजन बड़े वैज्ञानिक ढंग से उच्चारण स्थान के अनुसार रखे गए हैं। भारतीय वर्णमाला को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। भारत की सभी भाषाओं की वर्णमाला में ध्वनियों को व्यक्त करने वाले स्वरों और व्यंजनों की संख्या और उसका क्रम भी एक सा ही है, अत: यह साम्य देवनागरी लिपि के सीखने में सहायक होता है।

भारतीय वर्णमाला तो देश के बाहर भी कहीं कहीं पर कुछ अंश में प्रचलित है। 'आकार' से लेकर 'हकार' तक चलने वाली भारतीय वर्णमाला नेपाल, भूटान, तिब्बत, बर्मा, श्याम, लंका आदि देशों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। मध्य एशिया, कोचीन, मलाया,, यवद्वीप, बलद्वीप, सुमात्रा, फिलीपीन्स, महाचीन आदि देशों में भारतीय वर्णमाला का आंशिक रूप में प्रचार है। अत: यह वर्णमाला विदेशों में भी देवनागरी के प्रचार में सहायक हो सकती है।

आज भारत राष्ट्र का सबसे बड़ी आवश्यकता यदि किसी वस्तु की है, तो यह वह है राष्ट्रीय एकता की। विकास की सभी सीढ़ियों का आधार राष्ट्रीय एकता है। अत: प्रत्येक देशभक्त का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उन सभी मार्गों का अवलंबन करे, जो एकता की स्थापना में सहायक सिद्ध होते हों।

राष्ट्रपिता गांधी जी इतने दूरदर्शी थे कि उन्होंने उन सभी समस्यायों पर बहुत पहले विचार किया था, जो आज हमारा ध्यान आकर्षित कर रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। किंतु इसी के साथ उन्होंने एक दूसरे विषय की ओर भी संकेत किया था, जो कम महत्व का नहीं है। वह था देवनागरी लिपि का प्रचार।

गांधी जी चाहते थे कि भारत की सभी प्रांतीय भाषाओं की एक ही लिपि हो जाए। गांधी जी ने एक स्थान पर लिखा था–

'लिपि–विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव सा हो गया है। बंगला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवा बंगालियों के और कौन पढ़ेगा ? पर यदि यह देवनागरी में लिखी जाए, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। 'हमें अपने बालकों को विभिन्न प्रांतीय लिपियां सीखने का कष्ट नहीं देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगू , मलयालम, कन्नड़, उड़िया और बंगला इन छह लिपियों को सीखने में दिमाग खपाने को कहा जाए। आज कोई प्रांतीय भाषा सीखना चाहे तो लिपियों का यह अमेद प्रतिबंध ही उनके मार्ग में कठिनाई उपस्थित करता है।

स्पष्ट है कि गांधी जी देवनागरी लिपि के पक्के हिमायती थे और भारत की राष्ट्रलिपि के स्थान पर उसे बैठाना चाहते थे। इतना ही क्यों प्रांतीय भाषा के लिए देवनागरी लिपि के प्रयोग की दिशा में कुछ कार्य भी किया था। उनकी ही प्रेरण से 'नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद' ने उनकी आत्मकथा 'सम्यनो प्रयोग' को गुजराती भाषा और देवनारी लिपि में प्रकाशित किया था।

गांधी के पहले भी स्वामी दयानंद सरस्वती, बंकिम चंद्र चटर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, रवींद्रनाथ ठाकुर, जस्टिस शारदाचरण मित्र, लोकमान्य तिलक आदि सुधी पुरुषों ने देश के लिए एक सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी की स्वीकार किया था।

स्वामी दयानंद की मातृभाषा गुजराती थी, फिर भी उन्होंने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' की किरणें हिन्दी और देवनागरी के द्वारा बिखेरी थीं। देवनागरी लिपि के समर्थकों में महत्वपूर्ण नाम है जस्टिस श्री शारदा चरण मित्र का और उसके जनक थे श्री शारदाचरण जी। उन्होंने एक लिपि विस्तार परिषद की स्थापना की और 'देवनागर' नाम की एक पत्रिका निकाली। श्री शारदा चरण मित्र ने इसमें लिखा था।

जगत विख्यात भारतवर्ष ऐसे महादेश में, जहां जाति–पांति, रीति नीति, मत आदि के अनेक भेद दृष्टिगोचर हो रहे है, भाव की एकता रहते हुए भी भिन्न भिन्न भाषाओं के कारण एक प्रांतवासियों के विचारों सेदूसरे प्रांतवालों का उपकार नहीं होता। इसलिए एक ऐसा वृक्ष रोपना चाहिए जिसमें सर्वप्रिय फल लगे भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों की भिन्न भिन्न बोलियों को एक लिपि में लिखना ही उस आशानुरूप फल को देने वाला प्रधान अंकुर है।

एक बंगाल क्या, सभी प्रांतों के विद्वानों ने भारत की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का समर्थन किया था। दक्षिण के श्री कृष्णास्वामी अय्यर ने एक बार कहा था कि विभिन्न लिपियों का व्हवहार करने से हम कितनी बड़ी हानि उठा रहे हैं, क्योंकि वे जनता के एक भाग को दूसरे भाग से पृथक करती है। भाषा अलग अलग हो भी, किंतु यदि उनकी लिपि एक ही हो, तो लोगों को शब्दों वाक्यों की अभिव्यक्ति के ढंग की समानता के कारण अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओ का समझना भी सरल होगा।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, लोकमान्य तिलक, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य विनोवा भावे आदि सभी ने राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी का समर्थन किया है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने एक स्थान पर लिखा है 'वर्तमान युग में भारतीय संस्कृति के समन्वय के प्रश्न के अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि भारत की प्रत्येक प्रादेशिक भाषा की सुंदर आनंदप्रद कृतियों के स्वाद को भारत के अन्य प्रदेशों के लोगों को कैसे चखाया जाए ? इस बारे में यह उचित ही होगा कि प्रत्येक भाषा की साहित्यिक संस्थाएं उस भाषा की कृतियों को संघ लिपि अर्थात् देवनागरी में भी छपवाने का आयोजन करें।

एक लिपि के हो जाने पर किसी देश या किन्हीं देशों को कितना लाभ प्राप्त होता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण चीन, यूरोप के देश हैं। चीन एक विशाल देश है। इसकी आबादी सवा सौ करोड़ से भी ज्यादा है। जगह-जगह के उच्चारण के कारण भाषा भेद पैदा हो जाता है। चीन में भाषाएं तो अनेक हैं किंतु सारे चीन में एक ही लिपि (चित्रलिपि) प्रचलित है। इसलिए इस लिपि को पढ़कर प्रत्येक चीनी अपनी भाषा में उसे समझ लेता है।

यूरोप में बहुत छोटे-छोटे अनेक राष्ट्र हैं और प्रत्येक राष्ट्र की अपनी पृथक भाषा है, किंतु सम्पूर्ण यूरोप में एक ही लिपि 'रोमन' का प्रयोग होता है। इस सुविधा का सबसे अधिक लाभ स्कूल के बच्चे उठाते हैं। स्कूल में पढ़ते समय ही बच्चे चार पांच भाषाएं आसानी से सीख लेते हैं, क्योंकि दूसरी भाषाओं को सीखते समय उनकी भिन्न-भिन्न लिपियों के सीखने का कष्ट उन्हें उठाना नहीं पड़ता।

आचार्य विनोबा भावे ने नागरी लिपि के प्रचार प्रसार पर बहुत जोर दिया है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है।

'सारे भारत को एक रखने के लिए उसे जितने स्नेह बंधनों से बांध सकते हैं, उतने स्नेह बंधनों की आज जरूरत है। जैसे हिन्दी एक स्नेह तंतु है, उतने ही

महत्व का स्नेह तंतु देवनागरी लिपि है। आज लोग अपनी भिन्न-भिन्न भाषाएं भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखते हैं। साथ साथ नागरी में भी लिखते तो कितना लाभ होता। उनकी लिपि अच्छी है सुंदर है। हम उसका विरोध नहीं करते, परंतु उसके साथ साथ ऐच्छिक तौर पर नागरी में भी वह भाषा लिखना शुरू करते हैं, तो सारे भारत की भिन्न-भिन्न भाषाएं एक दूसरे को सीखना सुलभ होगा।

देवनागरी का समर्थन करते हुए आचार्य विनोवा ने दूसरे स्थान पर कहा है-'हिन्दुस्तान की एकता के लिए हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे अधिक काम देवनागरी लिपि देगी। इसलिए मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की समस्त भाषाएं देवनागरी में लिखी जाएं। सब लिपियां चलें, साथ साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाए।

देवनागरी के प्रचार-प्रसार को विनोबा जी एक आंदोलन का रूप देना चाहते थे। इस दिशा में वे अनेक वर्षों से प्रभावशील थे और उनकी प्रेरणा से उनका लोकप्रिय ग्रंथ 'गीता प्रवचन' तेरह चौदह भाषाओं में प्रकाशित हो चुका है। इन सबकी लिपि देवनागरी ही है। उनकी प्रेरणा से अनेक भाषाओ में, किंतु देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने लगे हैं।

भारत में दो वर्णमालाएं हैं, जिनकी दो भिन्न लिपियां हैं। ये हैं– फारसी (उर्दू) लिपि और रोमन लिपि। इन दोनों को कुछ विशेष कारणों से थोड़ा महत्व मिल गया है। ये दोनों लिपियां विदेशी हैं। भारत में रोमन लिपि का तो राष्ट्रीय दृष्टि से कोई स्थान नहीं है। अंग्रेजी के साथ वह बनीं रह सकती है, किंतु उसे अपनाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सरल हिन्दी और सरल उर्दू एक ही भाषा है। हां लिपियों की भिन्नता उन्हें अलग कर देती है। अगर उर्दू के समर्थक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उर्दू के लिए देवनागरी लिपि को स्वीकार कर लें, तो न जाने देश की कितनी समस्याएं अपने आप सुलझ जाएं। पिछले दिनों में उर्दू का बहुत कुछ साहित्य देवनागरी लिपि में आ चुका है। कितना अच्छा हो यदि उर्दू के लेखक अपनी कृतियों को देवनागरी में प्रकाशित कराया करें। देखा गया है कि उर्दू लेखकों की जिन जिन कृतियों को देवनागरी में प्रकाशित किया गया है, उनका प्रचार विशेष हुआ है क्योंकि हिन्दी का क्षेत्र उर्दू की अपेक्षा बहुत बड़ा है।

गांधी जी ने मुसलमान भाइयों से भी यह अपेक्षा रखी थी कि वे देवनागरी लिपि को भी सीख लें। हिन्दीतर प्रदेशों के मुसलमान अपने-अपने प्रदेश की लिपियों से परिचित हैं। ये लिपियाँ देवनागरी से मिलती जुलती हैं। लिपि, भाषा

का परिधान मात्र है। इसलिए लिपि के साथ धार्मिक अथवा भावनापरक संबंध जोड़ना उचित नहीं है। ऐसा करने से लिपि प्रचार और उसके परिष्कर करने के मार्ग में बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं।

उर्दू के अनेक विद्वानों और राष्ट्रीय मुसलमानों ने खुले दिल से देवनागरी लिपि का समर्थन किया है। हजरत ताराशाह चिश्ती समिति आगरा के अध्यक्ष श्री मौलाना हाफिज रमजान अली कादरी ने एक पत्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा है 'हम व हमारे मुरीदों व शिष्यों की निगाह में देवनागरी प्रचार का एक सच्चा आंदोलन है। इसमें कोई शक-शुबह नहीं है कि देवनागरी ही एक ऐसी लिपि है जो एशिया को और कम से कम हिन्दुस्तान को एक धागे में बांधने की ताकत रखती है। इस आंदोलन को सफल बनाने में हमारी खिदमत में आपके साथ हैं।'

महाराष्ट्र राज्य के भूतपूर्व राज्यपाल श्री अली यावर जंग ने अपना विचार इन शब्दों में प्रकट किया है-'मेरा मत यह है कि उर्दू सहित प्रत्येक भाषा को अपनी लिपि में स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन देवनागरी लिपि को देश में जोड़ लिपि के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

केंद्रीय सरकार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्रीयुत नुरूल हमन ने नागरी लिपि परिषद को जो संदेश भेजा था, उससे देवनागरी के संबंध में भारत की केंद्रीय सरकार का रुख स्पष्ट होता है। उन्होंने लिखा था - 'हमारे देश की विभिन्न भाषाओ का साहित्य विशाल और समृद्ध है, लेकिन अभी यह साहित्य सिर्फ इन भाषाओं की परंपरागत लिपियों में ही है। इन परंपरागत लिपियों की रक्षा और उन्नयन तो करना ही है, लेकिन उसके साथ साथ विभिन्न भाषाओं के साहित्य का कुछ अंश यदि एक संपर्क लिपि में भी उपलब्ध हो सके, तो विभिन्न प्रदेशों के लोग दूसरे प्रदेशों के विकसित साहित्य को आसानी से पढ़ सकेंगे और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण से यह एक स्पष्ट लाभ होगा। यह संपर्क केवल देवनागरी में ही हो सकता है।

इस संदर्भ में भारत सरकार एक जोड़ लिपि की आवश्यकता के प्रति सदैव सजग रही है। इसी आवश्यकता को 1961 में मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में भी औपचारिक रूप से स्वीकार किया गया था। अतः केंद्रीय सरकार द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं के कुछ संकेत चिन्ह जोड़े गए हैं। इस प्रकार से विकसित लिपि अब 'परिवर्तित देवनागरी कहलाती है।

अभी तो सुझाव इतना ही है कि प्रादेशिक भाषाएं अपनी लिपि के साथ साथ देवनागरी लिपि का भी प्रयोग करें। दूर भविष्य में यह सुझाव भी आ सकता

है कि भारत में एक लिपि देवनागरी रहे। ऐसा सुझाव आने पर कुछ मौलिक प्रश्न उठ खड़े होते हैं।

पहला प्रश्न यह उठता है कि यदि देवनागरी को स्वीकार कर लिया जाए तो, क्या वर्तमान लिपियो को लुप्त होन दिया जाएगा ?

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि प्रांतीय लिपियों में जो असीम सुंदर साहित्य पड़ा है, लिपि के लुप्त होते ही उसका क्या होगा ?

तीसरा प्रश्न यह कि वर्तमान समय में भाषा को लेकर इतनी ताना तानी है, तब क्या यह उचित होगा कि एक नये लिपि आन्दोलन को अंकुरित किया जाए ?

तीनों ही प्रश्न गंभीर हैं और उन पर विचार करना होगा।

यह तो स्वीकार करना ही होगा कि भारत राष्ट्र में आवश्यकता से अधिक लिपियां हैं, जो प्रांत प्रांत के बीच थोड़ा व्यवधान उपस्थित करती हैं। लिपि परिवर्तन का काम जल्दी नहीं हो सकता। प्रत्येक सुधार और प्रत्येक परिवर्तन का सही रूप होना चाहिए यदि इस दिशा में धीरे धीरे बढ़ा जाए, तो यह परिवर्तन भी सहनीय हो जाएगा।

साहित्य के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। उचित होगा कि प्रांतीय साहित्य को धीरे धीरे देवनागरी लिपि में भी हम प्रकाशित करते चलें। देवनागरी में प्रकाशित प्रांतीय साहित्य का क्षेत्र संभवत: व्यापक होगा। अत: आर्थिक दृष्टि से यह लाभप्रद ही होगा। जहां तक प्राचीन साहित्य का प्रश्न है, उसका जितना अंश सुंदर है, शक्तिशानी है, समृद्ध है, देवनागरी में अपने आप स्थान बना लेगा। रविबाबू, शरत, प्रेमचंद, प्रसाद, मेधाणी, बल्लतोल, तमिल कवि भारती जैसे साहित्यकारों की रचनाएं भाषा और लिपि की सीमाएं पार कर देश में और विदेशों में पहुंच ही रही हैं। सुंदर समृद्ध साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। उसमें अमर रहने की अर्वणनीय शक्ति रहती है।

तीसरे प्रश्न का उत्तर और भी सरल है। ज्यों-ज्यों हममें राष्ट्रीय भावना का उदय होगा, उसका विकास होगा, त्यो त्यों हम अपनी क्षुद्र सीमाओं से ऊपर उठेंगे। ज्यों ज्यों राष्ट्रीय गौरव का भार होगा, विभेदी विचार स्वयं ही नष्ट हो जाएंगे।

देवनागरी लिपि के प्रचार प्रसार का काम शुरू हो चुका है और इस दिशा में काफी काम हो चुका है, हो रहा है। लखनऊ निवासी भुवन वाणी ट्रस्ट के संचालक श्री नंदकुमार अवस्थी द्वारा प्रादेशिक भाषाओं का विपुल प्राचीन साहित्य हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में प्रकाशित हो चुका है। दिल्ली

विश्वविद्यालय और केंद्रीय साहित्य अकादमी ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। बर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने 'कविश्रीमाला' नाम से प्रादेशिक साहित्य के 25 ग्रंथ देवनागरी में प्रस्तुत किए हैं।

भारत के पूर्वांचल में रहने वाली पहाड़ी जातियों की भाषाओं की कोई लिपि नहीं थी। मिशनरी पादरियों ने उनकी भाषाओं को रोमन लिपि दी है। इन भाषाओं को देवनागरी लिपि देने का प्रयत्न किया जा रहा है। जिन पहाड़ी और आदिवासियों की भाषाओं की कोई लिपि ही नहीं थी, उन्हें देवनागरी लिपि दी जा रही है। अरुणाचल की विभिन्न भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी में छानी गई हैं। पुणे की 'ज्ञान प्रयोधिनी' संस्था ने तो अंग्रेजी भाषा की रीडरें देवनागरी लिपि में प्रकाशित की हैं।

देवनागरी प्रचार के इसी प्रकार के काम विभिन्न स्थानों पर विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा हो रहे हैं। जो लिपि अभी संपूर्ण भारत के लिए जोड़ लिपि भी न बन सकी हो, उसे पूर्वी एशिया की लिपि, या 'विश्वलिपि' बनाने की बात एक स्वप्न ही समझी जाएगी, परंतु यह मनुष्य का ही सौभाग्य है कि मनुष्य पहले स्वप्न देखता है फिर अपने पुरुषार्थ के बल पर उसे सत्य में रूपांतरित करता है। लेकिन यह मात्र कल्पना की ही बात नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में भी देवनागरी लिपि का महत्व है ही।

पहले ही लिखा जा चुका है कि पूर्व एशिया के देशों और द्वीपों में दक्षिण के आर्यों के द्वारा जो सांस्कृतिक अभियान हुए उनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग, जिनमें व्यापारी भी थे, उन देशों और द्वीपों में पहुंच और बस गये। वे अपने साथ अपनी भाषा और लिपि जो ब्राह्मी से उद्‌भूत थी, लेते गये इन देशों में भारतीय संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव वहां देखा जा सकता है। इसलिये बर्मा, थाइलैंड, स्याम आदि देशों में देवनागरी का प्रचार आसानी से हो सकता है।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म भारत से ही गया था। संस्कृत और पालि के जो ग्रंथ वहां पहुंचे, देवनागरी में थे। इसलिए श्रीलंका निवासी देवनागरी से अपरिचित नहीं हैं। डॉ. शेर सिंह ने अपने एक लेख में लिखा है। कि ब्राह्मी लिपि ने इस देश के बाहर भी प्रचार प्रसार पाया था। भारत से लेकर मध्य एशिया और चीन जापान तक धार्मिक ग्रंथों के लिए देवनागरी का प्रयोग होता था। सातवीं शताब्दी के मध्य में तिब्बत के राजा सुमितन्न गप्पा ने अपने अनेक विद्यार्थियों को नालंदा भोजकर तिब्बत में इस लिपि का आयात किया था।

चीन में जो चित्रलिपि प्रचलित है वह अपनी दुरूहता के कारण प्रिय नहीं हो रही है। वहां के विद्वान अपनी चीनी भाषाओं के लिए एक लिपि की तलाश में है। आचार्य विनोबा का मानना है कि अगर सही ढंग से सेवा भावना से नागरी लिपि को चीन के विद्वानों के सामने पेश किया जाए, तो चीनी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को अपनाया जा सकता है।

यह देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता होती है कि जापानी भाषा और हिन्दी भाषा का वाक्य विन्यास लगभग एक सा ही होता है। हिन्दी में जैसे पहले कर्ता, फिर कर्म, फिर क्रिया होती है। (जैसे राम ने आम को खाया) जापानी भाषा में भी ठीक यही क्रम होता है। बौद्ध धर्म के अनुयायी होने के कारण, धार्मिक ग्रंथों के कारण जापानी लोग देवनागरी से परिचित ही हैं। यदि जापानी भाषा देवनागरी को अपना ले, तो जापानी और हिन्दी एक दूसरे के निकट आ जाएंगी।

संसार के कई ऐसे देश औरर द्वीप हैं, जहां भिन्न भिन्न कारणों से लाखों भारतीय विशेषत: हिन्दी भाषी लोग पहुंचे हैं और वहीं बस गए हैं। उनके साथ उनकी भाषाएं गई, देवनागरी लिपि गई। ऐसे देशों में सूरीनाम, मॉरीशस, गयाना, ट्रिनिडाड, फीजी आदि का नाम आसानी से लिया जा सकता है, इन देशों में हिन्दी भाषा और देवनागरी का खूब प्रचार है। कहीं कहीं राजभाषा हिन्दी है, राजलिपि देवनागरी है।

स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् विश्व में हिन्दी भाषा का मान बढ़ा है। संसार के 74 विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन विधिवत होता है। हिन्दी के साथ देवनागरी वहां पहुंची। देवनागरी लिपि अपने सहज स्वाभाविक गुणों के कारण सभी जगह लोकप्रिय हो रही है। उसकी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि को समझा जा रहा है, इसलिए आश्चर्य नहीं होगा, यदि कभी भविष्य में देवनागरी लिपि अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर चमक उठे।

❐❐❐